दो शब्द

—:o—

'दोहा-मानसरोवर मज्जन' अर्थात् 'दोहा मानसरोवर' की प्रस्तुत कुंजी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रभाकर के परीक्षार्थियो की कठिनाइयो और आवश्यकताओ का सम्यक् अनुभव करके लिखी गई है। इसके आरम्भ मे लगभग ४८ पृष्ठो की सुविस्तृत भूमिका है जो हमारे विचारानुसार, प्रभाकर-परीक्षा के लिए अत्यन्तोपयोगी और छात्र हित-कारिणी है। जब तक 'दोहा मानसरोवर' परीक्षार्थ नियत है तब तक इस भूमिका मे के प्रश्नो मे से कोई-न-कोई प्रश्न, किसी न किसी रूप मे, अवश्य पूछा जायगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। इस के महत्व और इस को लिखाई मे व्ययित परिश्रम और समय का अनुमान आप सभी लगा सकेंगे जब आप इसे अत्यन्त सावधानी से पढेगे। हमारा आप से यही अनुरोध है कि आप इसे विस्तृत समझ कर छोड न जाइए, अवधानता-पूर्वक पढिए, आप को अवश्य और पर्याप्त लाभ होगा। इस कुजी मे आप को छोटे-बड़े प्रायः सभी कवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित्र, उन की कृतियो के परिचय तथा उनकी साहित्यिक विशेषताओ की ओर आवश्यक संकेत मिलेंगे। तदनन्तर प्रत्येक दोहे के कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं ताकि छात्र-छात्राओ का अमूल्य समय कोषों के पृष्ठ पलटने मे नष्ट न हो। इसके बाद साधारण दोहों का तो सरलार्थ-मात्र (Paraphrase) ही दिया गया है परन्तु आवश्यक, महत्वपूर्ण और परीक्षोपयोगी दोहो की कुछ विस्तृत व्याख्या (Explanation) की गई है ताकि छात्रों को व्याख्या लिखने की विधि भी सम्यक् समझ आ जाय। हमारे साहित्य में कवि-गण अनेक प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तान्तों और पौराणिक कथाओं की ओर संकेत कर गए हैं। जब तक उन घटनाओं तथा कथाओं का सविस्तार वर्णन न किया जाय, दोहों का अर्थ समझ आने पर भी, उनका महत्व व्यक्त नहीं होता। इसीलिए दोहों मे

संकेतित सभी घटनाओं का सुस्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है ताकि विद्यार्थी दोहे के आशय की तह तक अनायास पहुँच जायँ। इसके अतिरिक्त उन सभी दोहों पर विशेष चिन्ह लगा दिया गया है जो, हमारी सम्मति में, परीक्षा में पूछे जाने चाहिएं। अन्त में प्रभाकर परीक्षा के गत तीन वर्षों के प्रश्नपत्र भी लगा दिए गए हैं ताकि विद्यार्थी उन की खोज में इधर-उधर भटकने से बच जायँ। इस प्रकार 'दोहा-मानसरोवर मज्जन' को यथाशक्ति अधिकाधिक उपयोगी बनाने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी गई। आशा है आप इसमें 'स्नान' कर के अपने आशानुरूप साफल्य-लाभ करेंगे। वास्तव में तो आपकी सफलता में ही हमारे परिश्रम का फल निहित है।

रामनगर, मुलतान रोड,
लाहौर।

रामस्वरूप

विषय-सूची

दो शब्द ... .. (क)
भूमिका . . १
प्रश्न पत्र ४६

प्रथम सोपान

कबीर ... १
तुलसी .. १६
रहीम . ३६
विहारी . . ५४
मतिराम .. ६८
वृन्द . .. ८०
रस निधि १०१
विक्रम . ११५
मुञ्ज .. १२६
चदवरदाई १२७
गुरु नानक १२८
सूरदास १२६
हित हरिवश ... १३१
श्री भट्ट १३२
हरिराम व्यास ... १३३
ध्रुवदास . १३५
दादू . १३६
पल्टू . . १३८
मलूकदास १३६
सुन्दरदास १४१
उसमान .. १४२
नागरीदास १४३
भगवत रसिक १४४
ललित किशोरी .. १४६
केशव . १४७
भूषण १४६
घाघ . . १५३
चरनदास ... १५४
सहजोबाई १५५
दयाबाई १५७
राममहाय .. . १५८
रघुराज . १६०
गिरिधर १६१
विविध . १६२

तृतीय सोपान

हरिश्चन्द्र १
अयोध्यासिंह उपाध्याय ४
सत्यनारायण ... ६
वियोगी हरि . १२
दुलारेलाल भार्गव ३०
रामेश्वर करुण ४२
तुलसीराम शर्मा दिनेश ५३
प्रतापनारायण मिश्र ... ६६
सुधाकर द्विवेदी ६७
शिव सम्पति ६६
बालमुकुन्द गुप्त ... ७०
कन्हैयालाल पोद्दार ७२
रामचरित उपाध्याय . ७४
सैयद असीर अली (मीर) ७५
रामदास गौड ... ७६
पारसनाथसिंह ... ७८
राजाराम शुक्ल ... ७८
शिवदुलारे त्रिपाठी ... ८०
रुद्रदत्त मिश्र ... ८१
अम्बिका प्रसाद ... ८३
चतुर्भुजदास ८४
श्रद्धाराम .. ८५

भूमिका

प्रश्न १—ललित कलाओं में कौनसी कला सर्वश्रेष्ठ है ? विशद वर्णन कीजिए ?

उत्तर—जिन कला-मर्मज्ञों ने कला का सूक्ष्म तथा विस्तृत विवेचन किया है उनका मत है कि ललित कलाओं के अन्तर्गत निम्नांकित पांच कलाएं आती हैं:—

(१) वास्तु-कला या भवन-निर्माण-कला, (२) मूर्ति-कला, (३) चित्र-कला, (४) संगीत कला तथा (५) काव्य-कला।

उक्त कलाओं में से पहली तीन का ज्ञान तो नेत्रों द्वारा होता है और पिछली दोनों का कानों द्वारा। पहली तीनों में तो मूर्त आधार की आवश्यकता पड़ती है परन्तु पिछली दोनों नाद-जनित तथा शब्द-जनित होती हैं, इसलिए उनमें मूर्त या ठोस आधार की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ध्वनि तथा शब्दों को गुण माना जाता है मूर्त-द्रव्य नहीं।

कलाविदों का कथन है कि जिस कला में जितनी अधिक मात्रा में मूर्त आधार की आवश्यकता पड़े वह कला उतनी ही निकृष्ट होती है, और जिसमें मूर्ताधार जितना न्यून प्रयुक्त हो वह उतनी ही अधिक उत्कृष्ट होती है। परन्तु हमारे विचार में केवल इसी एक कसौटी से कलाओं के उत्कर्ष-अपकर्ष को परखना अनुचित है, कारण यह है कि उपयोगी कलाओं की परख तो इस दृष्टिकोण से होनी चाहिए कि वह हमारी आवश्यकताओं को कहाँ तक पूर्ण करती है और ललित कलाओं की परख में यह विचार प्रधान रहना चाहिए कि वे अपने उद्देश्य को कहां तक पूर्ण करती हैं। ललितकलाओं का उद्देश्य मानव मन को एक अलौकिक आनन्द प्रदान करना होता है, इसलिए हमें कुछ और कसौटियां भी बर्तनी पड़ेंगी। हमारे विचार में कुल कसौटियां चार होनी चाहिए—

(१) कौनसी कला में मूर्ताधार कम से कम प्रयुक्त होता है।

(२) कलाकार किस कला द्वारा अपने हृदयगत भावों को अभि-

व्यक्त करके दर्शक या श्रोता के मन को सुगमता से अपने मनके सदृश बना सकता है ?

(३) कौन सी कला हमे अधिकाधिक आनद देती है ?

(४) किस कला द्वारा उपलब्ध हुआ आनन्द चिरस्थायी होता है ?

आइए, उक्त पांचों ललित कलाओं को इन चारो कसौटियों पर कस कर निर्णय करे कि इनमें से कौनसी कला सर्वश्रेष्ट है। हम पूर्वोक्त पांचों कलाओं मे क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्ष सिद्ध करेंगे। सर्व प्रथम वास्तु-कला को लीजिए। यह स्पष्ट ही है कि वास्तु निर्माण मे मूर्त द्रव्यों की जितनी अधिक अपेक्षा होती है उतनी अन्य किसी ललित कला में नहीं। ईंट पत्थर, मिट्टी, चूना सीमेंट, लकडी, लोहा आदि मूर्त द्रव्यों के ढेर के ढेर एक सुन्दर भवन के निर्माण मे व्यवहृत हो जाते हैं। वास्तुकार विविध भवनों में कलश, गुम्बज, मिहरावें, जालियां आदि बना कर उनके द्वारा विभिन्न जातियों के धार्मिक विश्वासों तथा विचारों की झलक दिखाने का यत्न करता है। इस तरह वह अपने मानसिक भाव द्रष्टाओ पर व्यक्त करता है। द्रष्टा देखते ही पहचान जाते हैं कि यह मन्दिर है, यह मसजिद है, यह गिरजा है इत्यादि। परन्तु यह अभिव्यक्ति बहुत दूर तक नहीं जाती।

इस में सन्देह नहीं कि सुन्दर विशाल भवन देखकर मन आनंदित भी होता है और प्रभावित भी, परन्तु वे मानसिक दशाएं भवन की विशालता तथा विपुल मूर्तद्रव्य की सुव्यवस्था के कारण उत्पन्न होती हैं न कि भवन-निर्माता के मानसिक भावो की विशेष अभिव्यक्ति के कारण।

फिर यह आनन्द ठहरता भी कितनी देर है। जब तक हम भवन मे है, या सामने खड़े हैं, तब तक आनद अनुभव कर सकते हैं। ताजमहल देखने आप रोज थोड़े जा सकते हैं। कुछ काल पश्चात् उसका चित्र मन से मिटना आरभ हो जाता है। यही कारण है कि वास्तुकला को ललित कलाओं में सबसे नीचा स्थान दिया गया है।

अब मूर्तिकला की ओर आइए। मूर्ति बनाने मे भी मूर्त द्रव्य— पत्थर, मिट्टी, धातु आदि की आवश्यकता पडती है परन्तु वास्तु-कला

की अपेक्षा बहुत कम। मूर्तिकार मूर्ति द्वारा हमें किसी व्यक्ति के आकार-प्रकार का, डील-डौल का, रंग-रूप का परिचय दे देता है परन्तु (यंत्रादि की सहायता के बिना) उसमें गीत आदि उत्पन्न नहीं कर सकता। वह उसमें अपनी छैनी की सहायता से अनेक मुद्राए बना सकता है, बुद्ध की मूर्ति द्वारा हमारे मन को शान्त, काली की मूर्ति द्वारा क्रुद्ध और राधाकृष्ण की मूर्तियों द्वारा प्रेम-विभोर बना सकता है। यह बातें वास्तु-कला द्वारा नहीं हो सकती थीं। मूर्ति सजीव पदार्थ के अनुरूप होने के कारण अधिक आनन्दप्रद होती है, फिर हम उसे घर मे स्थापित करके अधिक स्थायी आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए वास्तु-निर्माण की अपेक्षा मर्ति-कला को श्रेष्ठ कहा जाता है।

अब चित्र-कला की ओर देखिए। इसमें मूर्ताधार की आवश्यकता उक्त दोनों कलाओं की अपेक्षा कम होती है। छोटे से कागज़ पर, कपड़े के टुकड़े पर, अथवा लकड़ी आदि की पट्टी पर चित्रकार पेंसिल, कलम अथवा ब्रुश और रगों की सहायता से जड़ चेतन-पदार्थों के चित्र तैयार कर देता है। उक्त दोनों कलाओं मे तो लंबाई, चौड़ाई तथा मोटाई तीनों बातों की आवश्यकता पड़ती थी परन्तु चित्रकार अपने कौशल से केवल लंबे और चौड़े पट आदि पर भी स्थूलता का दर्शन करा देता है।

वह सपाट सतह पर सुदूरता, समीपता, स्थूलता, कृशता, इत्यादि का भी बोध करा देता है। वह केवल एक ही वस्तु का चित्र उपस्थित नहीं करता अपि; उपयुक्त वातावरण—नदी, पवत, वृक्ष, चांद तारे आदि से चित्र मे प्राण से डाल देता है। वह उसमे प्रेम, क्रोध, घृणा, लज्जा आदि के भावों को ऐसी आश्चर्यमय रीति से प्रकट करता है कि दर्शक आनन्दमग्न होकर स्वय चित्रवत उसे एकटक देखने लगता है। इस प्रकार चित्रकार की रचना मे मानसिकता की अधिकता तथा मूर्तता की न्यूनता होती है। इससे प्राप्य आनन्द अधिक काल तक स्थिर रह सकता है। चित्र को आप जेब में, मेज पर, एलबम मे, दीवार पर—जहा चाहें रख सकते हैं, साथ लेजा सकते हैं और उससे चित्त प्रसन्न कर सकते हैं। इन कारणों से चित्रकला को उक्त दोनों कलाओं से ऊंचा पद दिया जाता है।

संगीत कला में मर्ताधार की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसमें ईंट, चूना, पत्थर, धातु, रंग, ब्रुश आदि की आवश्यकता नहीं। गायक जब चाहता है, गाने लग जाता है, बाजा, तबला आदि उपकरण संगीत मे सहायक हो सकते हैं, अनिवार्य नहीं। वास्तविक आधार तो ध्वनि या नाद ही है, जो सात स्वरों के रूप में बर्ता जाता है। वह नाद कोई मूर्त या ठोस द्रव्य नहीं, श्रवण ग्राह्य-गुण ही है। दूसरे इस कला द्वारा कलाकार श्रोता को हंसा सकता है, रुला सकता है, अनुरक्त या विरक्त तथा क्रुद्ध या शांत आदि सहज में ही कर सकता है। हमारे विचारानुसार प्रभाव की व्यापकता में तो यह कविता को भी पीछे छोड़ जाता है। कविता तो रसिक जनों के ही मनों को आनन्द-मग्न करती है परन्तु सगीत रसिक-अरसिक, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, यहां तक कि पशु-पक्षियों को भी मुग्ध कर लेता है, परन्तु यहां इतनी बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिए कि सगीत को भी कविता का आश्रय लेना ही पड़ता है। गद्यमयी, रस-हीन रचना सुचारु-रूपेण गाई नहीं जा सकती। ढिटाई से गद्य वाक्य को हा-हू करके गाने लगे तो उसे कौन रोक सकता है।

एक समय था जब कहा जा सकता था कि संगीत का आनन्द चिरस्थायी नहीं होता। गायक गया तो संगीत भी गया, परन्तु भला हो वैज्ञानिकों का, अब संगीत भी स्थायी रह सकता है। ग्रामोफोन के रिकार्डों मे तथा बोलपटों मे स्थिर रखा जा सकता है और उससे यथेष्ट आनन्द उठाया जा सकता है, परन्तु इस रूप मे इस द्वारा आनंद लेने के लिए वैज्ञानिक उपकरणों की—मूर्ताधारों की, ग्रामोफोन आदि की, आवश्यकता पड़ती है। उक्त कारणों से सगीत-कला पूर्वोक्त तीनों कलाओं से अच्छी है।

अब हम काव्य-कला की ओर आते हैं। सगीत-कला के समान इसका आधार भी मूर्त द्रव्य नहीं होता। ज़रा गहरी दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि इस कला के आधार तो भाव या मानसिक चित्र ही होते हैं जो कि सांकेतिक शब्दों द्वारा दूसरों तक पहुँचाए जाते हैं। इसमे सन्देह नही कि ऐसी भी कविता रची जाती है जिसे विशिष्ट शब्द-रूप आधार की आवश्यकता होती है और उन शब्दों को बद-लने पर वह कविता नही रह जाती परन्तु वह कविता उत्कृष्ट नहीं मानी

जाती। जिस कविता में भाव तथा कल्पना की रमणीयता हो, व्यंग्य की प्रधानता हो वह अनुप्रासादि युक्त शब्द बदल डालने पर भी अपना प्रभाव पूर्ववत् बनाए रखती है। ऐसी कविता में शब्द तो केवल वाहन-मात्र होते हैं, वास्तविक काव्य का आधार केवल मन है। इस बात को एक दोहे द्वारा स्पष्ट करना अनुचित न होगा—

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेय।

जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देय॥

रहीम ने किसी दुःखी के आंसू ढुलकते देखे और उसके मन की व्यवस्था को भांप गए। तब उनके मन में एक ऐसी कल्पना उठी जो किसी सत्कवि के मन में ही उदित हो सकती थी। उन्होंने कहा—यह आंसू मन का भेद इसी कारण प्रकट कर रहे हैं क्योंकि मन ने इन्हें इनके स्थान से बाहिर निकाल दिया है। जिसे घर से निकाला जाता है वह निकालने वाले के भेद लोगों पर प्रकट करता ही है। इसी सुन्दर कल्पना को रहीम ने शब्दों द्वारा प्रगट कर दिया है। पर इन शब्दों के स्थान पर दूसरे शब्द भी रखे जा सकते है और काव्य ज्यों का त्यों सरस रह सकता है। परन्तु यह बात संगीत में नहीं है। वहां तो स्वरों के जिस आरोह-अवरोह से जो भाव श्रोता के मन में उत्पन्न होता है, वह स्वर-भेद करने से अवश्य बदल जाता है।

इसलिए संगीत का आधार तो नाद मानना पड़ता है और कविता का आधार केवल भाव या कल्पना ही, जो मन की वस्तु है। ऊपर कह चुके हैं कि संगीत का अस्तित्व कविता के बिना नहीं रह सकता, परन्तु कविता संगीत के बिना भी वैसे ही विराजमान रहती है। कविता छन्दों के बिना भी हो सकती है, स्वर के बिना भी पढ़ी जा सकती है।

संगीत की अपेक्षा काव्य-कला का क्षेत्र भी विस्तृत है। संगीत पवन के प्रचड वेग को, विद्युत् की क्षणिक चमक को, तरंगों के मोदक नृत्य को दूसरों तक नहीं पहुँचा सकता परन्तु कविता उपयुक्त शब्दों द्वारा इन दृश्यों की झलक दिखा ही देती है।

उक्त सभी कलाओं की अपेक्षा काव्य-कला की उत्कृष्टता का एक कारण यह भी है कि जहा वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला केवल नेत्र-ग्राह्य हैं और संगीत-कला केवल श्रोत्र-ग्राह्य है वहां काव्य-कला का

ग्रहण दोनों इन्द्रियों से हो जाता है। हम काव्य को पढ़ कर भी वैसे ही आनंदित तथा प्रभावित हो जाते हैं जैसे सुन कर।

कविता का प्रभाव कितना व्यापक होता है इसे सविस्तार कहने की आवश्यकता नहीं। रहीम के एक ही दोहे को पढ़ कर चित्रकूट के राजा ने एक लाख रुपया भेज दिया था, केशव के एक ही पद्य से प्रसन्न हो कर राजा बीरबल ने उन्हे छः लाख रुपए दे दिए थे, बिहारी के एक ही दोहे से प्रभावित होकर राजा जयसिंह का मोहांधकार दूर हो गया था और रत्नावली के दो ही दोहों से तुलसीदास महात्मा बन कर अजर-अमर हो गए थे।

फिर संगीत की अपेक्षा काव्य-कला का आनन्द भी उच्चकोटि का होता है। संगीत कानों को प्यारा लगने के कारण ही पशु-पक्षियों तथा जन-साधारण को अपनी ओर खींचता है परन्तु कविता का आनन्द दिव्य होता है। उसका संबन्ध सीधा हृदय से है। कविता कर्ण मधुर हो चाहे न, परन्तु अपनी भावमयता तथा कल्पना की उत्कृष्टता के कारण विद्वानों तथा रसिकों के मन को मुग्ध कर लेती है। इसलिए यदि मानसिक उत्कर्ष से रहित पशु-पक्षी तथा जड़ लोग कविता का आनन्द न ले सकें तो इसमे कला का क्या दोष है? सच कहा जाय तो कविता का आनन्द तो अमृत से भी बढ़ कर है। किसी सस्कृत के कवि ने क्या खूब कहा है—

> कान् पृच्छाम सुरा स्वर्गे निवसामो वय भुवि।
> किं वा काव्यरस स्वादु किंवा स्वादीयसी सुधा॥

भावार्थ—हम भूमि पर रहते हैं और अमृत का स्वाद नहीं जानते, देवता स्वर्ग में रहते हैं और कविता का स्वाद नहीं जानते, फिर किस से पूछें कि दोनों मे से कौनसा अधिक स्वाददार है। इसके अतिरिक्त काव्य-कला का आनन्द ऐसा नहीं जो चिरकाल तक रह न सके। मकान गिर जाते है, मूर्तियां टूट जाती हैं, चित्र मिट जाते हैं, सगीत लुप्त हो जाता है परन्तु सुकाव्य विद्यमान रहता है। प्राचीनकाल के बड़े से बड़े राज-प्रासाद, महात्माओं तथा सम्राटों की प्रतिमाएं, सुन्दर चित्र तथा मधुर गीत अब कहां हैं। परन्तु वाल्मीकि की रामायण, कालिदास का मेघदूत, तुलसीदास का रामचरित मानस तथा सूरदास

का सूरसागर आदि सदा ही विद्यमान रहेंगे और रसिकजनों के चित्त को आह्लादित करते रहेंगे।

संक्षेप मे कहे तो कह सकते है कि मूर्ताधार के अभाव, अपने अलौकिक प्रभाव, दो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्यता तथा उच्चकोटि के स्थायी आनन्द को देने के कारण काव्य-कला ही सब ललित कलाओं मे श्रेष्ठ है।

प्रश्न २—काव्य के विभिन्न लक्षणो की विवेचना करते हुए अपना मत प्रकट कीजिए।

उत्तर—विभिन्न देशों के अनेक विद्वानों ने अपनी अपनी भाषाओ मे काव्य की परिभाषा लिखी है परन्तु एक की परिभाषा दूसरे की परिभाषा से नहीं मिलती और सच तो यह है कि मिल भी नहीं सकती। सौन्दर्य, प्रेम, धर्म आदि अमूर्त वस्तुओं के समान काव्य का लक्षण भी एकाध वाक्य मे करना असम्भव है। जितने भी लक्षण किए जाते है वे अंश-रूपेण सत्य होते हुए भी पूर्ण नहीं कहे जा सकते। ये लक्षण तो वैसे ही है जैसे अनेक अन्धों ने हाथी के कान, टांग आदि अवयवों को छू कर उसे सूप स्तंभ आदि के समान कहना आरंभ कर दिया था। हम यहां पर दृष्टान्त रूप मे कुछ एक देशी विदेशी विद्वानों के मत उद्धृत करते है।

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर जानसन का कथन है कि काव्य पद्यमय निबन्ध का नाम है। चाहे कविता प्रायः पद्य मे ही उपलब्ध होती है तो भी इस लक्षण को समीचीन नहीं कह सकते क्योंकि प्रत्येक पद्यमय निबन्ध काव्य नहीं हो सकता जब तक उसमे मानव हृदयस्पर्शी कोई बात न हो। वहीं के एक दूसरे विख्यात् विद्वान् कार्लाइल का मत है कि कविता संगीतमय विचार है। यह लक्षण भी पूर्ण नहीं क्योंकि कविता मे विचारों की अपेक्षा भी कल्पना तथा मनोवेगों या भावों का प्रधान्य रहता है और यहां उनकी ओर संकेत तक नहीं किया गया। जगद्-विख्यात् मिल्टन का मत है कि कविता वह कला है जिसमे कल्पना-शक्ति विवेक की सहायक हो कर सत्य और आनन्द का परस्पर संमिश्रण करती है। इस लक्षण मे भाषा रूप साधन का संकेत तक नहीं इसलिए यह भी

अधूरा ही कहा जायगा। वाट्सडेटन नामक विद्वान का विचार है कि कविता मनोवेगमयी तथा संगीतमयी भाषा में मानव अन्तःकरण की मूर्त और कलात्मक व्यंजना है। हमें इस लक्षण में 'संगीतमयी' शब्द की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। आइए, अन्य देशीय विद्वानों के लक्षणों पर भी तनिक विचार करलें।

कुछ लोगों का विचार है कि श्रवण-सुखद वाक्य-समूह ही कविता है। परन्तु हमारे विचार में यह लक्षण दूषित है क्योंकि यह लक्षण कविता के शरीर—शब्द की ओर ही संकेत करता है। कुछ और लोग यह कहते हैं कि "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" अर्थात् शब्द और अर्थ के मिश्रण को कविता कहते हैं। यह लक्षण भी अपूर्ण ही है क्योंकि शब्द और अर्थ तो इतिहास, गणित आदि के ग्रंथों में भी मिलते हैं और उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। रस गंगाधर नामक ग्रंथ के अनुसार 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार इस लक्षण में यह दोष है कि रमणीय को केवल अर्थ का ही विशेषण क्यों कहा गया है उसे 'शब्द' का विशेषण बनाना चाहिए। परन्तु हमारे विचारानुसार यह कोई दोष नहीं। कविता सीधे-सादे शब्दों में भी हो सकती है।

हमारे विचारानुसार इसमें त्रुटि यह है कि यहां शब्द और अर्थ की ओर तो संकेत किया गया है परन्तु रस की नितान्त उपेक्षा की गई है। शब्द और अर्थ तो काव्य का शरीर हैं परन्तु उसकी आत्मा तो रस या अलौकिक आनन्द ही है। काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने लिखा है कि 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' अर्थात् दोष रहित, गुण युक्त और अलंकारयुक्त शब्द-अर्थ-समुदाय अर्थात् वाक्य को काव्य कहते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि यदि अलंकार न भी हों किन्तु और बातें विद्यमान हों तो भी काव्य हो सकता है। यह लक्षण भी काव्य की आत्मा अर्थात् रस की ओर कोई संकेत नहीं करता चाहे उसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। कुछ और विद्वानों ने काव्य के काव्यमय लक्षण किए हैं। जैसे 'काव्य पृथिवी तथा सूर्य का विवाह संस्कार है', 'काव्य आत्मा की भाषा है,' इत्यादि। परन्तु ये लक्षण काव्य को पहिचानने में विशेष ... नहीं देते। ये तो उसके स्तोत्र से गाते प्रतीत होते हैं। हमारे

विचार में श्री विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में काव्य का जो संक्षिप्त लक्षण दिया है वह सर्वोत्तम है। उन्होंने कहा है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रस या अलौकिक आनन्द से परिपूर्ण वाक्य को काव्य कहते हैं। इसी बात को जरा विस्तार से यों कह सकते हैं कि जिस गद्यमयी अथवा गद्य-पद्य-मयी रचना को पढ या सुनकर पाठक या श्रोता का मन किसी अलौकिक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करे उसे काव्य कहते हैं। दोहा मानसरोवर की भूमिका में दिया हुए काव्य लक्षण 'आनन्दोत्पादक शब्द' भी इसी बात को कह रहा है।

प्रश्न 3—काव्य के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर—पिछले प्रश्न के उत्तर में कह चुके हैं कि रसात्मक वाक्य का नाम ही काव्य है। इसका अभिप्राय यही है कि वाक्य काव्य का शरीर है और रस उस शरीर में रहने वाली आत्मा। जैसे आत्मा तथा शरीर के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व नहीं रहता वैसे ही रस तथा वाक्य के बिना कविता भी अपना अस्तित्व खो बैठती है। यह बात भी सर्वविदित ही है कि शब्द अर्थ के बिना नहीं रह सकता। यही विचार कर प्राचीन आचार्यों ने रस को कविता की आत्मा तथा शब्द और अर्थ (अर्थात् वाक्य) को काव्य का शरीर कहा है। यहां एक बात और भी स्मरणीय है। वह यह कि जीवित व्यक्ति में और भी बातें दिखाई देती हैं। उसके शरीर की अपनी विशेष बनावट होती है, उस पर सजावट के लिए वस्त्रालंकारादि होते हैं, वह अपने अन्दर विशेष गुण या दोष भी रखता है। इसी प्रकार कविता मे भी रीति, अलंकार, गुण तथा दोष पाए जाते हैं। तात्पर्य यह कि यदि हमें कविता के स्वरूप सम्यक् समझने की इच्छा हो तो हमें रस, शब्द, अर्थ, रीति, अलंकार, गुण तथा दोषों का परिचय अवश्य प्राप्त करना होगा। यही विचार कर इन बातों का उल्लेख संक्षेप से किया जाता है।

रस—काव्य की आलोचना मे रस शब्द से खट्टा, मीठा, तीखा आदि जिह्वाग्राह्य रस नहीं लिए जाते। यहां तो रस का अभिप्राय वह विशेष प्रकार का अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द होता है जिसे काव्य को पढ़ने-सुनने वाला या नाटक देखने वाला व्यक्ति अपने हृदय

में अनुभव करता हुआ सुध-बुध भूल जाता है। यही आनन्द काव्य की आत्मा होता है। पहले इस आनन्द को कवि अपने हृदय में अनुभव करता है और फिर अपनी मनोहारिणी रचना द्वारा श्रोता या पाठक के मनमे भी उत्पन्न कर देता है। रस की उत्पत्ति निम्नलिखित ढग से होती है। मनुष्य के मन मे परिस्थित भेद से अनेक भाव उठते रहते हैं परन्तु उनमें से ये नौ प्रधान हैं:—प्रेम, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा (जुगुप्सा) विस्मय तथा निर्वेद (वैराग्य)। ये भाव हमारे हृदय मे सदा रहने के कारण स्थायी भाव कहलाते हैं। ये साधारणतया प्रसुप्त रहते हैं परन्तु जब हम कोई काव्य पढ़ते-सुनते या नाटक देखते हैं तब ये जाग-से पड़ते हैं और इनके फलस्वरूप हमारे मन मे क्रमश· शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शात रस की उत्पत्ति होती है। इनको जगाने के लिए कविता में आलंबन तथा उद्दीपन विभावों, अनुभावों तथा सचारी भावों का वर्णन रहता है। मन मे प्रसुप्त स्थायी भाव, आलम्बन विभाव द्वारा उद्बुद्ध सा होता है, उद्दीपन विभाव द्वारा उद्दीप्त होता है, सचारी भावो द्वारा सचारित होता है और फिर अनुभावों द्वारा व्यक्त होता हुआ परिपक्व होकर रस-रूप मे अनुभव होता है।

शब्द तथा अर्थ—काव्य की आत्मा (रस) का संक्षिप्त वर्णन हो चुका। अब उसके शरीर (शब्द तथा अर्थ) के सम्बन्ध में कुछ कहेंगे। साहित्य में शब्द और अर्थ सदा साथ-साथ रहते हैं और उनके बिना काव्य नहीं हो सकता, यह बात तो स्पष्ट ही है, परन्तु परिस्थित के अनुसार शब्द सदा एक ही अर्थ को प्रकट नहीं करते अपितु अनेक अर्थों का प्रकाशन करते रहते हैं। जो शब्द प्रचलित अर्थ को स्पष्टरूप से कह देता है उसे वाचक शब्द कहते हैं और प्रकट होने वाले अर्थ को वाच्यर्थ। जैसे, बैल जा रहा है'—इस वाक्य मे 'बैल' शब्द से प्रसिद्ध प्राणी ही अभिप्रेत है। जहा पर शब्द प्रसिद्ध अर्थ को न कह सकने के कारण उससे सबद्ध अर्थ को प्रकट करे वहा पर वह लक्षक शब्द कहाता है और अर्थ लक्ष्यार्थ। जैसे, चूनीलाल तो निरा बैल है। यहां बैल से अभिप्राय महामूर्ख है। जहा पर उक्त दोनों प्रकार के अर्थ अभिप्रेत न हों बल्कि शब्द किसी व्यगमय अर्थ को प्रकट कर रहा हो वहा उस शब्द को व्यंजन शब्द कहते हैं और अर्थ को

व्यंग्यार्थ। जैसे 'मास्टर जी घंटी बज गई है'—इस वाक्य का व्यंग्यार्थ यही है कि छुट्टी दीजिए। कवि अवसरानुसार तीनो प्रकार के शब्दों से तीनों प्रकार के अर्थों को प्रकट करके काव्य को अधिक सरस और प्रभावशाली बनाता है।

अलंकार—जैसे यह सत्य है कि सहज सुन्दर व्यक्ति को गहनों की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही यह भी सत्य है कि यदि वह गहने पहन ले तो उसका स्वाभाविक सौन्दर्य अधिक खिल उठता है और अधिक आकर्षक बन जाता है। यही बात सुकविता के संबन्ध मे भी ठीक बैठती है। यदि कविता के शब्द अर्थ या दोनों ही अलंकारों से युक्त हों तो निःसन्देह कविता भी अधिक रुचिकर और प्रभावशाली बन जाती है। इसीलिए अलकारों को काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म कहा जाना है। अलंकारों के मुख्य भेद तीन होते हैं। शब्दों की शोभा बढ़ाने वालो को शब्दालंकार, अर्थों की शोभा बढ़ाने वालों को अर्थालकार तथा दोनों की शोभा-वृद्धि करने वालो को उभयालंकार कहते हैं। सुकवि अनुप्रास, यमकादि शब्दालकारों, उपमा, रूपकादि अर्थालंकारों तथा संसृष्टि, संकरादि उभयालंकारों द्वारा काव्य की शोभा को कई गुणा अधिक बढ़ा देते हैं। अलंकारो की संख्या १०० से अधिक है।

रीति—जैसे शरीर क अग पृथक्-पृथक् होते हुए भी अपने विशेष संगठन के कारण समूचे शरीर को एक विशेष आकार प्रदान करते हैं इसी प्रकार काव्य से शब्द भी विशेप संगठना के कारण काव्य को एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं। इसी पद-सघटना को साहित्यिक भाषा में रीति कहा जाता है।

रीति रस आदि की उपकारक होती है, अर्थात् उनके प्रभाव को बढ़ा देती है। यह तीन प्रकार की होती है—वैदर्भी, गौडी तथा पांचाली। जो रचना माधुर्यव्यजक अक्षरों से युक्त, ललित समासहीन अथवा छोटे-छोटे समासों से युक्त हो, वह वैदर्भी रीति से युक्त कही जाती है। जो रचना ओज-प्रकाशक अक्षरों से युक्त, आडंबरमयी तथा समास प्रधान हो, वह गौड़ी रीति से युक्त कही जाती है। जिस रचना मे उक्त दोनों प्रकार के अक्षरों से बचे हुए अक्षरों का अधिक प्रयोग हो, छोटे समास अथवा

समास रहित शब्द हों। कांतिगुण-पूर्ण पदावली हो, उसे पांचाली रीति से युक्त कहते हैं। सुकवि इन रीतियों को रस-विशेष के अनुसार प्रयुक्त करते हैं, क्योंकि कोई रस किसी एक रीति द्वारा अधिक निखरता है तो कोई किसी द्वारा।

गुण—जैसे धैर्य, वीरता, उदारता, क्षमा आदि गुणों द्वारा मनुष्य की आत्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है वैसे ही ओज, माधुर्य तथा प्रसाद नामक तीन गुणों द्वारा काव्य की आत्मा अर्थात रस का उत्कर्ष प्रकट हो जाता है। ये तीनों गुण रसों के धर्म हैं, अक्षरों के नहीं, चाहे इनकी व्यक्ति अक्षरों द्वारा ही होती है।

ओजगुण—टवर्ग के बाहुल्य, प्रथम तथा द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्णों के (रिच्छ, क्रुद्ध आदि) संयोग तथा दीर्घ समासों द्वारा कविता मे ओज उत्पन्न हो जाता है। वीर तथा रौद्ररस में ओजगुण का होना अनिवार्य है। वीभत्स तथा भयानक रस भी इस द्वारा अधिक चमत्कृत हो उठते हैं।

माधुर्य गुण—जिस रचना को पढ़-सुन कर हृदय आनन्द से पिघल-सा जाता है, वह माधुर्य गुण-युक्त होती है। ऐसी रचना में न टवर्ग का प्रयोग होता है, न अनुनासिक वर्णों का, न सयुक्त वर्णों का और न दीर्घ सम सों का। यह गुण जोश, उत्साह या क्रूरता आदि को उत्पन्न नहीं करता और ओजगुण का विरोधी होता है। शृंगार, करुण तथा शान्त रस इस गुण द्वारा अधिक निखर उठते हैं।

प्रसाद गुण—जिस गुण के द्वारा कोई रचना पढ़ते-सुनते ही समझ में आ जाए, उसे प्रसाद कहते हैं। ऐसी रचना में शब्द तथा वाक्य सरल-सुबोध होनी चाहियें। यह गुण तो वस्तुतः सभी रसों और समस्त कविताओं में रहना चाहिए।

दोष.- जैसे काव्य का गुणों से युक्त होना आवश्यक होता है वैसे ही उसका दोषों से मुक्त होना भी। सुन्दर व्यक्ति यदि फुलबहरी के एक भी धब्बे से युक्त हो तो उसकी सुन्दरता को धक्का लगता है और उसके आकर्षण मे न्यूनता आ जाती है। इसी प्रकार कविता यदि किसी दोष

से युक्त हो तो उसका प्रभाव तथा सौन्दर्य भी क्षीण हो जाता है। साहित्यिकों ने कविता मे अनेक प्रकार के दोष गिनाए हैं, जैसे शब्दगत दोष, अर्थगत दोष और अलंकारगत दोष।

जो शब्द सुनने मे कड़वे हों उनमे श्रुतिकटुत्व दोष होता है। जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हों उनमे च्युतसंस्कारत्व दोष होता है, इत्यादि। जो अर्थ अश्लील हो या बार बार कहा जाय उसमे क्रमश. अश्लीलत्व तथा पुनरुक्त दोष होता है. इत्यादि। कविता मे संचारी तथा स्थायी भावों और रसों की प्रतीति व्यंग्य द्वारा होनी चाहिए। जहां इन का शब्द द्वारा कथन कर दिया जाय वहां रसगत दोष होता है। अलंकारों में भी अनेक प्रकार के दोष आ सकते हैं, जैसे उपमान तथा उपमेय में वचन या लिंग का भेद हो। इन सब प्रकार के दोषों की सख्या सैकड़ों तक जा पहुँचती है और सुकवि लोग अपने काव्य को इन से बचाने का सदा यत्न करते रहते हैं।

छंद——यदि हम इस काव्य विवेचना को छदो-विषयक संकेत के बिना ही समाप्त करदे तो उचित न होगा। चाहे छद कविता का अनिवार्य अग नहीं है तो भी यह उसका अत्युपकारक अंग अवश्य है। प्राचीन तथा अर्वाचीन काल मे अधिकतर कविता छन्दों मे ही लिखी गई है। और इसमे सन्देह भी नहीं कि छन्दोहीन कविता की अपेक्षा छन्दोबद्ध कविता अपनी कर्णमधुरता के कारण अधिक रुचिकर और प्रभावशाली हो जाती है। छन्द या पद्य उस रचना का नाम है जिसमे वर्णों या मात्राओं की संख्या, विराम गति या लय तथा तुक का ध्यान रखा जाता है। प्राचीनकाल मे प्रायः दो प्रकार के छन्द प्रयुक्त होते थे। मात्रिक तथा वर्णिक। परन्तु वर्तमानकाल मे और दो प्रकार के छन्दों का आविष्कार हुआ है जिन्हें उभय तथा स्वच्छन्द छंद कहते हैं। उभयछद मे वर्ण तथा मात्रा दोनो का ध्यान रखकर रचना की जाती है तथा स्वच्छन्द छन्द मे केवल लय का ध्यान रखा जाता है।

समूचे कथन का सार यह है कि कविता उस रचना को कहते है जिसे पढ़-सुन कर चित्त अलौकिक आनन्द मे मग्न हो जाय और जो गुणो तथा रीति से युक्त हो, दोषों से शून्य हो और प्राय. छन्दोबद्ध तथा अलंकारों से विभूषित हो।

प्रश्न ४—काव्य के भेद कौन-कौन से है ? दृष्टान्तो द्वारा स्पष्ट करो ?

उत्तर—प्रायः काव्य रचना दो उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर की जाती है। जो काव्य इस उद्देश्य से लिखा जाता है कि उसे रंगमंच पर खेला जा सके उसे अभिनय द्वारा देखा जा सके, उसे दृश्य-काव्य कहते हैं। जो काव्य केवल इसी उद्देश्य से लिखा जाता है कि वह पढ़ा तथा सुना जा सके, उसे श्रव्य-काव्य कहते हैं। यद्यपि दृश्य काव्य भी पढे तथा सुने जा सकते हैं तथापि वे पठन तथा श्रवण-मात्र से उतने आह्लादक नही होते जितने के अभिनय द्वारा, इसी कारण से उन्हें दृश्य-काव्य कहा जाता है। दृश्यकाव्य के दो प्रधान भेद माने जाते हैं—रूपक तथा उपरूपक। इनमें से रूपक के दस तथा उपरूपक के अठारह भेद होते हैं। रूपक के दस भेद ये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथी, ईहामृग तथा अंक। उपरूपक के अठारह भेद ये है:—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, रासक, प्रेक्षणक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भणिका।

हिन्दी मे नाटक शब्द का प्रयोग रूपक के अर्थ मे होने लग पड़ा है, परन्तु वस्तुगत्या नाटक तो रूपक के दस भेदों मे प्रथम तथा सर्व-प्रधान है। दृश्यकाव्यों मे गद्य तथा पद्य दोनों मे रचना की जाती है। सत्य हरिश्चन्द्र, अजातशत्रु आदि दृश्य काव्य हैं।

श्रव्य काव्य—शैलीभेद से श्रव्य-काव्य के तीन भेद किए जाते हैं। गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, चंपूकाव्य। प्राचीन काल मे प्राय पद्यमयी रचना को ही काव्य कहा करते थे परन्तु समीचीन तो यही है कि जिस रचना मे भी रसात्मकता हो, मनोवेगों को उद्‌बुद्ध करने का विशेष सामर्थ्य हो, उन सबको काव्य कहा जाय। इसी दृष्टि से भाव-प्रधान कथा कहानिया, आख्यायिकाएं निबंध, उपन्यास तथा गद्यमुक्तक भी गद्यकाव्य ही हैं। दृष्टान्त के रूप में श्रीवियोगीहरि-रचित अन्तर्नाद तथा तरंगिनी और श्रीरामकृष्ण-दास-रचित साधना तथा भावुक गद्यकाव्य ही है।

पद्य काव्य—जो काव्य छन्दोबद्ध होते हैं अर्थात् जिनकी

चना मे वर्ण, मात्रा, गति, यति, तुक आदि का ध्यान रखा जाता है, उन्हें पद्यकाव्य कहते हैं।

पद्यकाव्य के दो भेद होते हैं—मुक्त तथा प्रबंध।

मुक्तक—अभिनवगुप्ताचार्य ने मुक्तक का यह लक्षण दिया है—'पूर्वापरनिरपेक्षापिहि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्' अर्थात् जिस रचना द्वारा पूर्वापर प्रसग की अपेक्षा के विना ही पाठक या श्रोता के मन मे रसका संचार हो जाय वह मुक्तक कहाती है। वह दूसरों से बँधी हुई नहीं होती, मुक्त होती है, इसीलिए उसका नाम मुक्तक रखा गया है। तुलसी, रहीम, विहारी, विक्रम आदि के दोहे तथा मीरा और सूरदास आदि के पद्य मुक्तक के उदाहरण हैं।

प्रबन्ध काव्य—जिस काव्य मे कथा धारावाहिक रूप से वर्णित हो उसे प्रबंध काव्य कहते हैं। ऐसे काव्य मे एकाध दोहे, सवैये या कवित्त आदि से काम नहीं चलता। उसमें तो सैकड़ों-सहस्रों पद्यों का होना आवश्यक है। वे सबके सब पद्य अपने पूर्ववर्ती या परवर्ती पद्यों से संबद्ध रहते हैं, कोई एक पद्य अर्थ को पूर्णतया प्रकट नहीं करता। पृथिवीराज रासो, रामचरित मानस, पद्मावत आदि प्राचीन तथा साकेत, प्रियप्रवास, जयद्रथ वध आदि नवीन रचनाएं प्रबन्ध काव्य ही हैं।

विस्तार के विचार से प्रबन्ध के दो अवान्तर भेद होते हैं—महाकाव्य तथा खंड-काव्य।

महा काव्य—महाकाव्य आकार की दृष्टि से बड़ा तथा विषय की दृष्टि से व्यापक होता है। उसमें जीवन का पूर्ण तथा विस्तृत वर्णन होता है। उसका नायक कोई देवता या सत्कुल-जात क्षत्रिय होता है। उसके सर्ग आठ से अधिक होते हैं, जो आकार में न बहुत बड़े और न बहुत छोटे होते हैं। सम्पूर्ण सर्ग एक ही छन्द मे रचा हुआ होता है परन्तु अन्तिम एक-दो पद्य भिन्न छन्दों मे रहते हैं। उसमें प्रातः, सूर्योदय, मध्याह्न, सध्या, रात्रि, वन, पर्वत, समुद्र, संग्राम, यात्रा, प्रेम विवाह आदि का वर्णन रहता है। उसका प्रधान रस शृंगार, वीर या शान्त, होता है, शेष रस रहते तो हैं परन्तु गौन रूप से। रामचरित मानस रामचरित चिन्तामणि, साकेत, प्रियप्रवास आदि महाकाव्य हैं।

खंड काव्य—खंड काव्य आकार तथा विषय की दृष्टि से महा काव्य से छोटा होता है। उसमे जीवन के किसी एक भाग का धारा वाहिक रूप से संक्षिप्त वर्णन रहता है। गुप्तजी के जयद्रथ वध, पंचवटी वनवैभव तथा त्रिपाठी जी के पथिक, मिलन तथा स्वप्न खंड काव्य ही हैं।

चंपू—श्रव्य-काव्य का तीसरा भेद चंपू कहाता है। न य केवल गद्य मे होता है न केवल पद्य म। इसमे दोनों का मिश्रण रहत है। इसीलिए इसे मिश्र-काव्य भी कह दते ह। श्री वियोगी हरिजी क प्रेमयोग तथा साहित्य विहार प्रसाद जी के चित्राधार मे संगृहीत उर्वशी तथा बभ्रु वाहन चंपू या मिश्रकाव्य हा हैं।

उत्तम, मध्यम तथा अधम काव्य—

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के उक्त सभी भागो को तीन अवान्तर भाग मे बाटा जाता है। काव्य में मुख्य पदार्थ व्यंग ही होती है। जिस काव्य मे व्यग प्रवान हो अर्थात् साधारण अर्थ से खूब बढ़-चढ़ कर हो, उसे उत्तम काव्य या ध्वनिकाव्य कहते हैं। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि व्यंग्य का शब्दो द्वारा स्पष्ट कथन नही होता, केवल प्रकाशन होता है। जैसे:—

सीता-हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥ (तुलसीदास)

श्रीराम जटायु से कह रहे हैं—हे पूज्य, आप यहाँ स जाकर स्वर्गस्थ पिता (दशरथ) जी से सीताहरण का वृत्तान्त मत कहिएगा। यदि मेरा नाम राम है तो रावण अपने वश-समेत वहा पहुँच कर स्वय-मेव यह बात दशरथ से कह देगा। यह तो हुआ साधारण अथ या वाच्यार्थ। इस मे व्यंग यह है कि मैं रावण को सपरिवार मार कर दिखा दूँगा कि मैं उनका वीर सपूत हूँ, कायर कपूत नहीं।

जिस काव्य मे व्यंग्यार्थ साधारणार्थ की अपेक्षा प्रधान हो किन्तु समान या गौण (न्यून) हो वह मध्यम या गुणीभूतव्यग्य काव्य कहा जाता है। एक उदाहरण देखिए—

हुआ था फणि-पाश-बन्धन यहाँ, द्रोणादि लाया यहाँ—
तेरे देवर के लिए अयि प्रिये ! जा मारुति ही वहाँ ।
सौमित्रि-शर से सुरेन्द्र-जित भी स्वर्गस्थ हुआ यहीं,
कीया था दशकठ का वध यहीं देखो किसी ने कहीं ॥

(राजशेखर रामायण-अनुवाद)

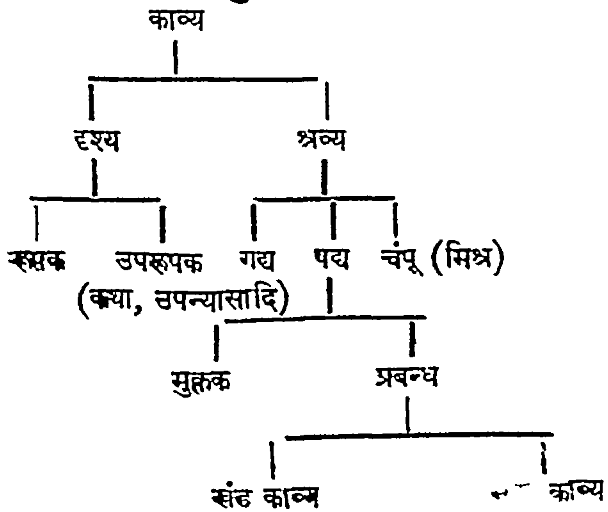
रावण को मार कर श्रीराम विमान-द्वारा अयोध्या जाते समय सीता जी को रण-भूमि दिखा रहे हैं। यहां चतुर्थ पद का वाच्यार्थ यह है 'रावण का वध किसी ने यहीं किया था'। परन्तु इसके व्यंग्यार्थ 'हम ने किया था' का बोध वाच्यार्थ के समान झट हो जाता है, इसलिए यह गुणीभूत है।

जिस काव्य मे व्यंग्यार्थ न प्रधान रूप से हो, न समान-रूप से और न गौण-रूप से, किन्तु जिस में केवल वाच्यार्थ में ही चमत्कार हो, उसे अधम काव्य, चित्र काव्य या अलंकार-काव्य कहते हैं। इस अधम, चित्र या अलंकार काव्य में ऐसी रचनाएं की जाती हैं जिन में अलंकारों की प्रधानता रहती है या अक्षरों के विशिष्ट विन्यास द्वारा कमल, धनुष, खड्ग आदि के चित्र बनते हैं। जैसे—

बीथिन मे ब्रजमे नवेलिन मे बेलिन मे, बननमें बागनमे बगरो बसत है।(पद्माकर)

यहां पर वाच्यार्थ प्रधान है और वृत्त्यनुप्रास का चमत्कार है, व्यंग्य न प्रधान है न गौण, इस लिए यह अधम काव्य है।

काव्य के उपर्युक्त भेदों को चित्र द्वारा यों प्रकट कर सकते हैं:—



प्रश्न ५—प्रबन्ध काव्य से तुलना करते हुए मुक्तक काव्य की विशेषता पर अपने विचार संक्षेपत: प्रकट कीजिए।

उत्तर—मुक्तक काव्य तथा प्रबन्ध-काव्य का प्रधान भेद उनके अपने-अपने नाम से ही व्यक्त हो जाता है। मुक्तक-काव्य मुक्त अर्थात् स्वतंत्र होता है। एक ही पद्य उद्दिष्ट अर्थ को पूर्णतया प्रकट कर देता है, पूर्वापर प्रसंग खोजने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। प्रबन्ध-काव्य मे यह बात नहीं होती। उसका प्रत्येक पद्य पूर्ववर्ती तथा परवर्ती पद्यों से संबद्ध रहता है। कोई भी एक पद्य स्वतंत्र अर्थ नहीं देता। उनके किसी भी पद्य को पढ़ डालिए, पूर्वापर की जिज्ञासा बनी ही रहेगी। दोनों प्रकार के काव्यो का विषय-क्षेत्र भी पृथक-पृथक होता है। नीति की उक्तियां, मनोहारी, सुभाषित, छोटी-छोटी प्रभावशाली घटनाएं और विभिन्न अवसरों पर एकाएक मन में प्रस्फुटित होने वाले भाव मुक्तक काव्य द्वारा ही सुचारु-रूपेण प्रकट किए जा सकते हैं। प्रबन्ध-काव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है। विस्तृत घटनाएं, संपूर्ण जीवन-चरित्र, कथाएं तथा उपाख्यान प्रबन्ध-काव्य का ही आश्रय लेते हैं। न मुक्तक के विषय प्रबध काव्य द्वारा वर्णित हो सकते हैं, न प्रबन्ध काव्य के विषय मुक्तक द्वारा। चाहे इस दृष्टि से दोनों समान ही हैं तो भी काव्यकला, उपयोगिता, प्रभावोत्पादकता तथा सरसता की दृष्टि से प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा मुक्तक ही अधिक महत्त्वशाली प्रतीत होता है। प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र के अति विस्तृत होने के कारण प्रबन्धकार कवि को सैंकड़ों-सहस्रों छन्दों की रचना करनी ही पड़ती है। उस कथा-वस्तु मे कई स्थान स्वभावत: सरस होते हैं, कई नीरस, कई घटनाए रोचक होती हैं और कई साधारण। इस के अतिरिक्त उन के लिखने मे कवि के कई कई मास और कभी-कभी कई-कई वर्ष लग जाते हैं। कवि का मन भी हर समय एक सी सरस और हृदयग्राही रचना नहीं कर सकता। इन बातों का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि प्रबन्ध-काव्य मे कहीं-कहीं तो अधिक रस-परिपाक, उक्ति-वैचित्र्य भाव-गांभीर्य आदि मिलते हैं और कहीं-कहीं पर न्यून। परन्तु, मुक्तक मे यह दोष नहीं आ सकता। वहां तो ज्योंही कोई घटना दृष्टिगत हुई, कोई लोकोत्तर

सौन्दर्य दिखाई दिया, कोई अनूठा भाव मन में उदित हुआ, कोई विशिष्ट कल्पना सूझी, त्योंही मुक्तक रच डाला गया। और इस बात का साक्ष्य प्रत्येक कवि निःसंकोच देगा ही कि भावोदय के समकाल ही जो रचना की जाती है, वही अधिक स्वाभाविक, आकर्षक, सरस तथा प्रभाव शाली होती है, हां, छोटा-मोटा परिष्कार पीछे भी किया जा सकता है मुक्तक मे एक ही पद्य बनाना होता है, इस लिए कवि उसमें उपयुक्त वर्णों, उचित अलंकारों, अधिकाधिक सुन्दर शब्दों, तथा उपयोगी छंद आदि का प्रयोग उत्साह-पूर्वक करता है। परन्तु प्रबन्ध-काव्य की रचना बडे धैर्य और साहस का काम है। वहां तो पहले दो-चार सर्गों में ही कवि का भाव-भंडार, शब्द-कोष, अलंकार-ज्ञान, उक्ति-वैचित्र्य आदि समाप्त-प्राय हो जाता है। उसके बाद के सर्गों में न पहले का सा भाव-गांभीर्य रहता है, न शब्द वैचित्र्य, न अलंकार-चमत्कार। इस बात की सत्यता का प्रत्येक सहृदय पाठक किसी भी प्रबन्ध-काव्य को ध्यान पूर्वक पढ़ता हुआ अनुभव कर सकता है। मुक्तक की रचना में प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा कवि को अधिक सावधान या चौकस रहना पड़ता है। उसके पास केवल एक ही छन्द होता है, कभी दोहे, बरवै जैसा छोटा और कभी कवित्त-सवैये जैसा बडा। इतने तग दायरे मे उसे एक संपूर्ण भाव ऐसी चातुरी से भरना होता है कि भाव-व्यक्ति में भी कोई दोष न रह जाय और अक्षरों, मात्राओं, गति यति, तुक आदि के नियमो का भी निर्दोष निर्वाह हो जाय। यह साधारण मामला नहीं है, टेढ़ी खीर है, कवि की परीक्षा है। उत्तीर्ण हो जाय तो साधुवादों का पात्र बने अनुत्तीर्ण रहे तो आलोचकों की फब्तियां सहे, कि एक मुक्तक बनाया वह भी सदोष। प्रबन्ध-काव्य-कार इस प्रकार की परीक्षाओं से बचा रहता है। जो बात चार पद्यों मे कही जा सकती है, उसे छः मे कह दे, तो कौन आक्षेप करता है। इसलिए उस का काम इतना कष्टसाध्य नहीं जितना मुक्तककार का।

उपयोग की दृष्टि से भी मुक्तक प्रबंध-काव्य को पीछे छोड जाता है। पारस्परिक वार्तालाप में, राजदरबारों मे, सभा-समाजो मे, उपदेश-व्याख्यानों मे, वाद-विवादों मे तथा अन्त्याक्षरी-प्रतियोगिताओ आदि

में अपने कथन का समर्थन करने के लिए, सामाजिकों के मनोविनोद के लिए, उपदेशों को प्रभावशाली बनाने के लिए, प्रतिवादी को परास्त करने के लिए तथा प्रतियोगी को पछाडने के लिए जैसे उपयोगी मुक्तक सिद्ध होते हैं वैसे प्रबंधकाव्य त्रिकाल मे भी नहीं हो सकते। प्रबन्ध-काव्य तो वन-स्थली के समान होता है जिस मे कई फूल रंगदार, कई सुगंधित और कई निर्गंध रहते हैं परन्तु मुक्तक एक चुने हुए गुलदस्ते के तुल्य होता है जिस मे सुकवि-रूपी माली केवल सुगंधित तथा दृष्टिहारी सुन्दर फूलों का ही संग्रह करता है, निर्गंध तथा साधारण पुष्पों को वन में ही मुर्झाने को छोड़ आता है। सच पूछिए तो मुक्तक काव्य जलेबी के समान होता है, जहां से जी चाहे चखिए, अत्यत मधुर तथा रस से परिपूर्ण।

प्रश्न ६.—दोहे के स्वरूप तथा महत्व का वर्णन सक्षेप से कीजिए।

उत्तर-दोहे का स्वरूप—दोहा हिंदी का अत्यन्त प्रसिद्ध छन्द है। इस की गिनती मात्रिक अर्द्धसम छन्दो के अन्तर्गत होती है। इसके चार चरण होते हैं जो दो पंक्तियों मे लिखे जाते हैं। प्रत्येक पक्ति को दल कहते हैं। इसके विषम (प्रथम तथा तृतीत) चरणों मे १३-१३ मात्राए होती हैं और सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) चरणों मे ११-११। इसके विषम चरणों के आदि में जगण (ISI) नहीं आता और समचरणों के अन्त मे गुरु-लघु (SI) अवश्य रहते हैं और तुक भी मिलती है। दोहे के चरणों के आदि मे सम के पीछे सम और विषम के पीछे विषम कला का प्रयोग होता है। इस के विषम चरणों में मात्राएं इस (३+३+२+३+२ अथवा ४+४+३+२) क्रम से तथा सम चरणों मे इस (४+४+३ अथवा ३+३+२+३) क्रम से रहती हैं। जिस दोहे के विषम चरणों के आदि मे जगण हो उसे चडालिनी कहते हैं। लघु-गुरु के भेद से दोहे २३ प्रकार के बन सकते हैं। दोहा छन्द सस्कृत में बिलकुल नहीं मिलता।

दोहे के दो नाम और भी हैं। पंजाबी में इसे दोहरा कहते हैं और राजस्थानी मे दूहा। ये सब शब्द संस्कृत 'द्वि' के विकार दो तथा 'दू' के आगे आवृत्ति बोधक 'हा' तथा 'हरा' प्रत्यय लगाने से बने हैं। इसका नाम दोहा या दोहरा इसी कारण से रखा गया है कि यह दुहरा-दु ... ।।

चलता है, अर्थात् सम के बाद सम तथा विषम के बाद विषम कल का प्रयोग होता है। कई लोगों का विचार है कि इसके दो दल होते हैं और केवल दो (सम) चरणों के अन्त ही में तुक मिलती है इसलिए इसे दोहरा कहते हैं। यह विचार समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि दो दल तो बरवै, सोरठा, मोहनी, अतिबरवै आदि छन्दों मे भी होते हैं और दो चरणों में अन्त्यानुप्रास या तुक बरवै, अतिबरवै आदि मे भी समान रहती है, फिर भी उन्हें दोहा नहीं कहा जाता।

दोहे का महत्व:—जैसे गगा का उद्भव गगोतरी से और जमुना का उद्भव जमनोत्तरी से हुआ है वैसे हो हिन्दी-काव्य का जन्म दोहे से हुआ है। यहा तक कि हिन्दी-काव्य के प्रारंभिक काल म जैसे 'गाथा' शब्द से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दूहा' शब्द से अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी का। जैसे संस्कृत भाषा में मुक्तक-काव्य के लिए शार्दूल, शिखरिणी, उपजाति तथा आर्या छन्दों का व्यवहार हुआ वैसे ही हिन्दी-काव्य मे सवैया, कवित्त (मनहरण), हरिगीतिका रोला तथा दोहे का। फिर इन मे भी जैसे संस्कृत मे अनुष्टुप् प्रियतम छन्द हो गया वैसे ही हिन्दी मे दोहा। निश्चयात्मकता से यह कहना कठिन है कि हिन्दी के कवियों ने अन्य छन्दों की अपेक्षा दोहे को क्यों इतना अधिक अपनाया तो भी अनुमान यही होता है कि इस का कारण इसकी अपनी विशेष गति तथा आकार-लाघव है।

जैसे कविता के विकास मे पहले मुक्तक रचना का होना स्वाभाविक है और उसके पश्चात् ही प्रबन्ध-काव्यों का, वैसे ही छन्दोविकास मे भी पहले आकर्षक प्रवाह से युक्त लघु-काय दोहे का नम्बर आना ही स्वाभाविक है और उसके पश्चात् ही सवैया, मनहरण आदि लंबे-लम्बे छन्दो का। जब एक बार यह प्रचलित हो गया तो अपनी आन्तरिक विशेषताओ के कारण यह इतना प्रसिद्ध हो गया है कि भारत के विभिन्न प्रान्तों मे बसने वाले जिन कवियों ने हिन्दी मे कुछ भी रचना की उन्होंने दोहे भी अवश्य बनाए। लाहौर-निवासी चन्द्रबरदाई के पृथिवीराज रासो मे सैकड़ों-सहस्रों ओजस्वी दोहे वर्तमान हैं, मैथिल कोकिल विद्यापति चाहे अपने सुमधुर गीतों के कारण ही प्रसिद्ध हैं तो भी

द्वारा अनेक भाव-पूर्ण दोहे रचे गए। जहां मरुस्थल वासिनी मीराबाई ने अपने प्रेमपूर्ण दोहों से हिन्दी-काव्य साहित्य को चार चांद लगाए वहां राजदरबार में रहने वाले रहीम ने भी अपने अमूल्य अनुभवों को दोहों में अमर कर दिया। जहां कबीर-नानक आदि सन्त-कवियों ने गहन-गम्भीर अध्यात्म तत्वों को साधारण दोहों में प्रकट किया वहा तुलसीदास, सूरदास तथा केशवदास आदि महा कवियों ने अपनी साहित्यिक भाषा में सरस दोहा-रचना की। इस प्रकार दोहों की जो परंपरा आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी, वह अब तक निरन्तर चली आ रही हैं। वर्तमान युग मे भी भारतेन्दु, हरिऔध, सत्यनारायण, वियोगी हरि, दुलारेलाल, करुण, 'दिनेश' आदि अनेक महानुभाव अभी तक सुन्दर तथा सरस दोहों की रचना कर रहे हैं और दोहे के क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर रहे हैं। प्राचीन-काल मे तो दोहों की रचना व्रज या अवधी भाषा मे ही होती थी परन्तु आज हरिऔध आदि ने साहित्यिक खडी बोली में मर्मस्पर्शी दोहों की रचना करके सिद्ध कर दिया है कि दोहा खड़ी बोली मे वैसा ही माधुर्यस्रावी है जैसा कि व्रजभाषा आदि मे।

रहीम ने दोहे के महत्त्व पर ठीक ही कहा है कि—

दीर्घ दोहा अर्थ के, आखर थोड़े आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिट कूद कढि जाहिं।

भाव यह है कि दोहे के थोड़े से अक्षरों में सुविस्तृत अर्थ ऐसा सिमिट कर बैठा होता है कि जैसा नट सिमिट कर छोटी सी पटारी में बैठ जाता है। इसी विशेषता तथा लय की मधुरता के कारण हिन्दी में अनेक सतसइयां रची गईं जो सब दोहों में ही हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण प्रत्येक सत्संग मे, कथा-वार्ता मे, व्याख्योपदेश मे, सभा-समाजों मे तथा वाद-विवादादि मे उपयुक्त दोहों द्वारा श्रावक लोग श्रोताओं को चमत्कृत तथा रसमग्न कर देते हैं।

प्रश्न ७.—कबीर साहब के दोहों के सबन्ध मे निज विचारप्रकट कीजिए।

उत्तर—हिन्दी के प्रधान दोहाकारों में कबीर साहब की दूसरों से तुलना करना कठिन काम है। तुलसी, बिहारी, मतिराम, वृन्द

आदि प्रधानतः साहित्यिक व्यक्ति थे और उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा दिखाते हुए अपनी अपनी सतसइयों की रचना की। परन्तु कबीर साहब का उद्देश्य ही दूसरा था। आध्यात्मिक ज्ञान का जो स्वच्छ स्रोत सतत उनकी अन्तरात्मा में बहता रहता था, उसी के शीतल, शान्तिप्रद छींटे उनके दोहों के रूप मे प्रकट हो जाते थे। कबीर साहब के दोहे साखी में संगृहीत हैं और वहीं से प्रस्तुत दोहे भी लिए गए हैं। उनके दोहों से प्रतीत होता है कि वे निर्गुण, सर्वव्यापक ब्रह्म के उपासक थे और मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन आदि से मुक्ति-लाभ को व्यर्थ समझते थे वे कहते हैं:—

पाथर पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजौं पहार।
तातें यह चाकी भली पीस खाय संसार॥

वे परमात्मा को प्राप्त करने के लिए वनों तथा तीर्थों में घूमना निष्फल समझते थे और हृदय मे ही भगवान् को ढूंढने का उपदेश देते थे:—

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढै बन माहिं।
वैसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं॥

गुरु-भक्ति का भाव उन में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता था और कहीं-कहीं तो उसे ईश्वर से भी ऊँचा पद देने का साहस दिखाते थे। जैसे:—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया मिलाय॥

कबीर साहब हिन्दू-मुस्लिम दोनों की निस्सार रूढ़ियों तथा बाह्य आडंबरों का खंडन करते थे। जैसे—

केसन कहा बिगारिया जो मूँडौ सौ बार।
मन को क्यों नहीं मूँडिए जामे विषै विकार॥
कबिरा माला मनहिं की और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिले गले रँहट के देखे॥

वे परंपरागत जन्ममूलक जात-पात के विरोधी थे और ज्ञान तथा सदाचार को ही प्रधान मानते थे। जैसे—

जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।

निंदक नियरे राखिए, आगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन विना निर्मल करै सुभाय ॥

इन के दोहे रहस्यवाद से पूर्ण हैं । उन में अनंत, परिपूर्ण ब्रह्म को प्रियतम मान कर तथा अपने आपको दुलहिन मान कर अपनी प्रेम-पीड़ा तथा विरह-वेदना का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया गया है। जैसे:—

मांस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग ।
साहब अजहुँ न आइया, मन्द हमारे भाग ॥
जाहु वैद घर आपने तेरा किया न होय ।
जिन यह वेदन निर्मई, भला करैगा सोय ।

वैष्णव संप्रदाय से उन्होंने अहिंसा के भाव ग्रहण किए और हिंसा-परायण मुसलनानों को खूब फटकारा:—

दिन भर रोजा रहत है राति हनत हैं गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कैसी खुसी खुदाय ॥

ईश्वर-प्राप्ति को मावन जीवन का चरम उद्देश्य समझते हुए उन्होंने संसार में मोह-त्याग का तथा वैराग्य का उपदेश दिया है:—

तू मत जानै बावरे मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बंध रहा सो अपना नहिं होय ॥
हाड जरै ज्यों लाकरी केस जरै ज्यों घास ।
सब जग जरता देख करि भए कबीर उदास ॥

हम पूर्व कह चुके हैं कि कबीर साहब का महत्त्व उनके काव्यत्व या साहित्यिकता के कारण नहीं । वे तो सधुक्कडी भाषा में अर्थात् उस खड़ी बोली में, जिसमे राजस्थानी तथा पजाबीं का भी मिश्रण रहता था, अपने दोहों की रचना करते थे । उनकी भाषा परिष्कृत तथा परिमार्जित न थी तो भी उनकी प्रखर प्रतिभा उन मे से फूटी पडती है । कही-कहीं पर तो उनके दोहे वृन्द के दोहों से टक्कर लेने लगते हैं, पर ऐसे स्थल बिरले हैं । जैसे:—

साचे कोई न पतीजई, झूँठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरे, मदिरा बैठि बिकाय ॥

कहीं-कहीं तो यों प्रतीत होता है कि परवर्ती कविवरों में इन्हीं के दोहों से भाव लेकर उनको अधिक परिमार्जित भाषा मे प्रस्तुत कर दिया है। उदाहरणार्थ सूरदास जी का पद—

मेरो मन अनन्त कहा सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै॥

कबीरदास जी के

साहिब तुमहिं दयाल हो तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझै और न ठौर॥

दोहे का विस्तृत और सरल रूप है। इसी प्रकार रहीम जी का दोहा—

कहु रहीम कैसे बनै बेर-केर को संग।
ये डोलत रस आपने उनके फाटत अंग॥

कबीर दास जी के

मारी मरै कुसंग की ज्यो केले ढिग केर।
वह हालै वह चीरई साकट संग निवेर॥

इस दोहे का आश्रय लेकर ही बनाया है। सार रूप मे कह सकते हैं कि कबीर साहब के दोहे अपने भावों की मौलिकता, गंभीरता तथा तीव्र अनुभूति के कारण ही हिन्दी-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, छन्द, अलंकार तथा भाषादि के परिष्कार के कारण नहीं।

प्रश्न ८.—तुलसीदास, रहीम तथा वृन्द के दोहो की विशेषताओ का वर्णन करते हुए परस्पर तुलना कीजिए।

उत्तर—तुलसीदास जी की तुलसई सतसई तथा वृन्दकवि की वृन्दविनोद सतसई प्रसिद्ध ही हैं। कहा जाता है कि रहीम ने भी सतसई ही लिखी थी परन्तु खेद है कि अब उसके पूरे दोहे नहीं मिलते। इसलिए इनके दोहों के संग्रह को रहीम सतसई न कह कर रहीम दोहावली कहना ही उचित होगा। इन तीनों श्रेष्ठ कवियों के दोहे मनोहर सूक्तियां हैं, जिनमे नैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा परमार्थिक उपदेश भरे पड़े हैं।

चाहे इस बात मे प्राय सभी समालोचक सहमत है कि हिन्दी-कवियों में सर्वश्रेष्ठ तुलसीदास जी हैं तो भी यह बात माननी ही पड़ेगी

कि सूक्ति-रचना में तुलसीदास इतने सफल नहीं हुए जितने कि रहीम तथा वृन्द। सूक्ति की विशेषता इस बात मे होती है कि उसमें कही हुई बात किसी विशेष आश्चर्यजनक ढंग से कही जाय, उसमें कुछ वक्रता या बांकापन अवश्य होना चाहिए। इसके साथ ही प्रसादगुण जितना अधिक होगा, क्लिष्ट-कल्पना तथा कूट-रचना जितनी कम होगी, भाषा जितनी स्वाभाविक तथा बोल-चाल से मिलती-जुलती होगी, दृष्टान्त जितना उपयुक्त तथा हृदयस्पर्शी होगा, उतनी ही सफल वह सूक्ति समझी जायगी। इन कसौटियों पर कसने से विदित होता है कि तुलसीदास जी इस क्षेत्र मे अग्रणी नहीं हो सके हैं। कुछ दोहे तो कोरे उपदेश हैं जिनका पाठक के चित्त पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे:—

ज्ञान गरीबी गुरु धर्म नरम वचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छोड़िए सील सत्य सन्तोख॥

और देखिए—

तुलसी निज कीरति चहहिं पर की कीरति खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है मिटिहि न मरिहैं धोय॥

ये दोहे कोरे उपदेश-वचन हैं और कबीरदास के दोहों से इनमें कोई विशेषता प्रतीत नहीं होती। फिर इनके दोहों मे बहुतेरे ऐसे हैं जो कि कूट हैं, जिनके आशय तक पहुंचने में मस्तिष्क को पर्याप्त व्यायाम करना पड़ता है। प्रसादगुण उनमे नाम-मात्र को को भी नहीं। जैसे:—

तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निसंक।
आदि अन्त निरवाहबो जैसे नव को अंक॥

तुलसी सतसई मे सपूर्ण तीसरा शतक ऐसे क्लिष्ट दोहों से भरा है। सच पूछो तो ऐसी रचना को कविता कहना ही अनुचित है।

तो भी यह नहीं कह सकते कि इनके सभी दोहे ऐसे ही हैं क्योंकि उनमें जहां-तहां अत्युत्तम सूक्तियां भी उपलब्ध होती हैं जिनमे बात अनूठे ढंग से कही गई है और इस लिए बड़ी प्रभावशाली सिद्ध होती है। जैसे:—

हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥

इसमें संसार की स्वार्थपरायणता का चित्र-सा खींच दिया है।

निम्नलिखित दोहे से तुलसीदास जी के जगन्निरीक्षण का कैसा स्पष्ट प्रमाण मिलता है। कहते हैं:—

नीच चंग सम जानिए, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढत अकास॥

तुलसीदास जी के अधिकतर दोहे भक्ति, आत्म बोध, कर्मसिद्धान्त आदि विषयों पर हैं परन्तु पर्याप्त दोहे राजनीति-विषयों मे भी कहे गये हैं। एक उदाहरण देखिए :—

बरखत हरखत लोग सब करखत लखै न कोय।
तुलसी भूपति भानुसम, प्रजा-भाग-बस होय॥

तुलसीदास जी के दोहे विशुद्ध ब्रजभाषा मे लिखे हुए हैं और उन में अलकारों का प्रयोग सुरुचिपूर्ण ही हुआ है। जैसे:—

जातरूप जिमि अनल मिलि लखित होत तन ताय।
संत सीतकर सीय तिमि लसहिं राम पद पाय॥

कवि वृन्द के दोहे सूक्ति-कसौटी पर कसने पर खरे उतरते हैं। उन में प्रसाद-हीन कूटों तथा नीरस कोरे उपदेशों को स्थान नहीं दिया गया। प्रत्येक दोहा एक सुन्दर सूक्ति है जिसी मे किसी अत्युपयोगी तथ्य का निर्देश किया गया है। फिर उसी दोहे मे उसी तथ्य का समर्थन करने के लिए एक मर्मस्पर्शी दृष्टान्त दे दिया गया है। कहा जाता है कि सूक्ति की वक्रता तलवार की धार के तुल्य होती है और दृष्टान्त उस तलवार की मूठ होती है। सो खड्ग की मूठ पर जितना दृढ़ अधिकार होगा तथा उसकी धारा जितनी ही पैनी होगी, प्रहार भी उतना ही कारी पड़ेगा। इस दृष्टि से वृन्द के दोहे अति प्रभविष्णु सिद्ध होते हैं। उनके सभी दोहों में वाग्वैदग्ध्य समान-रूप से विद्यमान है। दृष्टान्त भी पूरे फबते हुए और सुरुचि-पूर्ण दिए हैं। भाषा की सरलता, मुहावरों की प्रचुरता तथा कहावतों की बहुलता इन सूक्तियों को जितनी प्रभावशाली बना रही है उतनी ही लोक-प्रिय। यही कारण है कि वृन्द के सैकड़ों दोहों का अनेक व्याख्याता उपदेशक, कथक तथा सुधारक कंठस्थ कर लेते हैं। कुछ दृष्टान्त देखिए :—

हरत दैव निर्बल अरु दुर्बल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छाँडि कै, देत छाग बलिदान॥

विधि के विरचे सुजनहू दुरजन सम ह्वै जात
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात ॥

इन की भाषा स्वच्छ, सरल सुबोध व्रज की बोली है। भाषा का असाधु-प्रयोग सारी सतसई में एक ही स्थान पर है :—

खलजन सौं कहिए नही गूढ कबहुँ करि मेल।
यो फैले जग माहिं ज्यों जल पर बूँद की तेल ॥

यहां कहना 'तेल की बूँद' था परन्तु कह उलटा दिया है ! और यह बड़ा भारी दोष है।

इनके कुछ एक दोहे ऐसे भी हैं जिनमें भाव तथा दृष्टान्त मौलिक नहीं है। वे दूसरों के आधार पर ही लिखे हुए हैं। जैसे :—

दुष्ट निकट वसिए नहीं, वसि न कीजिए वात।
कदली बेर प्रसग तै, छिदे कटक न पात ॥

यह दोहा कबीर के अनुकरण पर लिखे हुए रहीम के इस दोहे को देख कर ही रचा गया है।

कहु रहीम कैसे वने बेर-केर को संग।
ये डोलत रस आपने उनके फाटत अग ॥

पर वृन्द ने केवल भाव की चोरी ही को यह बात नहीं की है। भाव रहीम से लेकर उस पर छाप अपनी लगा दी है, भाव विशद-तर हो गया है, प्रभाव बढ़ गया है। रहीम ने तो केवल बेर और केले की संगति का परिणाम-मात्र दिखा दिया है। पर वृन्द ने बात स्पष्ट-रूपेण समझा कर कहा कि न दुष्टों के साथ रहो न उनसे बात करो, नहीं तो केले के पत्तों की-सी दशा हो जायगी।

सूक्ति-रचना मे यदि वृन्द की टक्कर का कोई कवि है तो रहीम ही है। ये अकबर के नौ रत्नों मे से थे और उसके प्रधान सेनापति भी थे। साथ ही ये अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। अपने विस्तृत पांडित्य तथा जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक अनुभवों के कारण इनके दोहे भी वैसे ही सरस और प्रभावपूर्ण है जैसे वृन्द के। वृन्द के प्रत्येक दोहे मे से मार्मिकता तथा सुकाव्यत्व स्पष्टतया झलकता हुआ दिखाई देता है। व्रजभाषा पर इनका अधिकार तुलसीदास जी से कम न था। भावों की सत्यता तथा लोकोपयोगिता और भाषा का

स्वच्छता तथा सुबोधता के कारण इनके दोहे भी हिन्दी भाषी प्रान्तों में वैसे ही लोगों की जिह्वा पर चढ़े हुए हैं, जैसे वृन्द के। इनके सूक्ष्म निरीक्षण तथा सांसारिक अनुभवों का वर्णन देखिए:—

खीरा सिर तें काटिए, मलिए लोन लगाइ।
रहिमन करुए मुखन की, चहियत यही सजाय॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढे दोऊ काम।
साँचे को तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम॥
रहिमन सूधी चाल सौं, प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न होइ सकै, टेढे की तासीर॥

इन के दोहों में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण, श्रीराम, नल, पांडव, वामनावतार आदि हिन्दू देवताओं के चरित्रों की ओर काव्यत्व-पूर्ण संकेत किए गए हैं और उनसे शिक्षा-ग्रहण का उपदेश दिया गया है, जैसे:—

धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूंढत गजराज॥

अहल्या-तरण की कथा की ओर कितना मार्मिक संकेत है। उन्होंने अपने दोहों में अपने निजी जीवन के मधुर तथा कटु दोनों प्रकार के अनुभवों का भी बड़ा सच्चा वर्णन किया है। क्रमश. उदाहरण देखिए.—

तब ही लग जीबो भलो, दीनो परै न धीम।
बिन दीबौ जीबौ जगत्, हमे न रुचै रहीम॥
ये रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वे नाहिं॥

उक्त अनेक सद्गुणों के होते हुए भी इनकी कविता मे कहीं-कहीं पुनरुक्ति पथा भावापहरण भी दिखाई देता है। पुनरुक्ति देखिए:—

जेहिं अचल दीपक दुरे, हन्यो सो ताहि गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात॥
जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होति है, वाही पट की चोट॥

(ख) भावपहरण का एक उदाहरण देखिए :—

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।

तुलसी परखत रहब नित, इन्हि न पलटत बार ॥
उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार ।
रहिमन इन्हैं सभारिए, पलटत लगैं न वार ॥

परन्तु इन्हीं ने कहीं-कहीं दूसरों से भाव लिए हों, यही बात नहीं है। परवर्ती कवियों ने इनके मार्मिक भावों को निःसंकोच ग्रहण किया है। जैसे:—

रहिमन नीचन सग बसि, लगत कलक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझै सब ताहि ॥ (रहीम)
जिहि प्रसंग दूषण लगैं, तजिए ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥ (वृन्द)

सो उपर्युक्त पर्यालोचन से यही सिद्ध होता है कि रहीम तथा वृन्द सूक्तिकार के रूप में समान हैं और इस दिशा मे तुलसीदास जी के दोहे उनके दोहों की समता नहीं कर सकते ।

प्र० ९—बिहारी का अनुकरण करने वाले कवियों मे से मुख्य-मुख्य कौन से है ? वे अपने प्रयत्न मे कहा तक सफल हुए हैं ?

उ०—जैसे बिहारी ने सातवाहन-संगृहीत गाथा-सप्तशती तथा गोवर्धनाचार्य प्रणीत आर्यासप्तशती को अपने आदर्श ग्रथ मान कर निज बिहारी सतसई की रचना की, वैसे ही इनकी सतसई को आदर्श मानकर अनेक परवर्ती कवियों ने अपनी-अपनी सतसइयों तथा दोहा-संग्रहों की रचना की। बिहारी के अनुकरण पर मतिराम ने 'मतिराम सतसई, रसनिधि ने 'रतन हज़ारा' राम सहाय ने 'राम सतसई' तथा विक्रमसाहि ने 'विक्रम सतसई' बनाई। बिहारी की सतसई के तुल्य ही मतिराम सतसई, राम-सतसई तथा विक्रम-सतसई का विषय शृंगार है तथा दोहा सख्या सात सौ। किन्तु, रसनिधि ने केवल विषय का अनुकरण किया है दोहा-संख्या बढ़ाकर एक सहस्र कर दी है। अब हमें यह देखना है कि इन कवियों को अपने प्रयत्न मे कहां तक सफलता मिली है। किसी पूर्ववर्ती कवि के भावों को केवल दूसरे शब्दो मे ज्यों का त्यों प्रकट कर देना नितान्त निंद्य कृत्य है। हा यदि परवर्ती कवि किसी पुराने कवि के भाव की झलक-मात्र लेकर, उसके भाव को अधिक गहराई या विस्तार से

अनुभव करके, किसी अनोखे ढंग से वर्णन करता है तब वह पुराने भावों पर अपने व्यक्तित्व की छाप सी लगा देता है और आलोचकों के 'कृपा कटाक्षों' का लक्ष्य नहीं बनाता। साहित्याचार्यों का कथन भी है:—

नास्त्यचौर. कविजन' नास्त्यचौरो वणिग्जन: ।
स नन्दति विना वाच्यं, यो जानाति निगूहितुम् ॥

भाव यह हैं कि कवि और बनिए दूसरों के भाव तथा माल लेते ही हैं। परन्तु यदि वे उस अपहृत भावों तथा द्रव्यों को सम्यक् छिपा सकते हैं तो वे चोर नहीं समझे जाते।

तथ्य तो यह है कि ससार, मे नितान्त नई तो कोई भी बात नहीं होती। नई प्रतीत होने वाली वस्तुओं मे भी, ध्यानपूर्वक देखने पर, नई तथा पुरानी का मिश्रण ही मिलेगा। तो भी, परवर्ती कवियों का कर्तव्य होता है कि वे अपने पूर्ववर्तियों का कोरा अनुकरण न करें, इनके द्वारा प्रकटित भावों मे कुछ नवीनता लाने की चेष्टा अवश्य करें। बिहारी ने यही किया और इस बात मे पूर्णतया सफल भी हुए। उनके परवर्तियों-मतिराम आदि ने भी हाथ-पांव मारे तो सही परन्तु प्रायः विफल हुए। बिहारी की सफलता का एक दृष्टांत देखिए। सातवाहन की गाथा सप्तशती मे एक गाथा यह है:—

अब्बो दुक्करआरअ पुणो वि तति करेसि गमणस्स ।
अज्जवि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा ॥
(अब्वो दुष्कारक ! पुनरपि चिंता करोषि गमनस्य ।
अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरंगिणश्चिकुरा ॥)

नायिका की सखी विदेश-यात्रा के लिए उद्यत नायक को कह रही है:—अरे क्रूरकर्मन्, फिर से चलने की सोचने लगे। अभी तो नायिका की वेणी के गुलझट-युक्त केश सीधे भी नही हुए। इसी बात को प्रकट करने के लिए—नायक-गमन का निषेध करने के लिए—बिहारी ने यह दोहा रचा:—

अजौं न आए सहज रंग बिरह दूबरे गात ।
अब ही कहा चलाइयति ललन चलन की बात ॥

अर्थ:—अभी तो विर के कारण दुबले हो चुके हुए अंगों मे पुरानी

स्वाभाविक रंगत भी नहीं आई है। हे प्यारे, अभी से फिर चलने की बात क्यों चलाने लगे।

निःसदेह दोनों ही रचनाए सुन्दर और सरस हैं। तो भी दोहा गाथा की अपेक्षा अपनी उद्देश्य-पूर्ति में अधिक सफल है। नायक अभी फिर जा रहा हैं गाथा कहती हैं कि नायिका के केश अभी सीधे भी नहीं हुए, गुलझट अभी दूर भी नही हुए, तुम्हारे अभी चले जाने पर इनमे अधिक गुलझट पड़ जायगे। इन कमनीय केशों का ही विचार करके रुक जाओ परन्तु यह प्रार्थना अधिक प्रभाव न दिखा सकेगी। नायक सुन कर भी संभवतः 'बहुत अच्छा' कह कर चला ही जायगा। परन्तु दोहे का प्रभाव बहुत अधिक है। वह भावी विपत्ति की ओर संकेत कर रहा है। नायिका के अंग आगे ही दुबले हो रहे हैं फिर भी तुम जा रहे हो। न जाने निकट भविष्य में यह प्रतिदिन वर्धमान क्षीणता क्या रंग लाये। यह सुनकर नायक को प्रियतमा के जीवन का भी सदेह होने लगेगा और वह निःसन्देह रुक जायगा। बिहारी ने निःसंशय गाथा को मात कर दिया है, उसके भाव पर अपनी मोहर लगा दी है।

परन्तु इस प्रकार के प्रयास मे मतिराम आदि बहुत कम सफल हुए हैं। (स्थानाभाव के कारण सब बातों में तुलना न करते हुए केवल प्रधानतम गुण की, तुलना द्वारा संतोष करेंगे)। बिहारी की कविता का सर्वोत्कृष्ट गुण यह है कि उसमें अत्यल्प तथा चुस्त पदों मे सुविशाल भाव भर दिया जाता है। इसीलिये उनके एक ही दोहे मे प्रकट किए हुए भावों को परवर्ती कवि दो-दो दोहों या सवैया, कवित्त आदि बड़े बड़े छन्दों में भी सम्यक प्रकट नहीं कर पाए हैं, जैसेः—

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाठि दुरजन हिऐं दई नई यह रीति॥

बिहारी ने प्रेम के जिस अनूठे प्रभाव को इस एक दोहे द्वारा व्यक्त किया है, उसी को दिखाने के लिए रसनिधि ने 'रतन हज़ारा में निम्न लिखित दोहे रचेः—

उरझत दृग बधि जात मन कहो कौन यह रीति।
प्रेम नगर में आइकै, देखी बड़ी अनीति॥

अद्‌भुत गति- यह प्रेम की लखो|सनेही आय ।
जुरै कहूँ- टूटै कहूँ कहँ गाठ परि जाय ॥

कितना वाग्विस्तार है । किनना शब्दापहरण है तो भी बिहारी के दोहे जैसा सामर्थ्य दिखाई नहीं देता । इस पर भी दूसरा दोहा तो निपट पहेली-सा दिखाई देता है । जिस ने बिहारी के दोहे को नहीं पढ़ा वह इस के भाव तक पहुचने के लिए पर्याप्त काल तक मग़ज खपाता रहेगा ।

अब मतिराम के दोहों की बिहारी से तुलना कीजिए प्रेमियों की दृष्टि का वर्णन है:—

पहुचति उटि रण सुभट लौं, रोकि सकै सब नाहिं ।
लाखनहूं की भीर में, आखि वही चलि जाहिं ॥ (बिहारी)
वीर अभय भट भेदिकै भूरि भरी हू भीर ।
झमकि जुरहिं दृग दुहुंनि के, नेक मुरहिं नहिं वीर ॥ (मतिराम)

भाव यह है कि प्रेमियों की निगाहें उपस्थित विरोधी जनों की तनिक भी परवाह न करके मिल ही जाती हैं जैसे योद्धा लोग अरि दल को कांटते-छांटते बढ़ ही जाते हैं । बिहारी के दोहे मे के 'उटि रन सुभट' पदों का ओज तथा 'रोकि सकै सब नाहि' से व्यक्त होने वाला पराक्रम कितना उग्र है । मतिराम के 'भट भेदि कै' बिहारी के भाव तक पहुंचने से असमर्थ है । इसी प्रकार 'लाखनहूं की भीर' मे जो बल है वह 'भूरि भीर' मे कहां । इसी प्रकार ऐसे ही निचले दोहे मे 'धीर, वीर' शब्दों की विद्यमानता मे 'अभय' शब्द निपट भरती का अनावश्यक रूप से ठूंसा हुआ प्रतीत होता है । मतिराम के दोहे मे इतना पद शैथिल्य है कि वह पग पग पर डगमगाता दिखाई देता है ।

अब राम सहाय के दोहों से तुलना कीजिए । बिहारी ने मनोहारी नयनों के सबध मे लिखा है:—

वर जीते सर मैन के ऐसे देखे मै न ।
हरिनी के नैनानु ते हरि नीके ये नैन ॥

इसी भाव को रामसहाय ने यों प्रकट किया है :—

खजन कज न सरि लहैं वलि अलि को न वखानि ।
एनी की अखियानि तें ए नीकी अखयानि ॥

रामसहाय ने उत्तरार्द्ध तो ज्यों का त्यों उठाकर धर दिया है, हा 'हरिनी' के स्थान पर 'एनी' और दूसरे 'अँखियानि' को व्याकरण की दृष्टि से दूषित अवश्य कर दिया है। पूर्वार्द्ध दोनों के पृथक पृथक हैं। रामसहाय ने नायिका के नयनो को केवल कमलों तथा खंजन की आंखों से बढ़ाया है, परन्तु बिहारी ने 'ऐसे देखे मैं न' कह कर सभी उपमानों का मान-हरण कर लिया है। रामसहाय ने तो केवल आखो के सौन्दर्य का ही वर्णन किया है परन्तु बिहारी 'बर जीते सर मैन के' कह कर उन की कारी चोट लगाने की शक्ति का भी निर्देश कर दिया है। रामसहाय तो केवल एक ही यमक 'एनी की' तथा 'ए नीकी' का प्रयोग कर पाए हैं परन्तु बिहारी ('मैन' तथा 'मैं न' और 'हरिनी के' तथा 'हरि नीके' के प्रयोग द्वारा)। इस पहलू में भी उस से दुगने नम्बर ले गए हैं।

आइए, जरा विक्रम के एकाध दोहे का भी विक्रम देख लें। श्री कृष्णचन्द्र के सहज सुन्दर वेष के सम्बन्ध मे बिहारी ने कहा है:—

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल॥

इसी के आधार पर विक्रम साहि ने निम्नांकित दो दोहों की रचना की है —

मोर मुकुट कटि पीत पट उर बनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन सग लखे आज नन्दलाल॥
मोर मुकुट कटि पीत पट मुरली अधर विराज।
पाय दरस पायौ अली नैनन को फल आज॥

राम सहाय के दोहों के प्रथम दलों मे पुनरुक्ति स्पष्ट ही खटकती है। फिर बिहारी ने प्रथम दल मे ही जिन चार बातों का विशद वर्णन कर दिया है, उन्हीं को राम सहाय ने दो दोहों के पूर्व दलों मे जा कर पूरा किया है। रामसहाय कहते हैं, सखियों ने उन्हें कहीं देख लिया और निज नेत्र सफल कर लिए, परन्तु बिहारी तो उन्हें सदा-सर्वदा इसी सुवेष में मन-मंदिर में बैठाना चाहता है और निरन्तर उन के दर्शनों से आनंदित होना चाहता है। भाषा की समास शक्ति तथा भावों की गहराई

दोनों वातों में रामसहाय जी बिहारी तक नहीं पहुंच पाए हैं।

उपर्युक्त पर्यालोचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अपने अनुकारी श्रृंगारी कवियों मे बिहारी निस्सन्देह बेजोड हैं। तो भी यह न कहना चाहिए कि दूसरों का कुछ भी मूल्य नहीं क्योंकि कहीं-कहीं ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जहां मतिराम तथा विक्रम बिहारी तक केवल पहुंच नहीं पाते अपितु आगे भी बढ़ जाते हैं। जैसे:—

पूस मास सुनि सखिनु पै, साईं चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यौ राग मलारु॥ बिहारी

मागी विदा विदेस कौ दै जराइ अनमोल।
बली बोल न सुघर तिय दिय अलाप हिंडोल॥ विक्रम

प्राननाथ परदेस कौ चलियै समै विचारि।
स्याम नैन घन बाल के बरसन लागै वारि॥ मतिराम

प्रियतम परदेश जाना चाहता है। प्रिया को यह बात अति दुःखप्रद है। बिहारी की नायिका ने बीन उठाई और इस उद्देश्य से मलार गाना आरम्भ कर दिया कि मेह बरसेगा और विरह वेदना की अनुभूति के कारण प्रीतम रुक जायगा। विक्रम की नायिका ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंडोल अलापना आरम्भ कर दिया ताकि वसन्त ऋतु का आभास मिलने लगे और प्रियतम मदन-विह्वल होकर विदेश यात्रा का विचार त्याग दे परन्तु कौन जानता है ये दोनों कृतकृत्य होंगी या नहीं। हां. मतिराम की नायिका का प्रत्यक्ष प्रयत्न फल लाने वाला है। उसके नयन रूप मेघों ने साक्षात् झड़ी लगा दी। इस झड़ी के रहते किसी का घर से बाहर एक भी पग रखना असंभव है।

रसनिधि तथा राम सहाय में भी ऐसे पद्य मिलते तो हैं परन्तु बहुत ही कम। सो संक्षेप मे कह सकते हैं कि बिहारी का अनुकरण मे परवर्ती कविगण प्रायः असफल रहे हैं।

प्र० १०—वर्तमान युग के प्रसिद्ध दोहा-सग्रहकारों के ग्रंथो का निर्देश करते हुए उन पर निज विचार प्रकट करो।

उ०—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परवर्ती प्राय. सभी कवियों ने थोड़े बहुत दोहों की रचना की ही है। परन्तु शिव सुकवियों ने इसी युग मे दोहा-

संग्रहों का प्रणयन किया उनके नाम तथा ग्रंथ ये हैं:—

श्री वियोगी हरि की वीर सतसई, श्री दुलारे लाल भार्गव की दुलारे दोहावली, श्री रामेश्वर करुण की करुण सतसई तथा श्री तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' की श्याम सतसई। वर्तमान युग चाहे 'खड़ी बोली का युग' के नाम से प्रसिद्ध है तो भी इनमे से पहले तीन महानुभावों ने व्रज भाषा मे अपने सग्रहों का प्रणयन करके निज व्रज-भाषा-प्रेम का परिचय दिया है। हां दिनेश जी की सतसई शुद्ध खड़ी बोली मे है।

वीरसतसई—यदि वीर सतसई को वर्तमान युग का वीर रस का अनुपम ग्रथ कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसके प्रत्येक दोहे मे वीर रस का सागर सा ठाठें मारता दिखाई देता है। मंगलाचरणात्मक प्रथम दोहे पर ही दृष्टि डालिए। इस में विघ्न-विनाशक गणेश की वन्दना नहीं, बिहारी-मतिराम आदि के सामान श्री राधा-कृष्ण की आराधना नहीं अपितु दनुज-दल-दलन कृष्ण की जयकार सुनाई देती हैं:—

जयतु कस-करि केहरि! मधु-रिपु! केशी-काल।
कालिय-मद-मर्दन! हरे! केशव! कृष्ण! कृपाल॥

ग्रंथ मे राम, लक्ष्मण, भीम, अर्जुन, प्रताप, शिवाजी, तिलक, गांधी, सी आर. दास, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, आदि प्राचीन तथा अर्वाचीन वीरों तथा वीरांगनाओं के वीरतापूर्ण कृत्यों का बड़ा ओजस्वी तथा रोमाचकारी वर्णन किया गया है। देखिए महात्मा तिलक के ब्रह्मतेज तथा क्षात्रतेज का मिश्रण दिखाते हैं.—

ब्रह्मनिष्ठता व्यास की जामदग्न्य कौ ओज।
दीपत इन दोऊन तें तिलक-सुनैन-सरोज॥

इस सतसई म मारवाड़, मेवाड़, कुरुक्षेत्र आदि रणभूमियों तथा धनुष, भाला, शक्ति, आदि अस्त्र-शस्त्रों, आख, बाहु. मूछ आदि वीरांगो का बड़ा प्रभाव शाली वर्णन दृख पड़ता है। वीर की आख के विषय मे कहते है:—

होति लाख मे एक कहु अनल-वर्ण वह आख।
देखत ही दहि करति जो, दुवन-दाह-दलु राख॥

इनके दोहे स्वदेशाभिमान तथा स्वजात्यभिमान से पूर्ण होते हैं।

लक्ष्मी, विद्या तथा वीरता के प्रतिनिधि अपने देश का परिचय यों देते हैं:—

रमा भारती कालिका करति कलोल असेस।
बिलसति, बोधति, संहरति जहँ, सोई मम देस॥

परन्तु इस की पराधीनता देख कर व्याकुल हो उठते हैं और उसे उबारने की गुप्त प्रेरणा करते हैं:—

पराधीन जौ जनु, नहीं स्वर्ग, नरक ता हेतु।
पराधीन जौ जनु नहीं, नरक स्वर्ग ता हेतु॥

परतंत्र मनुष्य को स्वर्ग भी नरक समान है। और स्वतंत्र को नरक भी स्वर्ग-समान है। इस बात को लाटानुप्रास द्वारा कैसी मार्मिकता से व्यक्त किया है।

आत्मसम्मानी पुरुष को अपनी प्रत्येक वस्तु से प्रेम होना चाहिए। इसी बात के लिए यों प्रार्थी हैं:—

निज भाषा निज भाव निज असन बसन निज चाल।
तजि परिता निजता गहूं यह लखियौ विधि भाल॥

इन्होंने बिहारी के कुछ दोहों की छाया लेकर उन पर अपनी छाप लगा दी है, कोरा अनुकरण नहीं किया है। जैसे—

तन्त्री नाद कवित्त-रस सरस राग रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग॥ बिहारी

औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार बिन धार।
सनमुख जे उतरे तरे, परे विमुख मँझधार॥ वियोगी हरि

ऊपर के दोहों में संगीत, काव्य तथा दाम्पत्यानन्द रूपी धारा में स्नान करके की प्रेरणा है तो निचले मे युद्ध-रूपी धार के विकट घाट पर इसे अपहरण मात्र कहने का साहस कौन करेगा।

ब्रजभाषा पर इन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त है। उपमा, रूपक, दृष्टान्त, यथासंख्य, अनुप्रास आदि अलङ्कारों तथा समासों का प्रयोग प्रचुर परिमाण मे मिलता है। ओजगुण इनकी कविता मे सर्वत्र उपलब्ध होता है। शिशुओं की उक्तियों मे तोतली बोली का प्रयोग भाषा को अतिसरस तथा स्वाभाविक बना देता है। जैसे—

दै तौं मैया नेक तूँ मेलो तील कमान।
चँदै भूमि गिराउँगो मालि अचूक निशान॥

इनकी भाषा वर्तमान के सभी दोहा-संग्रहों मे से कठिन है। यहुगुण भूषित होने के कारण ही इस ग्रंथकार को १२०० का मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

दुलारे दोहावली—दुलारे लाल जी की यह रचना शिक्षित भारतीयों के मन मे प्रतिदिन तरंगित होने वाले विचारों तथा भावों का सम्यक् चित्रण करती है। देश पराधीन है। नेता लोग इसे स्वाधीन करने का सतत् उद्योग कर रहे हैं। कवि अपने साथियों को इस सदुद्योग मे सहयोग देने की प्रेरणा करता हुआ कहता है:—

कवि—सुरवैद्यन वीर-रस साहित-सर सरसाय।
न्हाय जठर भारत-च्यवन तुरत ज्वान ह्वै जाय॥

बूढ़े निरुत्साह च्यवन को अश्वनिकुमारों ने उत्साही युवक बना दिया था इसी प्रकार कवि लोग बूढ़े भारत को वीर-रस मे स्नान करा के काया-कल्प कर दें। रूपक बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

इसी भारत के बेताज-सम्राट् महात्मा गांधी के 'यंग इंडिया' का वर्णन एक सुन्दर रूपक मे देखिए:—

लखि कैं भारत दीप को हत प्रभ सौं असहाइ।
दै नव जीवन-नेह निज गाधी दियो जगाइ॥

भारत के करोड़ों हरिजनों तथा दूसरी दलित जातियो की करुणा-जनक दशा देख कवि-हृदय द्रवित हो उठा है। वह इन के साथ सद्व्यवहार करने की प्रेरणा व्यग्य का आश्रय लेकर करता है:—

कलिजुग ही में मैं लखी, अति अचरजमय वात।
होत पतित-पावन पतित, छुवत पतित जब गात॥

निचले दल का व्यग्य वस्तुत: मर्मस्पर्शी है। पतित-पावन भगवान् के स्पर्श से पतित तो पवित्र नहीं होते, उलटे भगवान् ही भ्रष्ट हो जाते हैं। क्या खूब!

हिंदुस्थानियों द्वारा ही हिन्दी का तिरस्कार इन से देखा नहीं जाता। ऐसे निज-भाषा-विरोधी भारतियो पर इन्हों ने बड़ी मीठी चुटकियां ली हैं। एक उदाहरण देखिए:—

हिन्दी-द्रोही उचित ही तुव अंग्रेजी नेह ।
दई निर्दई पै दई नाहक हिन्दी देह ॥

भारत मे जहां-तहां होने वाले साम्प्रदायिक दगों को देख कर कवि का मन व्यथित हो हो उठता है, और वह पारस्परिक प्रेम मे देश-कल्याण समझता हुआ भ्रातृभाव का संदेश सुनाता है:—

ईसाई हिन्दू जवन ईसा राम रहीम ।
बैबिल वेद कुरान मे जगमग एक असीम ॥

उन्हों ने भीमसेन का प्रतिज्ञा-पालन, भामाशाह का अपूर्व त्याग आदि प्राचीन वीरों के स्वर्ण- चरितों का भी जहां-तहां सुन्दर चित्रण किया है। कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन करने मे भी काफ़ी सिद्ध हस्तता दिखाई है। प्रातः काल नक्षत्रों के छिपने तथा सूर्य के उदय का वर्णन बहुत ही हृदयहारी ढंग से किया है। देखिए:—

नखत-मुकत आगन गगन प्रकृति देखि बिखराय ।
बालहंस चुपचाप चट चमक चोच चुग जाय ॥

सुन्दर रूपक-रचना तो मानों इन की घुट्टी मे पड़ी हुई है। यह दोहा इस बात का बड़ा पुष्ट दृष्टान्त है ।

इन के ग्रंथ मे यत्र-तत्र बिखरी हुई मनोहारी सूक्तियां पढ़ते हुए वृन्द-कवि स्मरण हो आते हैं। वे कोरे उपदेश नहीं है, उन मे से सुकवि हृदय झांकता हुआ स्पष्ट दिखाई दे जाता है। एक उदाहरण देखिए:—

सतसगति लघु वस हू हरि अवगुन गुन देति ।
केहि न कान्ह-अधरन वरी वसी बस करि लेत ॥

ब्रजभाषा पर इन्हे अच्छा अधिकार है । बीसवीं सदी के आविष्कार इन्हें अलकारों के लिए पर्याप्त सामग्री जुटा देते हैं:—

वीर धीर सहि तीर-झर कटक काटि कढ़ि जात ।
बादल दल बरसत विकट वायु-यान बढ़ि जात ॥

वृत्त्यनुप्रास तथा दृष्टान्त का क्या सुन्दर तथा नवीन उदाहरण है। नगर का बिजली-घर तथा बत्तियों की पंक्ति इन्हें ज्योतिःस्वरूप परमात्मा की याद दिलाती है। वे वेदान्त के विचार को यों प्रकट करते हैं:—

एक जोति जग जगमगै जीव-जीव के जोय ।
बिजुरी बिजुरी-घर निकसि ज्यो जारत पुर-दीय ॥

एक तो इन की कविता अनोखी सूझ आदि के कारण ही स्वभावतः सरस है फिर अलकार उस की शोभा को चार चांद लगा रहे हैं। देखिए रात्रि का भटियारी के रूप मे कैसा हृदयहारी वर्णन है, मानों चित्र ही खींच दिया हो:—

लखि जग-पंथी अति थकित सभा-बाह पसारि।
तम-सरायँ मे दै रही छोह छपा-भटियारि ॥

इन के काव्य मे मौलिकता का प्रवाह सा बहता है। हां कहीं-कहीं प्राचीन कवियों के भावों पर भी दोहे रचे गए हैं। परन्तु ऐसे स्थल अव्वल तो हैं ही विरले, दूसरे उन मे ऐसी नवीनता उत्पन्न कर दी गई है कि वहां अपहरण का दोष नहीं लगाया जा सकता। जैसे इन का यह दोहा:—

अनु अनु आप प्रकाशि करि करत अँधेरौ बास।
उर निकुंज तम-पुंज मम रमिए रमानिवास ॥

पद्माकर के प्रसिद्ध सवैये के चतुर्थचरण—

दूर न दौरि दुर्यौ जो चहौ तौ दुरौं किन
मेरे अन्धेरे हिये में'

के आधार पर बनाया गया है। पद्माकर के बाल-गोपाल माखन चुराकर छिपना चाहते हैं तो पद्माकर उन्हें अपना तमोमय हृदय पेश कर देते हैं परन्तु भार्गव जी उस सर्व प्रकाशक का अन्धकार-निवास (अव्यक्त स्थिति) से प्रेम देखकर अपना पापांधकारमय हृदय निकुंज पेश कर देते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि दुलारे दोहावली ने विचारों की आधुनिकता भावों की प्रभविष्णुता, भाषा की सुष्ठता, कल्पना की उद्भटता तथा नवीनता आदि से हिन्दी काव्य-जगत् की पर्याप्त वृद्धि की है। ग्रंथ की उत्तमता के कारण लेखक को सर्वप्रथम 'देवपुरस्कार' भी मिला है।

करुण सतसई—ग्रंथ का नाम विषय के अनुरूप ही रखा गया है। समग्र ग्रंथ मे उन्हीं बातों का वर्णन है जिन्हें देख कर कोई भी कोमल-हृदय मानव-नयन नीर बहाए बिना रह ही नहीं सकता। देश कृषीप्रधान है। करोड़ों मन अनाज आएवर्ष उत्पन्न होता है। किसान

और मजदूर दिन-रात घोर-कठोर परिश्रम करते हैं: पर अन्धेर है कि फिर भी भर-पेट रोटी नहीं पाते। यह दुर्दशा देख कवि का हृदय फटा जाता है। वह करुण क्रंदन करने लगता है और हमें भी बरबस सजल नयन कर डालता है। वह सच ही कहता है:—

सौ बातन की बात इक बाहि करै को तूल।
है इक रोटी-प्रश्न ही सब प्रश्न को मूल॥

देश में होने वाले अनेक अपराध रोटी के न मिलने से ही हो रहे हैं और पेट भरने पर वे सब भाग जायंगे, इसी आशय से कहते हैं:—

बटमारी चोरी ठगी दुख दारिद-संताप,
रोटी को निहचै भये गये लखहिं सब आप।

कवि तो वर्तमान के विकृत दृष्टि-कोण को ही बदल देना चाहता है। किसान को मूर्ख, उजड्ड, गंवार मत समझिए, उसे साक्षात् विश्वंभर मानिए। वह कहता है—

विश्वभर महिदेव शिव ग्राम-देव गुन-धाम।
महा महि-पति धान्य-पति कृषि-पति कृषक ललाम॥

कवि एक तरफ तो धर्मध्वजियों के आडंबर देखता है और दूसरी ओर श्रमजीवियों की दयनीय दशा। उसे दया-धर्म, दीन-ईमान कहीं भी दिखाई नहीं देते—

कहाँ दया ? कहाँ धर्म है, कहाँ दीन ईमान ?
श्रमिक सदा संकट सहैं करत न कोई कान॥

उसे समदर्शी भगवान् की सृष्टि मे रोमांचकारी विषमता दिखाई देती है। वह पुकार उठता है, अरे यह क्या अन्धेर है—

एक अकेले डील हू गाडहिं लाख हजार।
विविध कुटुम्बी एक के, घूमहिं अन्न पुकार॥

बर्नार्ड शा की इस उक्ति "While poor men are starving rich men's dogs are being overfed" के आधार पर कवि ने सच्चा ही वर्णन किया है:—

एकन के नित स्वान हू दूध जलेबी खाहिं।
अन्न बिना सुत एक के हा रोटी रिरिआहिं॥

बेकारों की दुर्दशा का क्या मार्मिक वर्णन है:—

दृष्टि गई दौलत गई आयु भई बेकार।
या शिचित बेकार को है इक मृत्यु आधार ॥

ऐसा ही करुण-जनक वर्णन विधवाओं, हरिजनों, रूढ़ियों तथा पराधीनता आदि का भी किया है। इन सब कष्टों को दूर करने के लिए वह रूस का अनुकरण ही उत्तम समझता हुआ कहता है:—

'मेरो' 'तेरो' एक नहिं. सबको स्वत्व समान।
सब कहँ सुख पहुचाइयो है समवाद विधान।

ग्रथ मे काव्यत्व की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता अधिक है। भाषा सरल-सुबोध है, प्रसाद-गुण-युक्त है। अलकारों के प्रयोग मे संयम से काम लिया गया है, वे व्यर्थ ठूंसे हुए प्रतीत नहीं होते।

बिहारी, रहीम, तुलसीदास आदि अनेक कवियो के भावों के आधार पर कई दोहे रचे गये हैं परन्तु उन मे नवीनता भी पर्याप्त डाल दी गई है, इसलिए वे अर्थापहरण-दोष से शून्य है।

सीस गठा पग पानही, कर हसिया, रज माथ।
यहि बानिक उर-पुर वसौ सदा सुखेतो नाथ ॥

किसान का यह शब्द-चित्रण बिहारी के पूर्वोक्त प्रसिद्ध दोहे 'सीस मुकुट, कटि काछनी' के आधार पर किया गया है फिर भी यह अनुकरण नहीं। संक्षेप में कह सकते हैं कि 'करुण-सतसई' प्रगतिवाद का सुन्दर सफल ग्रथ है जिस का मूल्य श्रमिक तथा कृपक गण पढ लिख कर ही जान पायँगे और कवि का उपकार मानेंगे।

श्यामसतसई—इस सतसई का मुख्य विषय भगवद्भक्ति है। प्राय: प्रभु-प्रेम का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। इस मे श्री कृष्ण को उपनिषदों का मूर्तिमान् तत्त्व मान कर उसी के एकतान गुणगान की प्रेरणा की गई है। आरंभ मे ही कवि कहता है।

भाषे, कविते, कलपने, सुनो लगा कर ध्यान।
एकतान हो कीजियो, मोहन के गुण-गान ॥

इस सतसई में तुलसी दास, मीराबाई, सूरदास, कबीरदास, चैतन्य स्वामी, ध्रुव तथा प्रह्लाद आदि प्राचीन तथा महात्मा गांधी, लोकमान्य

तिलक, पं० मदन मोहन मालवीय आदि अर्वाचीन भक्तों के सुचरितों का बखान मिलता है। जैसे—

सूरपदों मे कृष्ण है, कृष्ण पदों मे सूर।
दोनों ओत-प्रोत हैं, भक्ति-भाव-भरपूर॥

एक ही दोहे मे सूरदास की कृष्ण भक्ति तथा श्रीकृष्ण की भक्त-वत्सलता अन्योन्य अलंकार द्वारा क्या खूब दिखा दी है।

कवि का हृदय भक्ति भाव से भरपूर है और वह उसी रस में मग्न रहना ही जीवन की सार्थकता समझता है। जो घड़ियां अन्य कार्यों मे बीतती हैं, वे उसे नरक-तुल्य अति कष्टप्रद प्रतीत होती हैं। जैसे —

वह पल वह छिन नरक-प्रद जिन मे तेरी भूल।
जिन पर पड तू याद हो फूल मुझे वे शूल॥

संभवत: यह दोहा कबीर जी के निम्नलिखित दोहे के आधार पर लिखा गया है परन्तु इस मे कौशल से नवीनता उत्पन्न कर दी गई है।

सुख के माथे सिल परै नाम हृदय से जाय।
वलिहारी वा दुख के पल पल नाम रटाय॥

इन की कल्पना ने पर्याप्त ऊँची उड़ाने ली हैं और वह रसिक हृदय को बलात् मुग्ध कर लेती है जैसे:—

चन्दन राधा-वदन यह सहज सरस अभिराम।
यह न कालिमा, दृष्टि मे झूम रहा है श्याम॥

राधा के मुख को चाद का रूप तो अनेक कवियो ने दिया ही है परन्तु जब यह कहते हैं कि यह नयन-कालिमा नहीं अपितु घन-श्याम ही हैं, तब उन सब को कहीं पीछे छोड़ जाते हैं। अपह्नुति अलंकार भी क्या खूब बैठाया है।

एक और सुन्दर कल्पना देखिए:—

शोभित यो घन श्याम के हस्त कुवलिया-दन्त।
मानो विधु कर मे लिए शोभित घन अत्यन्त॥

श्री कृष्ण ने अभी ही कंस के प्रसिद्ध हाथी कुवलयापीड को मारा है और उस के उखाड़े हुए शुभ्र दांत को हाथ मे पकड़ रखा है। इस पर

क्या-सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है। मानो नील मेघ ने चंद्र-कला पकड़ रखी हो। इन के पर्याप्त दोहे ऐसे भी हैं जिन में सुकाव्यत्व इतना अधिक नहीं जितनी इतिवृत्तात्मकता। उन में कोरे तथ्यों का साधारण रूप में वर्णन है, कोई चमत्कार नहीं। दृष्टांत रूप में वे दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जिन में भारत-माता को प्रणाम किया गया है। एक दो उदाहरण देखिए —

भीष्म युधिष्ठिर पार्थ की तू जननी सुखधाम।
तव पद-रज पावन परम माता तुझे प्रणाम॥
उत्तम लेखक ग्रंथ में करता आत्म प्रसार।
'मध्यम' लिखता ग्रंथ वर, 'अधम' निरा अनुकार॥

ऐसा होते हुए भी यत्र-तत्र अच्छी सरसता तथा सुकुमारता के दर्शन होते हैं, जैसे —

जल न सही तू उपल ही फेंक मेघ दो चार।
कुछ तो आयेगा अरे, उन में तेरा प्यार॥

सच है, सच्चे प्रेमियों को प्रेम--पात्र के रोष में भी कुछ अनोखा आनन्द मिल ही जाता है। जब मेघ ओले बरसावेगा तब भी तो कुछ न कुछ रस उन से निकलेगा ही।

समगुण पदार्थ एक-रूप हो जाया करते हैं। इसी भाव को लेकर देखिए भगवान् से क्या कठिन प्रश्न किया है। हो सके तो उचित उत्तर दें, नहीं तो अपना रूप प्रदान करने का अनुग्रह करें:—

तू है त्रिगुनातीत तो मे सब विधि गुण-हीन।
दोनों ही निर्गुन हुए फिर क्यों हुआ न लीन॥

पर-भाषा-प्रेम का निषेध बड़ी ही सुन्दर अन्योक्ति से किया है:—

पर-भाषा अनुकथन का देखा शुक परिणाम।
छूटी वह स्वाधीनता पाया पजरधाम॥

निज-भाषा प्रेम को कैसे सुन्दर व्यंग द्वारा तथा प्रभावशाली प्रकट किया है। यह सतसई ब्रजभाषा में नहीं, किन्तु खड़ी बोली में लिखी गई है। तद्भव शब्दों की अपेक्षा तत्सम शब्दों का ही बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं मुहावरों का सुप्रयोग भी मिलता है जैसे:—

ढाई दिन की भक्ति सो भक्त बना भरपूर।
पता नही तुझ को पगी दिल्ली अब भी दूर ॥

इन के दोहे अलंकारों से अच्छे सजे हुए हैं, अनावश्यक रूप से लदे हुए नहीं। फिर उन मे भी निराली सूझ का परिचय मिलता है, निरा पिष्ट-पेषण नहीं। देखिए कविता के स्वरूप पर क्या सुन्दर उपमा दी है।

कविता ऐसी चाहिए ज्यों कासे का थाल।
तनिक ठेस से अति सरस ध्वनि गूंजे चिरकाल ॥

तुलसीदास की रामायण के भाषा-भाव सौष्ठव पर क्या सुन्दर उपमाएं दी हैं! जिन का वर्णन उन्हीं की उपमाएं, बहुत खूब।

रामायण ऐसी रची तू ने तुलसीदास।
भाषा सीता सी सरल, अर्थ राम सुविकास ॥

जहां ग्रंथ मे इतनी विशेषताएँ हैं वहां कुछ बातें खटकने वाली भी है। केवल दो-एक स्थलों की ओर सकेत मात्र पर्याप्त होगा। कहीं कहीं छन्द को दोष-हीन बनाए रखने के लिए शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है। जैसे—

तन दीपक मति-वृत्तिका प्राण निरन्तर तेल'

इस 'वर्तिका' के स्थान पर 'वृत्तिका' कर दिया गया है। कहीं-कहीं पर छन्द: पूर्ति के विचार से अनावश्यक शब्द ठूंस दिए गए हैं। जैसे—

'श्याम-दृगो मे तीन रग धवल श्याम नव लाल'

मे नव 'शब्द' निपट भरती का है। इसी प्रकार निम्नाकित दोहे

तार-तार इस वस्त्र को कर द परम-प्रवीण।
वह पर्दा किस काम जा रक्खे दर्शन-हीन ॥

के प्रथम दल के अन्त मे 'परम प्रवीण' बहुत बुरी तरह चुभते है। वस्त्र बुनने मे प्रवीणता अपेक्षित होती है। तार-तार तो हर कोई कर सकता है। परन्तु ऐसी बातें कहीं-कहीं ही दृष्टि गोचर होती हैं। सब देखते हुए नि:सकोच कह सकते है कि 'श्याम सतसई' वर्तमान काल की भक्ति-विषयक सुन्दर रचना है।

——:o:——

कबीर दास

कबीर साहब भारत के एक सुप्रसिद्ध सुधारक संत समझे जाते हैं। इनके कुल, जन्म-काल, बालपन, विवाह, मृत्युकाल आदि के विषय में विद्वानों मे पर्याप्त मतभेद है। कहते हैं, इनका जन्म संवत् १४५५ में ब्राह्मणी विधवा के गर्भ से हुआ। लोक-लाज के मारे उसने इन्हें लहर तालाब (काशी) के तट पर धर दिया। सौभाग्य से निस्संतान नीरू जुलाहा उधर से गुजरा। उसने इन्हें उठा लिया और पाला पोसा।

कबीर साहब बाल्यकाल से ही धर्मप्रिय थे। साधु-सन्तों की सेवा तथा भगवद्भक्ति मे उनकी विशेष रुचि थी। कबीर साहब ने स्वामी रामानंद जी से राम-नाम का गुरुमंत्र लिया। कबीर पढ़े लिखे न थे। सत्संगति तथा पवित्र जीवन से ही उन्होंने ज्ञान-प्राप्ति की। वे जुलाहों का ही काम करते रहे। उन्होंने कहा है—'तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, बूझहु मोर ग्याना'। उनकी पत्नि का नाम लोई, पुत्र का कमाल तथा पुत्री का कमाली था। कमाल पितृ-विरोधी था। अत: कहते हैं :—

'डूबा बंस कबीर का। उपजे पूत कमाल'

कबीर साहब हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बाहिरी आडंबरों का बड़ा कड़ा खण्डन करते थे। इसलिये हिंदू-मुस्लिम दोनों उनके विरोधी हो गए। कबीर उनके हाथो कष्ट सहते रहे पर स्वविचार प्रचार न छोड़ा।

वे निराकार प्रभु के उपासक थे और मूर्तिपूजा, जात-पात, मृतक-श्राद्ध, अवतार, तीर्थ-महिमा, मांस-भक्षण आदि का प्रबल विरोध करते थे और सदाचार, प्रभु-भक्ति आदि पर विशेष बल देते थे।

कबीर साहब की रचनाओं मे भाषा, छन्द, अलंकार आदि के सौंदर्य की खोज करना भूल है। वे तो अपने गम्भीर मौलिक विचारों को लोगों तक पहुंचाना चाहते थे और इस बात मे वे सम्यक् सफल हुए। उनकी कृतियों मे प्राय: ज्ञान ध्यान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, तथा आडम्बर-त्याग की ही विशेष शिक्षा मिलती है। उनके ग्रंथ निम्नलिखित है:—

बीजक, साखी, सुखनिधान, गोरखनाथ की गोष्ठी, रमैनी, आनन्द-नाम सागर, मंगल, बसंत, होली, रेखता, झूलन, बारहमासा, चांचर, चौंतीसी, अलिफनामा हिन्दोल, ककहरा, शब्दावली।

दोहों का सरलार्थ

पृष्ठ ३, दोहा १. गुरु...बताय —गुरु तथा परमेश्वर दोनों ही पास विद्यमान हैं। इन में से किस के चरण छूऊँ! मैं तो अपने गुरु पर ही बलिहारी जाता हूँ, उन्हीं के पांव पड़ता हूं, क्योंकि उन्होंने ही मुझे परमेश्वर का सत्स्वरूप समझाया है।

२. यह जान—(विषयों मे फंसाने के कारण) यह शरीर ज़हर की बेल के तुल्य है। (मोक्ष-मार्ग का उपदेश देने के कारण) गुरु अमृत की खान के समान है। इसी लिए यदि सच्चे गुरु को पाने के लिए सिर तक भी देना पड़े तो भी सौदा सस्ता ही समझना चाहिए।

३. ऐसा गीत—सत्त नाम=सच्चे नाम वाला (परमेश्वर)। बधिक=शिकारी। परमेश्वर का ऐसा मित्र अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आया जो अपना सर्वस्व वैसे ही उस पर निछावर कर दे जैसे हिरन शिकारी के गीत पर निज प्राण तक त्याग देते हैं।

४. ❀ सत ..चूर—नख=नाखुन (पांव का)। सिख=शिखा, चोटी (सिर की)। दीसई=दिखाई देता। भगवान् भी क्या चतुर योद्धा हैं! उन्होंने मेरे—पाँव के नाखुन से लेकर सिर की चोटी तक सभी अंगों पर ऐसे गूढ़ प्रहार किए हैं कि बाहिर तो कोई घाव दिखाई नहीं देता, परन्तु अंदर से छलनी हो गया हूं। भाव यह है कि प्रभु ने मेरी आत्मा पर प्रेम का वह जादू डाला है कि मैं प्रतिपल उसके विरह में व्याकुल रहता हूं।

५. सुख...रटाय—वह सुख सर्वथा त्याज्य है जिसके कारण मनुष्य भगवान् को ही भूल जाए। मैं तो उस दुःख पर कुर्बान जाता हूं जिसके कारण प्रतिपल प्रभु के नाम की रट लगी रहती है।

६. लेने ..अभिमान—बूड़न को=डूबने को। ग्रहण करने योग्य

❀ जिन पद्यों पर यह ❀ चिन्ह दिया गया है उन्हें परीक्षा-दृष्टि से अत्यावश्यक समझिए।

सभी वस्तुओं में भगवान् का नाम और दान के योग्य सभी पदार्थों में अन्न सर्वश्रेष्ठ है। भवसागर को तरने का सर्वोत्तम साधन नम्रता है, और उस में डूबने का मुख्य कारण दर्प या घमंड है।

७ दुख...होय—संकट में तो सभी प्रभु का स्मरण करते हैं, और सुख में उसे कोई भी याद नहीं करता। परन्तु तथ्य यह है कि यदि कोई सुख में उसे याद करता रहे तो उसे दुःख हो ही नहीं।

८. केसन...विकार—(इन निरपराध) सिर के बालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो बार-बार इन को मूंड देते हो, उस्तरे से काट कर दण्ड देते हो ? तुम्हें चाहिए कि उस (अपराधी) मन को दंड दो जो विषय-विकारों का भंडार बना हुआ है।

※ ९. कबिरा...रैन—(व्याख्या) कबीर साहब कहते हैं—हे मनुष्य, तेरे पांव में रस्सी बंधी हुई है और तेरा प्राण-रूपी कूच का ढोल दिन-रात बजता रहता है, फिर न जाने क्यों तू सुख की नींद सो रहा है। भाव यह है कि सुख से वही सो सकता है जो बंधन-हीन हो और कोलाहल से दूर हो। परन्तु मनुष्य तो बंधा हुआ है। भगवान् ने उसके जीवन को निज नियमों की डोर से जकड़ रखा है। दूसरे वह शोर से भी दूर नहीं। सांस का नक्कारा दिन-रात धम-धम बजता है उसकी आयु को प्रतिपल क्षीण करता है। ऐसी दशा मे सुख से सोना, व्यर्थ विलासों मे आयु खोना, आश्चर्यजनक नहीं तो और क्या है।

१०. कबिरा...परदेस—मारि है=मारेगा। कबीर जी कहते हैं कि घमंड नहीं करना चाहिए क्योंकि मौत ने मनुष्य को चोटी से पकड़ा हुआ है। न जाने वह उसका अन्त स्वदेश मे कर देगी या परदेश मे।

११. हाड़...उदास—(चिता में) मनुष्य की हड्डियां लकड़ी की तरह और बाल घास के समान जलते हैं। सारे संसार को यों ही जलते, मृत्यु का कौर बनते, देख कर कबीर को वैराग्य हो गया है।

१२. झूठे...गोद—चबेना=चबाने योग्य भूना हुआ अनाज।

लोग विषयों के, भूठे सुख को सच्चा सुख समझते हुए मन मे प्रसन्न होते हैं। पर सच तो यह है कि मौत के लिये सांसारिक प्राणी भूने हुए दानों के समान हैं। कुछ एक को उसने मुख में डाल लिया है और कुछ एक को शीघ्र ही डाल लेगी। भाव यह है कि मृत्यु का विचार करते हुए चित्त को भूठे सुखों से हटा कर परमार्थ की ओर लगाना चाहिये।

१३ पानी...परभात—मनुष्य का जीवन ऐसा क्षणभगुर है जैसा पानी का बुलबुला। जैसे प्रभात समय के तारे देखते-देखते ओझल हो जाते हैं, वैसे ही यह भी देखते २ ही नष्ट हो जायगा।

१४ रात...जाय—(निर्बोध मनुष्य ने) रात सोते-सोते और दिन खाते पीते नष्ट कर डाला। उसने रत्न-तुल्य अमूल्य जीवन निकम्मी वस्तुओं के संग्रह में गंवा दिया।

पृष्ठ ४, दोहा १५. आज...चाल—कल्ह = कल। काल = कल। मनुष्य आज तो यह कहता है कि ईश्वर का नाम कल जपूंगा, परन्तु कल होने पर फिर उसे अगले दिन पर डाल देता है। किन्तु वह यह नहीं जानता कि ऐसे ही 'कल'-'कल' करते समय उसके हाथ से निकल जायगा।

१६. आछे...खेत—हेत = स्नेह। यौवन के सुन्दर दिन निकल गये पर प्रभु से तनिक भी प्रेम न किया। अब जब बिगड़ी बनाने का अवसर हाथ से निकल गया है तब पछताना किस काम का!

१७ काल कब्ब—बहुरि=फिर। जो काम कल पर टाल रखा है सो तू आज ही कर डाल। जिसे आज, किसी और समय, करना है उसे अभी कर डाल। मृत्यु तो किसी भी क्षण हो सकती है। ऐसी दशा में उसे फिर क्योंकर कर पायेगा।

१८. कबिरा...आय—नौबत = डंका। पट्टन=नगर, कसबा। कबीर कहते हैं कि जो छोटा-सा जीवन तुम्हें मिला है, उसमे सुकर्मों द्वारा अपना यश फैला लो। यह नगर, गांव और गली अर्थात् ससार में दोबारा मनुष्य-जन्म न मिल सकेगा।

१९. पाचो...काग—जिस महल मे कभी अनेक बाजे बजते थे

और अनेक राग-रागनियां गाई जाती थीं, उसमें रहने वाले अब सब चल बसे हैं। अब तो केवल कव्वे ही वहां बैठते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ—जिस शरीर के रहते अनेक प्रकार के उत्सव मनाए और गीत गाए, उसी को, आत्मा निकल जाने पर, कव्वे निज क्रीड़ा-भूमि बना रहे हैं।

२०. यह तन...हाथ—टपका=ठोकर। हे मनुष्य, जिस शरीर को तू सावधानी से साथ लिये फिरता है, वह कच्चे घड़े के समान ज़रा सी चोट लगने से नष्ट हो जाता है और किसी काम का नहीं रहता।

२१ आये...जंजीर—राजा, निर्धन या भिखारी जो भी उत्पन्न हुए, अवश्य मरेंगे। पुण्यात्मा तो विमानों पर चढ़ कर जाते हैं और पापी जंजीरों में बँध कर जाते हैं!

२२. कविरा...होय—कबीर साहब का कथन है कि दूसरे हमें भले ही ठग लें परन्तु हमें चाहिए कि दूसरों को न ठगें। कारण यह कि दूसरों से ठगे जाने पर हम कुछ देर बाद संतोष करके सुखी हो जाते हैं, परन्तु दूसरों को ठगने पर हमारी आत्मा हमें मृत्यु-पर्यन्त धिक्कारती रहती है और हम दुखी रहते हैं।

२३ तू...होय—अरे मूर्ख, मत समझ कि ये मित्र और संबंधी अपने हैं (और अंतकाल मे सहायक होंगे)। जब प्राणों से बँधा हुआ शरीर भी अपना नहीं, तब औरों का तो कहना ही क्या।

२४ इक...जाहिं—नारी=पत्नी। नारी=नब्ज़, नाड़ी। मृत्यु का दिन ऐसा आएगा जब कोई किसी का सहायक न हो सकेगा। घर की नारी (पत्नी) की तो कौन कहे, तन की नारी (नाड़ी, नब्ज़) तक साथ न देगी।

२५. माली...बार—अर्थ स्पष्ट है।

भाव—सगे-संबंधियों को मरते देख लोग चिल्ला उठते हैं कि मौत आज इन्हें ले चली है, कल उनकी भी बारी आएगी।

*२६. भक्ति...ठहराय—धहराय=गड़ गड़ करती हुई। (व्याख्या)

साधारण लोगों के मन मे कभी-कभी ज़ोर से उठने वाली भक्ति, उन बरसाती नदियों के समान होती है जो मेंह बरसने पर गड़गड़ करती हुई चलने लगती हैं। परन्तु नदी वही प्रशंसनीय है जो जेठ की असह्य गरमी में भी न सूखे और वर्ष भर बराबर बहती रहे। भक्ति भी ऐसी ही स्थिर हो तभी सची है।

❀२७. जब...देव—सकाम = स्वार्थ युक्त। निष्कामी = पूर्णकाम, इच्छा रहित। (व्याख्या) कबीर साहब कहते हैं कि जब तक कोई भक्त भगवान् की भक्ति किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए करता है तब तक उस की वह सेवा व्यर्थ सी ही होती है क्योंकि उसका प्रेम शुद्ध या स्वार्थ रहित नहीं होता। ऐसे स्वार्थी प्रेमियों को प्रभु नहीं मिलते क्योंकि प्रभु स्वयं कामनाओं से रहित हैं और यही चाहते हैं कि उनके भक्त भी स्वार्थहीन सच्चे प्रेमी हों, मतलबी यार न हों।

२८. कबिरा... मीत—कबीर कहते हैं कि अरे मनुष्य, हंसी-ठट्ठा छोड़ो, रुदन से प्रेम करो, प्रेम-प्यारा मित्र बिना रोए नहीं मिलता।

भाव—प्रभु-प्राप्ति तब तक संभव नहीं जब तक उसके लिए हृदय मे सच्ची तड़प और आंखों मे आंसू नहीं उमड़ते।

पृष्ठ ५ दोहा २६. हंसौं...खाय—बीसरै = भूलता। विसूरना = कुढ़ना। विधाता के वियोग मे व्याकुल व्यक्ति कहता है—यदि बाहिर से हंस भी लूं तो भी अन्दर का दुःख नहीं भूलता। यदि रोने लग पड़ तो भी अपनी ही शक्ति क्षीण होती है और मन-ही-मन कुढ़ना तो ऐसे खोखला कर देता है जैसे घुन लकड़ी को।

भाव—विरह-व्याकुल व्यक्ति को किसी भांति शान्ति नहीं।

३०. मांस...भाग—(प्रभु के वियोग में) शरीर का मास सूख गया है, हड्डियों का ढांचा-मात्र रह गया है। कव्वे ताक रहे हैं कि मरे तो खाएं। परन्तु हम ऐसे अभागे हैं कि प्रभु ने अभी भी आकर दर्शन नहीं दिए।

❀ ३१. पावक...जाय—पावक=अग्नि। चहुटै नहीं = लगती नहीं।

है=होकर। (व्याख्या) कबीर साहब कहते हैं कि भगवान् रूपी अग्नि (ज्योति) प्रत्येक स्थान में समाई हुई है। फिर भी चित्त रूपी चकमक पत्थर प्रदीप्त नहीं हो उठता, ज़रा-जरा धुआं देता रहता है। तात्पर्य यह है कि जैसे चकमक पत्थर में अग्नि होती तो है और रगड़ने से चिंगारी और धुआं भी देती है, परन्तु अर्चि (लाट) नहीं निकलती, वैसे ही प्रभु हमारे चित्तों मे व्यापक होकर कभी कुछ क्षणिक प्रकाश देते तो हैं, परन्तु हम उस ज्योति को निरंतर स्पष्टतया अनुभव नहीं कर पाते।

३२. जो...विदेह—देही=काया। विदेह=शरीर-रहित (मन से)। (प्रभु) भक्तों की दशा यह होती है कि वह शरीर से तो उद्यम करते रहते हैं और मन से भगवान् का जप करते रहते हैं।

३३ आगि . ससार—(व्याख्या) [कबीर साहब अनेक स्थलों पर अति गंभीर आध्यात्मिक अनुभवों को साधारण रूपकों द्वारा प्रकट कर दिया करते हैं। यह दोहा भी वैसा ही है।] तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि मनुष्य के हृदयाकाश मे जगदीश की ज्योति बड़े जोर से जलती रहती है। योगी लोग, समाधि अवस्था मे, उस प्रचंड प्रकाश का अनुभव करते हैं। उन्हें उसकी किरणें हर ओर फैलती प्रतीत होती हैं। कबीर साहब कहते हैं—मैं तो उस अग्नि मे तप कर कुंदन बन गया हूं परन्तु मूढ़-अज्ञानी लोग साधारण कांच ही बने हैं। कुंदन तथा शीशे की रचना में आग की आवश्यकता पड़ती ही है। भाव यह है कि जिन्होंने उस ज्योति का अनुभव किया है उन्ही का जन्म सफल है, दूसरों का नहीं।

३४ कबिरा ..माहिं—बेदन=वेदना, पीड़ा। करक=व्यथा। कबीर साहब कहते है कि प्रेम-रोग के रोगी के इलाज के लिए वैद्य बुलाया। उसने नब्ज देखकर रोग पहचानने का यत्न किया। बेचारा वैद्य रोग पहचान न पाया क्योंकि रोग तन का नहीं, मन का था।

३५ जाहु...सोय—निर्मइ=बनाई, दी। हे हकीम जी, अपने घरकी राह लीजिए। आपके किए कुछ न हो सकेगा। "जिन्होंने दर्द दिया है, वही दवा देंगे"। भाव—प्रेम-रोगी प्रीतम-दर्शन से ही स्वस्थ होते हैं, दवा-दारू से नहीं।

३६. आब देह—आब=कांति, श्री। याचक दाता से ज्यों ही कहता है 'कुछ दीजिए' त्यों ही उसकी कांति, प्रतिष्ठा तथा नयन-प्रीति काफूर हो जाती है।

३७. प्रेम...जाय—रुचै=पसंद आए। प्रेम न बागीचे मे पैदा होता है, न बाज़ार में बिकता है। राजा या प्रजा, जो भी प्रेम करना चाहे, सिर को मूल्य-रूप में देने से न झिझके।

३८. छिन...सोय—अघट=क्षीण न होने वाला। जो प्रेम पल पल बढ़ता-घटता रहता है, वह सच्चा नहीं होता। सच्चा प्रेम तो वही है जो मन मे एक-रस (समान भाव से) बना रहता है।

३९. प्रेम...सोय—चीन्है=पहचानता। कहने को तो प्रत्येक मनुष्य प्रेम-प्रेम कहता रहता है, पर उसे वस्तुत: पहचानता कोई भी नहीं। सच्चा प्रेम तो वही है जिस में मनुष्य दिन-रात मग्न रहता हो।

४०. जब...समाहिं—जब तक मुझे अपना ध्यान था, तब तक भगवान् दुर्लभ थे अब भगवान् मिले हैं तो अपनी सुध-बुध नहीं रही। सच-मुच प्रेम-गली इतनी तङ्ग है कि उसमे भगवान् और भक्त दोनों एक साथ नहीं समा सकते।

४१. जा...प्रान—मसान=निष्प्राण, मुर्दा। प्रेम-हीन हृदय को श्मशान के समान मुर्दा समझो। प्रेम-रहित लोग, लोहार की धौंकनी की नाईं, जीते नहीं केवल सांस लेते हैं।

४२. जल...पास—कुंई (कुमुद फूल) जल मे रहती है, चॉंद आकाश मे रहता है। इतना अन्तर होते हुए भी चांद चढ़ने पर कुंई खिल उठती है। सच है जो जिसे प्यारा लगता है, वह उस के पास (सदा मन मे ही) होता है।

पृष्ठ ६, दोहा ४३. ❀ तत्व...निर्वान—सुरति=ध्यान। सरवनी=कान की बाली, मुद्रा। परसा=पाया। पद निर्वान=मोक्षपद। भाल पर सत्य का टीका लगा कर, ध्यान की मुद्रा (साधुओं की कर्ण-बालियां) कान मे डाल कर, और सत्कर्मों का कंठा गले मे पहन कर, मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया है। भाव यह है कि मोक्ष की प्राप्ति

टीके, मुद्रा और कंठे द्वारा नहीं होती, अपितु सत्य, जप और पुण्य कर्मों से होती है।

४४. कबिरा...देख—कबीर साहब कहते हैं कि शुद्ध मन से जप करना ही सच्ची माला फेरना है, शेष सब तो जगत् का दिखावा मात्र है। यदि केवल माला फेरने से ही प्रभु मिल जाएं तब तो रहट कभी का मुक्त हो गया होता, क्योंकि उसके गले मे निरंतर लोटों वाली रस्सी की माला फिरती रहती है।

४५. बिनवत . दान—बिनवत हौं=प्रार्थना करता हूं। हे दया के भंडार, मैं हाथ जोड़ कर विनती करता हूं, इसे सुनिए। मुझे सत्सगति का सुख, दया तथा नम्रता का दान दीजिए।

४६. अवगुन...लाज—हे पिता, हे दीनबन्धु, मेरे पाप क्षमा कर दीजिए। चाहे मैं सुपुत्र नहीं, कुपुत्र ही हूं तो भी पुत्र की लाज पिता को रखनी ही उचित है।

४७. साहिब...ठौर—हे स्वामी, तुम ही दया करने वाले हो। मेरी पहुंच तुम्हीं तक है। जैसे जहाज़ के कव्वे को जहाज के बिना कोई और आसरा नहीं मिलता वैसे तुम्हीं मेरे एकमात्र आश्रय दाता हो।

४८. सिख...लेय—सिख=शिष्य, चेला। आदर्श शिष्य वही है जो सर्वस्व तक गुरु की भेंट करने को तैयार हो और आदर्श गुरु वही है जो शिष्य से कुछ भी ग्रहण न करे।

४९. तरवर...करन्त—बिलंबिए=ठहरना चाहिए। केल=केलि, विहार। उसी वृक्ष के नीचे ठहरना उचित है जो सारा साल हरा-भरा रहे, ठंडी छांह वाला हो, फलों से लदा हो और कूदते-फांदते पंछियों से युक्त हो।

५० साधु...पार—निश्चल=स्थिर चित्त, निश्चल। सच्चा साधु कहाना उतना ही कठिन काम है जितना तलवार की धार पर चलना। यदि साधु का मन प्रलोभन आने पर डांवाडोल हो जाए तब तो वह पतित हो जाता है, परन्तु यदि स्वधर्म पर दृढ़ रहे तब मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

५१. गाठी...खेह—कबीर साहब कहते हैं हम उन सच्चे सन्तों की चरण-धूल के तुल्य है जो गांठ में पैसा नहीं बांधते और स्त्री से स्नेह नहीं करते अर्थात् जिन्होंने लोभ और काम को जीत लिया है।

५२. जाति.. म्यान—सन्तों की जाति-वर्ण आदि नहीं, अपितु विद्या पूछनी चाहिए। म्यान का ध्यान छोड़ देना चाहिए, मूल्य खड्ग का तय करना चाहिए।

५३ कबिरा.. उपाधि—उपाधि=उपद्रव, झगड़ा। कबीर साहब कहते हैं कि सन्तों ही की संगत अच्छी होती है क्योंकि वह कष्ट-निवारक होती है। दुष्टों का संग तो बुरा होता है क्योंकि उस से दिन रात उपद्रव ही होते रहते हैं।

५४ कबिरा.. सुवास—गंधी=अत्तार। वास=निवास। सुवास=सुगंध। कबीर साहब कहते हैं कि सज्जनों का संग इत्र वेचने वाले के पास रहने के तुल्य है। यदि वह अत्तार कोई इत्र आदि न भी दे तो भी उस के पास बसने से सुगंध तो मिल ही जाएगी। भाव—सन्तों से धन लाभ न सही, ज्ञान-लाभ तो है ही।

५५. पोथी...होय—संसारी लोग पुस्तकें पढ़-पढ़ कर चल बसे पर अध्यात्म ज्ञान से कोरे ही रहे। जिसने ढाई अक्षरों वाले शब्द-'प्रेम'—का तत्त्व जीवन मे धारण कर लिया, वही सच्चा ज्ञानी बन गया। ('प्रेम' में सचमुच ही ढाई अक्षर हैं:—प्=½ + रेम=२) भाव—विद्या से प्रभु-प्रेम ऊँचा है।

५६ मारी...निबेर—ढिग=समीप। साकट=शक्ति, वाममार्गी। निबेर=दूर कीजिए। बुरी संगत से मनुष्य मारा जाता है जैसे बेरी के समीप स्थित केला। पवन चलने पर जब बेरी हिलने लगती है तब केले का वृक्ष चिरने लगता है। इस लिए वाममार्गियों अर्थात् दुष्टों का सग छोड़ ही दीजिए। †

---

† रहीम के पन्द्रहवें दोहे से मिलाइए।

पृष्ठ ७, दोहा ५७. सपने...जाय—डरपता=डरता हुआ। मुझे स्वप्न में स्वामी (प्रभु) ने दर्शन दिए और मुझ सोते हुए को जगा दिया। इस डर से कि वे ओझल न हो जाएं, मैं जागता हुआ भी, आंख नहीं खोलता।

५८. माखी...बलाय—मक्खी (गीले) गुड़ मे फंस गई है, उस के पर गुड़ से चिपक गए हैं। अब वह बहुतेरे हाथ मलती है, सिर पीटती है, पर क्या हो सकता है, लालच बुरी बला है।

५९. सहज...ऐंचातानि—जो वस्तु बिन मांगे मिल जाए, उसे दूध के समान समझिये। जो मांगने पर मिले उसे पानी की नाईं मानिए। जो हठ और ज़िद से प्राप्त हो उसे तो लहू के तुल्य जानिए।

६०. जो आवै...माहिं—उपजा हुआ प्रेम जीवन-भर नष्ट नहीं होता और यदि टूट जाए तो दोबारा उत्पन्न नहीं होता। प्रीत की कहानी बखानी नहीं जा सकती, मन मे ही समझ लीजिए।

६१. रूखा जीव—बिरानी=बेगानी। हे मनुष्य, सीधा-सादा भोजन और शीतल जल पीकर प्रसन्न रहो। न पराई चुपड़ी रोटी देखो न मन को ललचाओ। भाव—अपने भाग्य पर ही संतुष्ट रहना चाहिये।

६२ कबिरा...लेय—कबीर कहते हैं कि प्रभु मुझे रूखा-सूखा ही देता रहे तो भी मैं सतुष्ट हूं। मैं उस से बढ़िया पदार्थ मांगने से डरता हूं, ताकि कहीं मुझ से यह भी न छीन लेवे।

६३. सतगुरु जाय—कोटि=करोड़। परमेश्वर दीनो पर दया करने वाले है। उन्होंने आकर मुझ पर कृपा की है। मोक्ष-मार्ग करोड़ों जन्मों से ही तय हो सकता था। परन्तु मैं उनकी दया से क्षण भर मे ही मुक्त हो गया हूं।

६४. मरिए.. वार—एक ही बार प्राण त्याग कर मर जाना अच्छा है, उससे जगत् के पचड़ों से तो छुटकारा मिल जाता है। वह मृत्यु तो अत्यन्त निंदनीय है जिस का सामना दिन मे सौ-सौ बार करना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि प्राण-रक्षा के लिए झूठ बोलना, धनियों के

आगे गिड़गिड़ाना, घूँस लेना आदि नैतिक मौतें हैं। इनकी अपेक्षा तो एक ही बार मरना भला है।

६५. कस्तूरी...नाहिं—कुंडल=नाभि,नाफ। पीव=प्रियतम। कस्तूरी तो हिरन की नाफ में ही होती है पर वह उसे जंगल मे ढूंढ़ता फिरता है। इसी प्रकार प्रीतम तो शरीर में ही विद्यमान है परन्तु संसार इस बात से बे-खबर है।

६६. हरि...देत—हे मनुष्य, तू भगवान् से प्रेम न कर, वरन् उसके भक्त से प्रेम कर। कारण यह कि भगवान् से तो तुझे धन-संपदा और भूमि ही मिलेगी परन्तु भक्त के द्वारा तुझे भगवान् ही मिल जाएंगे।

६७. साध...अनन्त—निकसि=निकल कर । न बहुरैं=वापस नहीं आते। साधु पुरुष, सती स्त्री, वीर मनुष्य, ज्ञानी व्यक्ति और हाथी के दांत—ये सब एक बार निकल पड़ें तो फिर लौट कर नहीं आते चाहे असंख्य युग व्यतीत हो जाएं। भाव—संन्यासी फिर गृहस्थ नहीं बनते। सती स्त्री स्मशान से नहीं लौटती। सूरमा युद्ध मे ही खेत रहते हैं। आत्मज्ञानी फिर सांसारिक बखेड़ों मे नहीं फँसते। हाथी के दांत पुनः सूँड में नहीं समाते।

६८. सिर...होय—सिर की रक्षा करें तो प्रतिष्ठा नष्ट होती है। वह तो तभी बचती है जब सिर कटवाने को तैयार रहें (जैसे दिए की बत्ती कट जाने पर प्रकाश अधिक बढ़ जाता है, ऐसे ही प्रेम-मार्ग पर सीस कटवाने से मनुष्य का यश सब तरफ फैल जाता है।

६९. नैनों...देंव—हे प्रीतम, तू आकर मेरी आंखों में समा जा। फिर मैं तुझे निज पलकों में बन्द कर लूंगा। तब न मैं किसी और को देखूंगा और न ही तुझे किसी दूसरे को देखने दूंगा। (प्रेम का कितना उद्दाम उद्रेक है।)

७०. पीया...कान—प्रेम-रस भी पीना चाहते हो और साथ ही प्रतिष्ठा भी बचाए रखना चाहते हो। एक साथ दोनों बातें असम्भव

है। एक म्यान में दो तलवारों का समाना न आंखों ने देखा है, न कानों सुना।

❀ पृष्ठ ८, दोहा ७१. लाली लाल—जिधर भी देखती हूँ उधर ही अपने प्यारे (प्रभु) का रंग एक-सा चोखा नज़र आता है। मैं उसकी रंगत को देखने के लिए निकली और स्वयं भी उसी के रङ्ग मे रङ्गी गई। भाव यह है कि भगवान् की महिमा संसार में सर्वत्र एक सी फैली हुई है। जो उसे ध्यानपूर्वक देखता है, उसी पर भगवद्भक्ति का रङ्ग चढ़ जाता है।

७२ ज्ञानी.. जाय—कबीर कहते हैं—ज्ञानवान् मनुष्य से आत्मा-परमात्मा के मिलन के विषय मे कुछ कहने की आश्यकता नही, क्योंकि वह तो इस रहस्य को समझता ही है। इस लिए कहते हुये तो शरम ही आती है। और इस विषय में ज्ञान-हीन मनुष्य को कुछ कहना ऐसे ही है जैसे अन्धे के सामने नाच कर कला का प्रदर्शन करना। भाव यह है कि ईश्वर-संबंधी अनुभव के विषय मे चुप रहना ही उचित है।

७३. जो.. तिरसूल—बुबै=बोए। जो तेरे लिए कांटे बोए, उसके लिए भी तू फूल ही बो। तुझे फूलों के बदले मे फूल ही मिलेंगे; उसे कांटों के बदले त्रिशूलों की व्यथा सहनी पड़ेगी। भाव यह है, तू अपने अपकारी का भी उपकार कर। तुझे उपकार का फल सुख मिलेगा और उसे अपकार का फल घोर दु.ख।

७४. निन्दक.. सुभाय—नियरे=निकट। छवाय=डलवा कर। निज निंदक को अपने बिलकुल पास सहन मे बनवाई हुई कुटिया मे रखना चाहिए। क्योकि वह हमारे स्वभाव को साबुन तथा पानी के बिना ही स्वच्छ कर देता है। भाव—निंदक द्वारा बताए हुए अपने दोषों को त्याग कर हम पवित्र बन सकते हैं।

७५ ऐसी होय—आपा=अहकार। अभिमान को सर्वथा त्याग कर वाणी ऐसी बोलनी चाहिए जिससे अपना तथा श्रोता का मन शीतल हो जाए।

७६. बन्दे बार—हे मनुष्य, तू भगवान् की भक्ति कर; तभी उस का दर्शन होगा। मनुष्य जन्म रूपी सुन्दर अवसर फिर बार-बार नहीं मिलता।

७७ साधु...तरवार—हतै=पीडित करे। यदि तू वाणी का सावधानी से प्रयोग नहीं करता और जिह्वा रूपी खड्ग से पराई आत्माओं को कष्ट देता रहता है तो तेरा साधु बनना किस काम का? भाव—वाणी का सुप्रयोग साधु का प्रथम कर्तव्य है।

७८ मधुर ..सरीर—स्रवन=श्रवण, कान। साले=दु:खी करता है। मीठी वाणी दवाई के समान (शान्तिदायक) होती है और कड़वे वचन तीर के समान कानों के मार्ग से अन्दर घुस कर सारे शरीर को व्यथित कर देते हैं।

७९ दसो .. भागि—अपरबल=प्रबल, प्रचंड। सभी तरफों से गुस्से के प्रचंड आग भड़क उठी है। संतों का संग शान्तिदायक होता है। यदि दौड़ कर वहां पहुंच जाएं तो उस क्रोधाग्नि मे जलने से बच सकते हैं।

८० जिन...बैठ –पैठ=प्रविष्ट होकर। गहरे जल मे घुस कर जिसने रत्न ढूंढा उस ने पा लिया। जिस मूर्ख को डूबने के डर ने ही न छोड़ा, वह तट पर ही खाली हाथ बैठा रहा। भाव—अनेक कष्ट सह कर ही प्रभु-दर्शन होते हैं। जो कष्टों से डरता रहता है, वह प्रभु को कैसे पा सकता है।

८१ जहं...रोग—जहां अहंकार है वहीं विपत्ति है; जहां संदेह है वहीं दु:ख। कबीर कहते हैं, बताइए, यह चारों पुरानी बीमारियां क्योंकर दूर हो सकती हैं।

८२. साच . आप—सत्य के सदृश कोई तपस्या नहीं। झूठ के तुल्य कोई पाप नहीं। जिसके मन में सच्चाई है, उसके मन मे भगवान् स्वयं रहते हैं।

८३. कबिरा...दास—कबीर कहते हैं कि योगी तभी तक संसार का गुरू रहता है जब तक वह सांसारिक भोगों की आशा नहीं रखता। यदि वह भोगों की आशा करेगा तो जगत् उसका गुरु हो जायगा और वह जगत् का सेवक बन जाएगा।

८४. साँचे बिकाय—पतीजइ=विश्वास करता। पतियाय= विश्वास करता है। सच्चे का तो कोई विश्वास नहीं करता और झूठे पर सब विश्वास कर लेते हैं। देखिए, दूध तो गली-गली मे घुमा कर बेचा जाता है और शराब बैठे-बिठाए बिक जाती है।

पृष्ठ९,दोहा ८५ जहाँ आप—धर्म का मूल दया है, पापका मूल लालच है, मृत्यु का मूल गुस्सा है और भगवान् के दर्शन का मुख्य साधन क्षमा है।

८६ बुरा...कोय—मैं दुर्जन की खोज में निकला किंतु मुझे तो कोई भी दुर्जन न मिला। सच तो यह है कि जब मैं अपने दिल को टटोलता हूँ तो प्रतीत होता है कि सब से बड़ा दुर्जन तो मैं स्वयं ही हूं।

८७. दाया सोय—कुंजर=हाथी। तू दया को क्यों छोड़ता है? दया तो सदा दिल मे रखनी ही चाहिए। चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी उस परमात्मा की ही सृष्टि हैं, अतः किसी से निर्दयता का बर्ताव मत कर।

८८. आस पास...कराल—काल इतना भयकर होता है कि अपनी-अपनी वीरता की डींगें मारने वाले योद्धाओं के इर्द-गिर्द खड़ा रहने पर भी वह शरीररूपी महल के बीच में से मनुष्य के प्राणों को हर लेजाता है।

८९. भय रीति—भाव=सम्मान। डर के बिना सम्मान और प्रेम नहीं होते। जब दिल से डर निकल जाता है तब सब मर्यादा और आनन्द नष्ट हो जते हैं।

९० द्वार जाय—निवाजई=कृपा करेगा। धनवान् चाहे धक्के भी दे तो भी उसका द्वार छोडकर और कहीं मत जाओ। जो उसका द्वा न छोडेगा, तो वह कभी-न-कभी तो कृपा कर ही देगा। (भाव यह है कि ईश्वर का आसरा छोड़ना न चाहिए, वह कभी तो दयालु होगा ही।

६१. सब...मूल—गहि पकड़ा=ले पकड़ा। जड़ को ही पकड़ लिया, तो कहो, शेष क्या रह गया ? उस एक मूल के मिलने पर शाखाएं पत्ते, फूल, और फल सब प्राप्त हो जाते हैं। भाव यह है कि भगवान् के मिलने पर सभी वस्तुए मिल जाती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास

गोसाईं जी का जन्म संवत् १५५४ में राजापुर, जिला बाँदा, में हुआ। इनके माता-पिता के नाम हुलसी तथा आत्मा राम थे। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म अशुभ मूल-नक्षत्र मे हुआ। अतः पिता ने इन्हें त्याग दिया और इनके गुरु श्री नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया।

तुलसीदास जी का अपनी पत्नी, रत्नावली, से अत्यधिक अनुराग था। एक बार वह कारण-वश इनकी अनुपस्थिति मे मायके चली गई। ये भी झट वहीं जा धमके तब रत्नावलो ने इन्हें यों कहा.—

लाज न आवत आपकी दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होति न तौ भयभीति॥

यह सुन कर तुलसीदास की आँखें खुल गईं। वे सन्यासी हो गए और भारत के अनेक तीर्थों पर भ्रमण करने लगे। ये श्रीराम के परम भक्त बने और उन्हीं के शुभचरित का इन्होंने अपने ग्रंथों में काव्यमय वर्णन किया है। मनुष्यों के विषय मे इन्होंने रचना नहीं की। ये अपने समय मे निज विद्वत्ता, कविता की उत्कृष्टता तथा सदाचार के कारण श्रेष्ठतम मनुष्य माने जाते थे।

प्राचीन कवियों मे सर्वश्रेष्ठ यही हैं। अवधी तथा व्रजभाषा दोनों ही पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने विविध शैलियों में अपने ग्रन्थों

का निर्माण किया। साहित्यिकता की दृष्टि से कोई प्राचीन कवि इनकी तुलना नहीं कर सकता। मानवीय मन के जितने भावों तक इन की गहरी पहुँच थी और किसी भी कवि की नहीं। इन की कविताओं मे भक्ति, प्रेम, ज्ञान, वैराग्य, नीति, सदाचार, लोकव्यवहार आदि अनेक विषयों का वर्णन है। ये साकारोपासना को ही अधिक महत्त्व देते थे और श्रीरामादि को ईश्वर का अवतार मानते थे।

इन के प्रसिद्ध ग्रंथ ये हैं—

रामचरित मानस (तुलसी रामायण), विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, पार्वतीमंगल, कृष्ण गीतावली, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण आदि। इन का सर्व-प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरित मानस तथा सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ विनयपत्रिका है। कहते हैं, इन का स्वर्गवास संवत् १६८० वि० में हुआ।

दोहों का सरलार्थ

पृष्ठ ११. दोहा १ नमो . काम—परधाम=स्वर्ग, विष्णु। श्री तुलसी दास जी कहते हैं, जिसे स्मरण करने से भक्तजनों के मन की सब इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं उस (वैकुंठ निवासी) भगवान विष्णु के अवतार, श्रीरामचंद्र जी को अनेक बार नमस्कार हो।

२. ससि.. हान—ससि=शशी, चांद। उरसि=हृदय मे। अथवत=अस्त होते। तुलसी के हृदय-रूपी आकाश मे सीता रूपी चाद तथा श्रीराम रूपी सूर्य, नीच पाप अथवा अज्ञान रूपी अधेरे का नाश करते हुए, समूल नष्ट कर देता है। सदा ही चमकते रहते हैं, उनका कभी अस्त नहीं होता।

३ राम . अनुकूल—श्रीराम का स्वरूप ऐसा विचित्र जल है जो सब पापों को जड से साफ कर देने वाला है। तुलसीदास कहते हैं, यदि वह जल मेरे हृदय को भी छू जाए तो मुझे मनोवाछित आनंद मिल जाए।

४ बरु . राम—हंस मानसरोवर को, चांद ठंडक को, सूर्य तेज को और मोर चाहे (वर्षा ऋतु मे) मदमत्त होना भले ही छोड़ दे, परन्तु तुलसीदास श्रीराम को नहीं छोड़ेंगे।

५ राम . अकाम—वारिद=बादल। गहि=पकड कर। तुलसी-दास कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीराम के चरणों का आसरा लिए बिना

मोक्ष की आशा करता है, वह वर्षा की बूंदों को पकड़ आकाश पर पहुंचना चाहता है। भाव यह है कि श्री राम की शरण में जाने के बिना मोक्ष-प्राप्ति असंभव है।

६. राम...अनेक—लसंत=सुहाते हैं। निगम=वेद-शास्त्र। श्री रामचंद्र जी इस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष की जड़ हैं। योग के आठ अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) उस के पत्ते है। मोक्ष ही उसका एकमात्र फल है। ससार में चारों युग उसी से भली भांति शोभा पाते हैं। चारों वेद उसी की महिमा का वर्णन करते हैं।

७. जो...सुजान—यदि जगत् मे मूर्ख लोग उपदेश या सीख से सुधरने वाले होते तो भगवान् श्रीकृष्ण जैसे विद्वान के उपदेश से दुर्योधन समझ गया होता, अर्थात् कुपथ से सुपथ पर आगया होता। भाव यह है कि ईश्वर की कृपा से ही सुबुद्धि प्राप्त होती है शिक्षा से नहीं।

८. चतुराई...नसाय—तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस मनुष्य की श्रीराम के चरणों में प्रीति नहीं, उसकी बुद्धिमत्ता, ज्ञान और सर्वस्व समूल नष्ट हो जाएं। भाव यह है कि चतुरता, ज्ञान और धन, राम-भक्ति के बिना निष्फल हैं।

९. तुलसी...चकोर—जनि = मत, न। मयंक = चन्द्र। तुलसीदास कहते हैं कि अवधेश श्रीराम का ही भजन करो, किसी दूसरे का ध्यान मत करो। अपने नेत्रों को श्रीरामचन्द के पूर्ण मुख-चंद्र का चकोर बना डालो। भाव यह है कि जैसे चांद को देख कर चकोर इधर-उधर देखना छोड़ देता है, वैसे ही केवल श्रीराम मे ही अपना मन लगाओ।

१० तुलसी...संतोस—दूबरी=दुबली। पीन=मोटा, बढा हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि अपने सब गुण अवगुण दयालु श्रीराम के सामने प्रकट कर दो। ऐसा करने से तुम्हारी दीनता क्षीण हो जाएगी और सतोप मे खूब वृद्धि होगी।

११. सब...होय—तुलसीदास कहते हैं कि (राम-भक्ति के मार्ग मे) सब साथियों ने रुकावट ही डाली, किसी न सहायता न की। अब तो दयालु श्रीराम स्वयं दया करें तभी मेरा कल्याण हो सकता है किसी

१२. तुलसी...नाह—द्रवइ = पसीजता। नाह = नाथ, पति। तुलसी दास जी कहते हैं, जब तक सीता-पति श्रीरामचन्द्रजी ही पसीज कर दया नहीं करते, तब तक दुख-चिंता दूर नहीं हो सकती, चाहे कल्पवृक्ष की छाया में ही क्यों न जा बैठें।

हरे...नाथ—बरे=जलने पर। फरे=फलने पर। सब्ज़ पेड़-पौधों के पत्तों को प्राणी चर जाते हैं। जब फल लगते हैं, तब उन फलों को मनुष्य ले लेते हैं। जब वे सूख जाते हैं तब लोग उन्हें जला कर अपने अङ्ग सेंकते हैं। तुलसी दास कहते हैं ससार मे तो सब अपना ही मतलब सिद्ध करते हैं, वास्तविक परोपकारी तो श्रीराम ही हैं। भाव यह कि जब मनुष्य के पास चार पैसे आने आरम्भ होते हैं तब इर्द-गिर्द के लोग अनेक उपायों से उसे कुचलना चाहते हैं; जब वह पर्याप्त सपन्न हो जाता है मांग-मांग कर उसे निचोड़ना चाहते हैं, और जब वह कगाल हो जाता है तब वे अपने वैभव-प्रदर्शन से उसे जला कर स्वय प्रसन्न होते हैं। ससार मे श्रीराम के बिना सच्चा हितैषी कोई भी नहीं। [देखो कबीर का दोहा ४७]

१४. स्वामी...ठौर—तुलसी दास जी कहते हैं, हे जानकी वल्लभ, मेरी पहुँच तो केवल तुम्हीं तक है, ठीक उसी प्रकार जैसे जहाज के कव्वे को जहाज के बिना कोई दूसरा आसरा दिखाई नहीं देता।

पृष्ठ १२, १५. तुलसी...पूत—सूत = नाता। तुलसी दास जी कहते हैं कि श्रीराम का और मेरा क्या खूब सबंध जुड़ा है! यह सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि घरवालों का कुपुत्र से होता है; न ही वह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है न ही रखा जा सकता है। भाव यह है कि जैसे माता-पिता कुपुत्र के विषय मे दुविधा मे पड़े रहते हैं कि इसे रक्खे या त्यागें, इसी प्रकार श्रीराम भी मेरे विषय मे सशय मे ही रहते हैं, क्योंकि मैं भी उनका गुण-हीन पुत्र ही तो हूं।

१६ लगन . ताहि—दाहिने = अनुकूल, कृपालु। तुलसी दास लग्न, मुहूर्त और योग (फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रह नक्षत्रो के शुभाशुभ फल आदि) के प्रभाव की तनिक भी चिन्ता नहीं करते। वह तो एक बात जानते हैं कि जिस पर श्रीराम की कृपा-दृष्टि है, उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

१७. चातक...प्रतीत—अपने जीवनदाता बादल के बरसने के समय और प्रकार को जानता हुआ भी पपीहा अपनी दृष्टि निरन्तर उसी की ओर लगाए रखता है। तुलसीदास कहते हैं, उसकी इस एक-टक दृष्टि से ही उसके सच्चे प्रेम का विश्वास हो जाता है।

१८ जीव ..सनेह—तुलसीदास जी कहते हैं कि जगत् के सब स्थावर-जगम जीवों को ही बादल प्यारा लगता है। परन्तु उसके साथ स्वाभाविक प्रेम तो केवल पपीहे को ही है।

१६ मुख ..तोर—बलित=वेष्टित, घिरा हुआ। हे पपीहे! कोयल, मोर तथा चकोर की वाणी मीठी होती है परन्तु मन मैला। केवल तेरे ही यश-रूपी जल ने जगत् को घेर कर भर दिया है। भाव यह है कि तेरा सच्चा प्रेम ही संसार में प्रसिद्ध है।

२०. माँगत.. लजात—अनत=अन्यत्र। तुलसी दास जी कहते हैं कि मुझे पपीहे-रूपी भक्त की किसी और से उपमा देते हुए लाज आती है। यह अपना घर छोड़ कर इधर-उधर मांगता नहीं फिरता, परन्तु दूसरे भक्त ऐसे नहीं होते।

२१ तुलसी...नाथ—तुलसी दास जी कहते हैं कि तीनों लोकों में केवल पपीहे का ही मस्तक गर्व से ऊँचा है, क्योंकि न वह किसी दूसरे को अपना स्वामी बनाता है और न ही दीनता से किसी के सामने झुकता है।

२२ ऊँची . सरीर—पपीहा ऊँची जाति का पक्षी है, वह नीची जगहों (नदी, तड़ाग आदि) का जल नहीं पीता। या तो वह साँवले (जल-भरे) बादलों से ही जल मांगता है, (और पीता है) या शारीरिक कष्ट ही सहता रहता है।

२३ चढत .रोख—पयोद=बादल। पयोधि=सागर। रोख=रोष। पपीहा अपने प्यारे बादल के दोषों की ओर कभी ध्यान नहीं देता। तुलसी दास कहते हैं, कि इसी प्रकार प्रेम का समुद्र (प्रेम का पात्र) भी क्रोध के योग्य नहीं होता। भाव यह है कि प्रेम सुन्दर सागर के समान होता है, उसे क्रोध से क्षुब्ध न करना चाहिए अर्थात् दोषी प्रेमपात्र पर भी क्रोध न करना चाहिए।

२४ पवि...रीझ—पवि=वज्र। पाहन=ओले। तुलसीदास कहते

हैं कि चाहे बादल वज्र गिराता है, ओले बरसाता है, बिजली चमकाता है, ज़ोर से गरजता है और अत्यन्त क्रुद्ध होकर आंधी चलाता है तो भी उसके प्रेम में मग्न पपीहा उस अपने प्यारे के क्रोध को देख कर उसे दोष नहीं देता।

❀ २५ मान.. लेहु—(व्याख्या) तुलसी दास कहते हैं कि आत्म-संमान भी बनाए रखना, मांग भी लेना और प्यारे से स्वाभाविक स्नेह भी स्थिर रखना, ये तीनों बातें तभी संभव हो सकती हैं जब तुम पपीहे का अनुकरण करो। पपीहा बादल से जल मांग भी लेता है, प्रतिष्ठा भी नहीं त्यागता (क्योंकि और कहीं से पानी नहीं पीता) और बादल से अपना स्नेह भी एक रस बनाए रखता है।

२६. उपल...ओर—उपल = ओले। तरजि = डॉट कर। कुलिस = वज्र। आन = अन्य। (मेघ पपीहे पर) ओले बरसाता है, डॉटता हुआ गरजता है और भयकर बिजली तक गिराता है। फिर भी पपीहा उसे छोड़ कर किसी और की ओर नहीं देखता। (प्रेम हो तो ऐसा हो!)

२७. गंगा...धूरि—स्वाति=पन्द्रहवां नक्षत्र (उसी में बरसे जल को पपीहा पीता है)। गगा, यमुना, सरस्वती तथा सातों समुद्र जल से भरे ही रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि पपीहे के विचार में उपर्युक्त सब स्थानों का जल धूल के समान होता है। उसे तो केवल स्वाति-नक्षत्र में बरसा हुआ मेघ-जल ही चाहिये।

२८. तुलसी...धार—वारिधर=बादल। तुलसी दास कहते हैं कि पपीहा अपने पुत्र को बार-बार यही उपदेश देता है कि ऐ प्यारे पुत्र, (मेरे मरने पर) बादल के जलके बिना और किसी भी पानी से मेरा तर्पण न करना।

पृष्ठ १३—दोहा २६ एक...तुलसीदास—तुलसीदास की तो बस इसी एक बात का भरोसा, शक्ति, आशा और विश्वास है कि श्रीरामचन्द्र स्वाति-नक्षत्र के निर्मल जल के तुल्य हैं और वह स्वयं पपीहे के समान हैं।

३०. खेलत...रघुनाथ—व्याल=सांप। तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे साप के साथ खेलते हुए तथा अग्नि मे हाथ डालते हुए बच्चे की रक्षा माता-पिता करते हैं वैसे ही सीता जी और रामचन्द्र जी भक्तों को

कष्टों से बचाते हैं।

३१. कै...खेलु—परिहेलू=छोड़ दो। तुलसी दास जी कहते हैं कि हे मनुष्य, अब दो खेलों में से किसी एक खेल को छल-कपट छोड़ कर खेलो। या तो श्रीराम के चरणों से प्रेम करो और या उन से प्रेम छोड़ कर जगत् की ममता में लीन हो जाओ।

३२. तुलसी...माँहिं—तुलसी के प्रभु श्रीराम के दरबार में किसी पदार्थ का घाटा नहीं है। परन्तु अभागे मनुष्य सेवा करने मे प्रमाद करते हैं और इस लिये (अभीष्ट फल न पाकर) चीखते रहते हैं। (सच्चे सेवक को उस दरबार से सब कुछ मिल जाता है।)

३३ असन ..दोय—असन (अशन) = भोजन। वसन= वस्त्र। भोजन, वस्त्र, सन्तान तथा स्त्री का सुख तो पापियों के घर मे भी होता है। तुलसीदास कहते हैं कि दो वस्तुएँ बड़ी कठिनता से मिलती हैं। एक सत्संगति तथा दूसरी श्रीराम की भक्ति।

३४ तुलसी कठोर—परिहरु=त्यागो। तुलसीदास कहते हैं कि मधुर वाणी से सब तरफ सुख की उत्पत्ति होती है। दूसरों को वश में करने का यही (अचूक) मंत्र है। इस लिए कड़वी वाणी का त्याग करो।

३५ तुलसी...अक—निरबाहिबो=सहायक होगा। तुलसीदास जी कहते है कि श्रीराम का भजन निर्भय हो कर करो। वह भजन नौ के अंक के समान लोक तथा परलोक सर्वत्र कल्याण करने वाला है। भाव यह है कि ९ को किसी अंक से गुणा करें तो भी उत्तर का योग ९ ही आता है। जैसे ९ × ५ = ४५। यहां४,५ मे भी ४+५=९ ही है। इसी प्रकार श्रीराम की भक्ति हर दशा मे एक सी सहायता करती है।

३६. राम.. उदार—अव्यय=अघट, एक-रस। श्रीराम स्वय तो कामना रहित हैं परन्तु भक्तजनों की सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। इसीलिए तो वे परमात्मा, विकार-हीन (एक रस), पवित्र तथा उदार कहलाते हैं।

३७. राम अभिराम—अज=जन्महीन। अद्वैत=एक ही सत्य स्वरूप। समतर =अविकारी, एक रस। श्रीरामचन्द्र जी का स्वभाव सदा एक रस रहता है। वे आनन्दरूप, सर्वोपरि, जन्म-हीन तथा जगत् के ...ा हैं। वे एक ही वास्तविक सत्य हैं (शेप सब भ्रम है)। वे सदा

रहने वाले, विकार-रहित और सुन्दर पद अर्थात् मोक्ष-रूप हैं।

३८. जथा...तुलसीदास—तुलसीदास जी तो यही समझते हैं कि जैसे भूमि सब बीजों से पूर्ण है, गगन सब तारों से भरा हुआ है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी में सब धर्म पाए जाते हैं।

३९. रामहिं...आन—संतजन केवल श्रीराम को ही श्रेष्ठ समझते हैं और श्रीराम भी संत को ही विश्वसनीय (उत्तम) मानते हैं। संत केवल राम को ही अपना स्वामी समझते हैं और राम को भी संतों के सिवा कोई प्यारा नहीं।

४० तुलसी देतु—पाहन (पाषाण)=पत्थर। तुलसीदास जी कहते है कि भले लोग सुन्दर आम के वृक्षों के समान हैं, जो दूसरों के लिए ही फूलते-फलते हैं। लोग तो इधर से उन्हें पत्थर मारते हैं और वे उधर से फल ही देते हैं। भाव यह है कि महात्मा लोग अपने अपकारियों का भी उपकार ही करते हैं।

४१. सुख...नाहिं—भीजबो=भीगता। संतों के मन पर सुख तथा दुख दोनों का वैसे ही कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे दर्पण सुमेरु पर्वत की परछाई से दबता नहीं और सागर की परछाई से भीगता नहीं।

४२ तुलसी सुभाय—तुलसी दास जी कहते हैं कि जैसे समय आने पर ही वृक्ष फूलते-फलते हैं वैसे ही मनुष्य के गुण-दोष युक्त स्वभाव का समय आने पर ही पता लगता है।

पृष्ठ १४, ४३. सुमिरु...काम—अह-निसि=दिन-रात। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य, राम को स्मरण करो, राम के चरणों की सेवा करो, श्री राम को ही देखो, सुनो तथा समझो। दिन-रात तुम्हारा यही काम होना चाहिए।

❀ ४४ बनो...फूल—(भाव) हे मनुष्य, इस बात को सहज ही समझ ले कि पहले से ही तू पर्याप्त सजा-सजाया हुआ है। अपने बनाव-सिंगार की तुझे आवश्यकता नहीं है। अपने अंदर गुण धारण कर। जैसे गंध-हीन लाल-रंग वाले पलाश के फूल की लाली से कोई लाभ नहीं होता है वैसे ही गुण-हीन आडंबर-प्रिय मनुष्य भी व्यर्थ ही होता है।

४५. तन.. ध्यान - तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहे मनुष्य (तप से) तन को सुखाकर ढांचामात्र बना ले, चाहे रात-दिन ध्यान मे मग्न

रहे। तो भी आध्यात्मिक ज्ञान को सोचे बिना उसकी वासना नहीं मिट सकती।

४६. कलप...विचार—वित्त=धन। तुलसीदास जी कहते हैं—सोच देखिए, कल्पवृक्ष की तसवीर खींच कर सहस्र बार मांगने पर भी उस से धन नहीं मिलता।

॥४७. भटकत...अभिमान—अद्वैतता=ब्रह्म सत्य हैं, शेष सब मिथ्या, यह सिद्धांत। बितरन (वितरण)=दान पुण्य। तुख (तुष)=भूसा, असार वस्तु। विहरि=विचरते हुए। (तुलसीदास जी यहा वाचक ज्ञानी की ओर संकेत करते हैं—) कुछ लोग अद्वैतवाद अर्थात् 'आ ब्रह्म' के सिद्धांत मे ही भटकते रहते हैं और विद्या के अभिमान मे ही अटके रहते हैं। वे तो मानो भक्ति रूपी बीजों को छोड़कर अभिमान रूपी भूसी को ही साफ़ करते हैं जिस से सार कुछ नहीं निकलता।

४८. जो...जाहि—जो सुनना ही न चाहे, उसे क्या कहें और क्या सुनाए। तुलसीदास जी कहते हैं कि उसे उपदेश देने से तो अपनी बुद्धि भी उसकी बुद्धि की तरह ही नष्ट हो जाती है।

॥ ४६. सदा...ग्यान—अपर=दूसरा। अप्रमेय=जो मापा न जा सके। दुरत=छिपता। ईश्वर सदा प्रकाश देने वाला, सुन्दर-स्वरूप तथा विनाश-हीन है। उस जैसा दूसरा कोई भी नहीं। वह माप-तोल रहित, एक-मात्र सत्य तथा जन्महीन है। इस शरीर के होने मात्र से ही उसका ज्ञान छिपता नहीं। इस शरीर के होते हुए भी अपितु इसी मनुष्य शरीर से उसका ज्ञान प्राप्त होता है।

॥ ५० तजत...प्रीति—ग्रहत=ग्रहण करता है। सागर की चाल यह है कि मेघ-रूप मे जल को छोड़ता हुआ घटता नहीं और नदी, वर्षा आदि से फिर उसे प्राप्त करके बढ़ता नही। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह बात दिल मे सोच कर श्रीराम के चरणों से प्रेम करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि आत्मा जब परमात्मा से संसार मे आती है तब परमात्मा मे कोई कमी नहीं आजाती और जब फिर उसमे जा समाती है तब उस मे वृद्धि नहीं होजाती। इस प्रकार अपना वास्तविक आश्रय ईश्वर को मान कर उसी से प्रेम करना चाहिए।

॥ ५१. तुलसी...नीच—अमिय=अमृत। मीच=मृत्यु। तुलसी

दास जी कहते हैं कि यदि (विपत्ति आदि के समय मे) मांगने पर मौत भी मिल जाए तो वह अमृत से भी मधुर लगती है। परन्तु उचित अवसर के बिना तो अमृत और अमृत बरसाने वाला (चांद) भी हलाहल विष से निकम्मा दिखाई देता है।

५२. करम.. असार—तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहे जितना सोच-विचार करो, कर्मों की गति टल नहीं सकती। इस प्रकार संसार में सधनता-निर्धनता, सुख-दुख आदि कर्मों के फल के अनुसार ही मिलते हैं।

५३. सन्तन लीन—('अभि' के स्थान पर 'अमि' पाठ चाहिए)। लै=(१) लीन होना (२) लेजाकर। विषरजय (विपर्यय)=उलट पलट। ज्ञानी लोगों के विचारानुसार संतों का अमृत के भंडार (भक्ति) मे लीन होना ही उनकी सुन्दर गति है। यही जान कर वे उलटे (निंदित) कर्मों से दूर तथा राम की भक्ति मे चूर रहते हैं। यदि पाठ 'अभि-सदन' ही रहे तो यह अर्थ भी बन जाता है:—चतुर लोग संतों को (श्रद्धापूर्वक) निज घर ले जाकर उन से मोक्ष-मार्ग के उपाय समझते हैं। फिर वे निंदित कर्मों से परे तथा राम-भक्ति मे मग्न रहते हैं।

५४ सदा...निधान—निहचय=निश्चय से। निशिकर=चांद। तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता को सचमुच न घटने बढ़ने वाले चद्रमा के समान (शांति दायक) समझ कर और शील के भंडार श्रीराम को सूर्य के समान दुःखनाशक समझ कर संत-जन सदा आनंद-मग्न रहते हैं। भाव यह है कि दु.ख राम दूर कर देंगे, शांति सीता दे देंगी; इस लिए वे दोनों के ध्यान मे लीन रहते हैं।

५५. जात रूप . पाय—जातरूप=स्वर्ण। अनल=अग्नि। सीत-कर=चांद। जैसे सोना आग मे मिल कर, अपने आप को तपवा कर, अधिक सुन्दर निकल आता है, वैसे ही संत लोग चंद्र के समान सीता तथा श्रीराम के चरणों की भक्ति पा कर अधिक चमक उठते हैं।

५६ आपुहिं...नाहिं—जो जीव स्वयं ज़िद करके अपने आप को जगत् के जाल मे बांधता है, उसे कौन छुड़ा सकता है! वह यह बात देखता-सुनता हुआ भी कि भगवान् ही आनंद देने वाला है; अपना हठ

रहे। तो भी आध्यात्मिक ज्ञान को सोचे बिना उसकी वासना नहीं मिट सकती।

४६. कलप...विचार—बित्त=धन। तुलसीदास जी कहते हैं—सोच देखिए, कल्पवृक्ष की तसवीर खींच कर सहस्र बार मांगने पर भी उस से धन नहीं मिलता।

*४७. भटकत...अभिमान—अद्वैतता=ब्रह्म सत्य हैं, शेष सब मिथ्या, यह सिद्धांत। बितरन (वितरण)=दान पुण्य। तुख (तुष)= भूसा, असार वस्तु। विहरि=विचरते हुए। (तुलसीदास जी यहां वाचक ज्ञानी की ओर संकेत करते हैं—) कुछ लोग अद्वैतवाद अर्थात् 'अहं ब्रह्म' के सिद्धांत मे ही भटकते रहते हैं और विद्या के अभिमान मे ही अटके रहते हैं। वे तो मानो भक्ति रूपी बीजों को छोड़कर अभिमान रूपी भूसी को ही साफ़ करते हैं जिस से सार कुछ नहीं निकलता।

४८ जो...जाहि—जो सुनना ही न चाहे, उसे क्या कहें और क्या सुनाए। तुलसीदास जी कहते है कि उसे उपदेश देने से तो अपनी बुद्धि भी उसकी बुद्धि की तरह ही नष्ट हो जाती है।

* ४६. सदा...ग्यान—अपर=दूसरा। अप्रमेय=जो मापा न जा सके। दुरत=छिपता। ईश्वर सदा प्रकाश देने वाला, सुन्दर-स्वरूप तथा विनाश-हीन है। उस जैसा दूसरा कोई भी नहीं। वह माप-तोल-रहित, एक-मात्र सत्य तथा जन्महीन है। इस शरीर के होने मात्र से ही उसका ज्ञान छिपता नहीं। इस शरीर के होते हुए भी अपितु इसी मनुष्य शरीर से उसका ज्ञान प्राप्त होता है।

* ५०. तजत...प्रीति—ग्रहत=ग्रहण करता है। सागर की चाल यह है कि मेघ-रूप मे जल को छोड़ता हुआ घटता नहीं और नदी, वर्षा आदि से फिर उसे प्राप्त करके बढ़ता नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह बात दिल मे सोच कर श्रीराम के चरणों से प्रेम करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि आत्मा जब परमात्मा से संसार मे आती है तब परमात्मा मे कोई कमी नहीं आजाती और जब फिर उसमे जा समाती है तब उस मे वृद्धि नहीं होजाती। इस प्रकार अपना वास्तविक आश्रय ईश्वर को मान कर उसी से प्रेम करना चाहिए।

* ५१. तुलसी...मीच—अमिय=अमृत। मीच=मृत्यु। तुलसी

दास जी कहते हैं कि यदि (विपत्ति आदि के समय मे) मांगने पर मौत भी मिल जाए तो वह अमृत से भी मधुर लगती है। परन्तु उचित अवसर के बिना तो अमृत और अमृत बरसाने वाला (चांद) भी हलाहल विष से निकम्मा दिखाई देता है।

५२. करम...असार—तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहे जितना सोच-विचार करो, कर्मों की गति टल नहीं सकती। इस प्रकार संसार में सधनता-निर्धनता, सुख-दुख आदि कर्मों के फल के अनुसार ही मिलते हैं।

५३. सन्तन. लीन—('अभि' के स्थान पर 'अमि' पाठ चाहिए)। लै=(१) लीन होना (२) लेजाकर। विपरजय (विपर्यय)=उलट पलट। ज्ञानी लोगों के विचारानुसार सतों का अमृत के भंडार (भक्ति) मे लीन होना ही उनकी सुन्दर गति है। यही जान कर वे उलटे (निंदित) कर्मों से दूर तथा राम की भक्ति मे चूर रहते हैं। यदि पाठ 'अभि-सदन' ही रहे तो यह अर्थ भी बन जाता है:—चतुर लोग संतों को (श्रद्धापूर्वक) निज घर ले जाकर उन से मोक्ष-मार्ग के उपाय समझते हैं। फिर वे निंदित कर्मों से परे तथा राम-भक्ति मे मग्न रहते हैं।

५४. सदा...निधान—निहचय=निश्चय से। निशिकर=चांद। तुलसीदास जी कहते है कि सीता को सचमुच न घटने बढ़ने वाले चद्रमा के समान (शांति दायक) समझ कर और शील के भडार श्रीराम को सूर्य के समान दुःखनाशक समझ कर संत-जन सदा आनद-मग्न रहते हैं। भाव यह है कि दु.ख राम दूर कर देंगे, शांति सीता दे देंगी; इस लिए वे दोनों के ध्यान मे लीन रहते हैं।

५५. जात रूप . पाय—जातरूप=स्वर्ण। अनल=अग्नि। सीत-कर=चांद। जैसे सोना आग मे मिल कर, अपने आप को तपवा कर, अधिक सुन्दर निकल आता है, वैसे ही संत लोग चद्र के समान सीता तथा श्रीराम के चरणों की भक्ति पा कर अधिक चमक उठते हैं।

५६ आपुहिं...नाहिं—जो जीव स्वयं ज़िद करके अपने आप को जगत् के जाल मे बांधता है, उसे कौन छुड़ा सकता है! वह यह बात देखता-सुनता हुआ भी कि भगवान् ही आनंद देने वाला है; अपना हठ

करो।

७०. सदा...विस्राम—तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी सगुन, सुख के भंडार तथा परम बलवान् हैं। मनुष्य उनके दर्शन करके मोक्ष प्राप्त करता है।

पृष्ठ १६, ७१. तुलसी ..खेद—(हमारे विचारनुसार दोहे मे जनन के स्थान पर जनम पाठ चाहिए।) तुलसीदासजी कहते हैं कि जन्म तथा मृत्यु के रहस्य को संत जन ही समझते हैं (और इसी लिए शांत भी रहते हैं)। उस रहस्य को जाने बिना अनेक प्रकार के जन्मों के विचार से उत्पन्न होने वाला मानसिक खेद मिट नहीं सकता। (यदि पाठ 'जनन' ही हो तो उत्तरार्ध का अर्थ यों होगा:—उस रहस्य को जाने बिना अनेक प्रकार क लोगों के मन का क्लेश कैसे मिट सकता है। अर्थात् सतजन उस रहस्य को स्वयं जान कर लोगों को भी बता देते हैं।

७२. तौ लग...थाह—जब तक हमारी कोई अभिलाषा कायम है तब तक हम से सब बड़े हैं। जब हम परमेश्वर के स्वरूप को समझ कर पूर्णकाम हो जाएं तब कोई भी हम से बड़ा नही रहता।

७३. मृन-मय...कोइ—मृनमय = मिट्टी का। कुलाल = कुम्हार। ससार जानता है कि मिट्टी का घड़ा भी कुम्हार के बिना नहीं बन सकता। तुलमीदास जी कहते हैं, इसी प्रकार कोई भी काम कर्ता के बिना नहीं हो सकता। भाव यह है कि सृष्टि भी बिना कर्ता (ईश्वर) के नही बनी)।

७४ तातें...अनुमान—चूंकि (सृष्टि रूपी) कर्म प्रधान (प्रत्यक्ष विद्यमान) है इसलिए इस के बनाने वाले को भी (योग आदि द्वारा) अनुभव करो। तुलसीदास जी कहते है कि केवल असंख्य अनुमान करते रहने से उसे देख न सकोगे।

७५ अनूमान...आन—साक्षी (प्रत्यक्ष ज्ञान) के बिना अनुमान विश्वास के योग्य नहीं होता। इसलिए तुलसीदास कहते है, कि वही बात कहो जो प्रत्यक्ष हो। प्रत्यक्ष के सिवा कौन दूसरा विश्वसनीय होता है? (भाव यह है कि परमात्मा का आत्मा में प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए, कवल बाहरी अनुमानों पर ही संतुष्ट रहना ठीक नहीं।)

७६. मृद...विवेक—मृद = मिट्टी (प्रकृति) रूपी कारण से कर्ता

(परमेश्वर) ने ही अनेक पदार्थ बनाए। यदि उस कर्ता को ही नहीं जाना तो इससे बडी विवेक-हीनता कौन सी हो सकती है।

७७. स्वरनकार.. सरसाय—कर्ता सुनार और कारण सोना स्पष्ट देखाई देते हैं। इनसे आभूषण रूपी सुखदायक कार्य उत्पन्न होते हैं जो गुण और शोभा को बढ़ाते हैं।

७८ जहा...अनूप—तुलसीदास जहां रहते हैं वहीं उस नित्य स्वरूप (सदा-विद्यमान) भगवान का बखान करते हैं जो अतीत तथा भविष्य की सीमाओं से हीन है तथा अत्यन्त पवित्र और अतुल्य है।

७९. कारज . होइ—तुलसीदास जी कहते हैं—इस बात को समझ लीजिए कि (सांसारिक) कार्यों मे लीन जीवात्मा ही सुख तथा दुःख भोगता है। और जब तक श्री गुरु (भगवान्) की दया नहीं होती तब तक दुःखदायक कर्म भी दूर नहीं होते।

*८०. अनुस्वार ..भूल—तुलसीदास जी कहते हैं कि जो परमात्मा अनुस्वार (ं) के समान सूक्ष्म भी है और अक्षर (अ, क आदि) के समान स्थूल भी उसे कभी मत भूलो। भाव यह है—तुलसीदास जी, ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों रूप मानते थे। उनके विचारानुसार निर्गुण परमात्मा उसी प्रकार सगुण भी हो सकता है जिस प्रकार सूक्ष्म-रूप अनुस्वार स्थूल रूप भी धारण कर लेता है। जैसे 'कंकण' का अनुस्वार (कङ्कन) मे ङ् का स्थूल रूप धारण कर लेता है।

८१, गुरु...विरोध—यह एक निश्चित सत्य है कि किसी न किसी को गुरु अवश्य बनाना चाहिए। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा करने से सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है, कार्य तथा अकार्य कर्म मन मे भास जाता है और द्विधा मिट जाती है।

८२. सत...कलेस—अस्थिर (स्थिर)= निश्चल। सज्जनों के संग का यह फल होता है कि मनुष्य के हृदय में तनिक भी संदेह नहीं रहता। उससे चित्त मे स्थिरता, पवित्रता औद सरलता आती है और इसलिए मनुष्य फिर दुःख नहीं उठाता।

८३ जौ...परसंग—यदि होनहार या भाग्य कुछ भी नहीं होता तो गुरु धारण करना और भली संगति व्यर्थ ही है। हे मनुष्य, गुरुओं की संगत से उक्त बुरे विचारों से बच जा।

८४. बिनु...नाहिं—तुलसीदास जी कहते हैं—जैसे सुन्दर वृक्ष काटे बिना उसकी छाया नष्ट नहीं हो सकती, वैसे ही (गुरुओं के) उपदेश के बिना कोई मनुष्य संशय-रहित नहीं हो सकता।

पृष्ठ १७. ८५ ब्राह्मण...मान—सुरुति (श्रुति)=वेद। अनय= अधर्म। श्रेष्ठ ब्राह्मण विद्या, नम्रता, वैदिक ज्ञान तथा परख बुद्धि का भंडार होता है। वह सन्मार्ग से प्रेम करने वाला, अन्याय से परे रहने वाला, दयालु तथा वेदों का श्रद्धालु होता है।

८६. विनय ..व्यभिचार—तुलसीदास जी कहते हैं—श्रेष्ठ क्षत्रिय वही है जिसके सिर पर नम्रता की छत्री है, जो पग-पग पर लोगों का भला करता है और जो सब दुराचारणों से रहित है।

८७. वैस्य...ऐन—ऐन (अयन)=स्थान। वैश्य वही अच्छा है जो नम्रता के मार्ग का अनुसरण करता है, कड़वे वचन नहीं बोलता, तथा सदा दया-युक्त, पवित्र और सरल रुचि रखता है। उसी को नित्य सुख का भडार मिलता है।

८८. सूद्र ..जान—तुलसीदास जी कहते हैं कि शूद्र वही श्रेष्ठ है जो कुमार्ग का त्यागने वाला, मन में ब्राह्मणों के चरणों का आदर करने वाला, शांत मन वाला, बुद्धिमान् तथा सब प्राणियों को समान समझने वाला हो।

८९, जथा...विनीति—तुलसीदास जी कहते हैं कि वही मनुष्य सदा सुखी होते हैं जो अपनी आय मे संतुष्ट रहते हैं, जो घर, मार्ग तथा जगल मे एक समान रहते हैं, और जो ऐश्वर्य पा कर भी नम्रता-युक्त होते हैं।

९० कहा ..प्रीति—तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक श्रीराम के सुखदायक चरणों से प्रेम नहीं होता तब तक संसार के सब व्यवहारों को देखने, सुनने और समझने से कुछ भी लाभ नहीं।

९१, चाह विचार—जब तक तृष्णा बनी रहती है तब तक उसकी पूर्ति के साधन भी आवश्यक प्रतीत होते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, विचार कर देखो उन साधनों को जुटाने मे अपार दुःख उठाने पड़ते हैं।

९२, चाह.. होइ—निहचलता (निश्चलता)=धीरज, सन्तोष।

इच्छा के रहते तो ब्रह्मा आदि सब देवता भी दु:खी रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहे मन की स्थिरता बड़ी दुर्लभ है, तो भी श्री राम की कृपा से मिल सकती है।

६३. अपनो...बिसाल—तुलसीदास जी कहते हैं कि जब मनुष्य को अपना भी काम भला-बुरा न लगे, तब समझना चाहिए कि अब उसकी बुद्धि अच्छी विकसित हो गई है। (भाव यह है कि मनुष्य बुद्धिमान उसी अवस्था मे कहा जा सकता है जब वह अपने कर्तव्यों का निष्काम भाव से पालन करे, उनकी अच्छाई-बुराई की चिंता से मुक्त हो जाए।)

६४ तुलसी खेद—तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक शरीर और प्राण पृथक्-पृथक् प्रतीत होते रहते है तब तक कर्मों से उत्पन्न होने वाले क्लेश दूर नहीं हो सकते। (भाव यह है कि देह और प्राणों का ध्यान छोड़ कर जब मनुष्य आत्मिक उन्नति से अग्रसर होता है तभी वह कर्म-जनित दु:खो से दूर अर्थात मुक्त होता है।)

६५. तुलसी...रीति—तुलसीदास जी कहते हैं —(हे मनुष्य!) वस्तुत: तू सच्चा है परन्तु झूठे संसार से प्रेम करके झूठा बन गया है। जब तू श्रीराम वाली रीति-नीति अपनाएगा तब तू फिर सच्चा बन जाएगा ['कूठा के स्थान पर 'झूठा' पाठ चाहिये]।

६६. अकुर सतूल—अनुहरत=अनुसरण करता है। सतूल= सविस्तार। तुलसीदास कहते हैं कि अङ्कुरों, नए कोमल पत्तों, बडे-बड़े पत्तों, तथा शाखाओं से युक्त सुन्दर वृक्ष ऋतु के आने पर ही खूब फूलता-फलता है। (भाव यह है कि कार्य उचित समय पर ही संपन्न होते हैं, धीरज त्यागना अनुचित है।)

६७. हानि. विधान—तुलसीदास जी कहते हैं कि घाटा, वृद्धि, जीत. हार; होनहार, विद्या, दान, प्रतिष्ठा खाना, पीना सुरुचि तथा कुरुचि—ये सब ईश्वरीय विधान प्रसिद्ध है अर्थात् विधाता द्वारा पहले से ही निश्चित रीति है।

६८. करता...पुरान—ईश्वर का ज्ञान, कर्ता, कारण, कर्म आदि (दार्शनिक परिभाषाओं) से परे है। चाहे वेद और पुराण क्यों न पढ़ लो तो भी प्रभु का ज्ञान;गुरु के उपदेश विना प्राप्त नहीं होता।

पृष्ठ १८, ९९. दुखिया . माहि—सठ (शठ)=खल। नीच मनुष्य सब प्रकार से दुखी है तो भी उसे इस बात की समझ नहीं पडती ठीक वैसे ही जैसे अज्ञान में फसी हुई मछली भोजन (बंसी में लगी हुई बोटी आदि) खाते समय उस मे छिपे हुए कांटे को नहीं देख सकती।

१००. बातहि...बुताय—बात (उचित शब्दों) से ही बात बन जाती है और बात (अनुचित शब्दों से) से बात विगड जाती हैं, जैसे दिया, वायु की सहायता से ही जलता है, और वायु के झोंके से ही वह बुझ जाता है। (जहां वायु न होगी वहां दीपक नहीं जलता)

१०१. बातहि...बौरात—बौरात=बावरा (पागल) बन जाता है। (उचित) बात से ही (आपस में) बन आती है अर्थात् प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाता है और (अनुचित) बात से बनी हुई भी विगड जाती है। (नम्र प्रार्थनामयी) बात से ही सुंदर वर-दान मिल जाता है और (मर्मभेदी) बात से ही मनुष्य पागल हो जाता है।

१०२. बात . घात—मनुष्य बात (वायु या वार्तालाप) से अत्यंत व्याकुल हो जाता है और बात (वायु और वार्तालाप) से ही प्रसन्न हो जाता है। भली बात से तो काम सुधर जाता हैं और (बुरी) बात से चौपट हो जाता है।

१०३ तुलसी...कुसलात—तुलसीदास जी कहते हैं कि बात को पूर्णतया न जानने से तत्संबंधी दूसरी प्रत्येक बात भी बिगड़ जाती है। बात को न जानने पर दुख होता है और जान लेने पर कुशल-क्षेम हो जाता है।

१०४ प्रेम . सुजान—अघ=पाप। तुलसीदास जी कहते हैं—विद्वानों का कथन है कि प्रेम और वैर, पुण्य और पाप, कीर्ति तथा अपकीर्ति और जीत तथा हार का मूल कारण बात ही होती है।

१०५ वंचक...तीन—निसेनी (निश्रेणी)=सीढ़ी। तुलसीदास जी कहते हैं कि ठगों की सी करतूतों में मग्न रहना, न्याय-विरुद्ध आचरण करना तथा जीवों को दुःख देने मे अत्यंत तत्पर रहना—ये तीनों जगत् में नरक तक पहुचने की बड़ी सीढ़ियां मानी गई है।

१०६ सदा...सोपान—सोपान=सीढ़ी। स्वर्ग तक पहुंचाने वाली सात सीढ़ियां निम्नलिखित हैं—ईश्वर की निरन्तर भक्ति, गुरु, सतजन,

ब्राह्मण, समदृष्टि से जीवों पर दया, सुखदायक सुनीति का आचरण तथा सच्चाई रूप व्रत।

१०७. जे नर व्यवहार—तुलसीदास जी विचार कर कहते हैं कि संसार के जिन लोगो मे गुणों और दोषो का मिश्रण है वे सूर्य के चढ़ने और डूबने के समान कभी सुखी और कभी दुखी होते रहते हैं।

१०८ सब ग्यान—राम ही सब प्रकार से पूर्ण हैं और सर्वोत्तम आश्रय हैं। उन जैसा दूसरा कोई नहीं है। उन्हीं की कृपा-दृष्टि से हृदय मे निर्भ्रान्त ज्ञान उत्पन्न होता है।

१०९ सो आधार—वही (श्रीराम) हमारे श्रेष्ठ मित्र और उत्तम सुखों के दाता हैं। वही माता, पिता, संकट-मोचक तथा बुरे दिनो मे सहायक हैं।

११० नाम खात—खात = सरोवर, कुड। (श्रीराम का) नाम जपने से सुख मिलता है और दुख भाग जाता है। नाम जपने से दुख दूर हो जाते हैं और सुख के सरोवर मिल जाते हैं।

१११. नाम पहिचान—(श्रीराम का) नाम जपने पर स्वर्ग-सुख मिलता है और (माया का) नाम जपना पापो की खान अर्थात् कारण है। तुलसीदास जी कहते हैं, इसलिए दिल मे सोच-विचार करके ही नाम की पहिचान करनी चाहिए।

११२. वार जान—सित-असित = शुक्ल तथा कृष्ण (पक्ष)। आस = दिशा। (सोम, मगल आदि) वार, दिन, रात, महीना, शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष, वर्ष, माप, सूर्य का उत्तरायण तथा दक्षिणायन मे जाना—इन सब समयो के भेद को पहिचानो (और उचित समय पर भली भांति कार्य करो)।

पृष्ठ १९, ११३ तब दास—योगी लोग संसार के गुरु तभी तक होते हैं जब तक वे इच्छाओं से मुक्त रहते हैं। जब उनके मन मे इच्छा जाग उठती है तब संसार उनका गुरु बन जाता है.तथा वे उसके सेवक बन जाते हैं। (मिलाओ कबीर का दोहा न० ८३)

११४ बरखत होइ—करखत = खींचते, सुखाने। तुलसीदास जी कहते हैं कि सूर्य जैसा राजा प्रजा को भाग्य से ही मिलता है। सूर्य को जल बरसाते देख सब लोग प्रसन्न होते हैं परंतु उसे जल खींचते समय

कोई नहीं देखता। इसी प्रकार श्रेष्ठ राजा क प्रजा-हित के काम करते देख प्रजाजन सब मुदित होते हैं परन्तु कर लेते समय कोई नहीं देखता।

११५ ऊँचहिं .कोइ—द्विजराज = चांद। विपत्ति तथा उत्तम संपत्ति महापुरुषों को ही प्राप्त होती है, नीचों को उपलब्ध नहीं होती। जैसे बढ़ता-घटता चांद ही है न कि तारों का समूह।

११६. उरग बार—उरग = सर्प। तुलसीदास जी कहते हैं:—सांप, घोडा, स्त्री, राजा, नीच मनुष्य तथा शस्त्र—इन्हे सदा देखते-भालते रहना चाहिए क्योंकि इन्हे बिगड़ते देर नहीं लगती।

(मिलाओ रहीम के आठवे दोहे से)

११७. दुरजन आगि—बुतावत = बुझा देता है। दुष्ट मनुष्य को अपने समान बनाकर अपने कल्याण के लिए कौन रख सकता है। (कोई भी नहीं)। देखिए, जिस आग की कृपा से पानी गरम होता है उसी को उलटा वह बुझा देता है।

११८ मंत्र आठ—मंत्र, तंत्र, सितार आदि बाजे, स्त्री, पुरुष, हथियार, धन तथा पाठ—ये आठों नित्य अभ्यास से बढ़ते तथा छोड देने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

११६. ग्यान संतोख—निरमोच्छ = मोक्ष (का विचार)। तुलसीदास जी कहते हैं कि विद्या, नम्रता, गुरु-पूजा, कोमल वाणी, मोक्ष का विचार, सदाचार, सच्चाई तथा संतोष का कभी त्याग न करना चाहिए।

१२०. दुरजन औंर—('दोर' के स्थान पर 'ग़ोर' पाठ भी मिलता है)। हृदय मे विचार करके देखिए तो दुष्ट मनुष्य सदा मुकुर (आईने) के समान प्रतीत होगा। मुँह के सामने दुष्ट का बर्ताव भला और पीठ फेरने पर बुरा होता है, जैसे शीशा सामने रहते तो सुंदर मुख दिखाता है परन्तु पीठ फेरने पर पीठ।

१२१ मित्र माहिं—जो सच्चा मित्र होता है वह अपने मित्र के दोषों को लोगो पर प्रकट नहीं करता, (अपने मन मे ही रखता है) जैसे कूआँ अपनी परछाई को अपने अंदर ही रखता है, बाहिर नहीं जाने देता।

१२२. दीरघ ..जोग—तुलसीदास जी कहते हैं कि पुराने बीमारों, निर्धनों, कड़वा बोलने वालों तथा लालची लोगों को शीघ्र ही छोड़ देना

चाहिए चाहे वे कितने ही प्यारे क्यों न हों।

१२३. तुलसी चेरि—तुलसीदास जी कहते हैं—कि दुष्टों की (ऊपर-ऊपर से) भली लगती हुई वाणी सुन कर ही नहीं बल्कि हृदय मे विचार करके ही ग्रहण करने योग्य होती हैं। (क्योंकि ऐसा न करने से ही) तुच्छ सी दासी मन्थरा, श्रीरामचन्द्र जी की राज्य-प्राप्त मे विघ्न-रूप बन गई।

१२४ भलो विखाद—गॉवर = गँवार। जो मनुष्य किसी बात को समझे बिना किसी की स्तुति या निंदा करने लगते हैं, उन्हें अपने मन में मूर्ख समझ कर, हमे उनकी बातो से प्रसन्न या दुखी न होना चाहिए।

१२५. खग काल—नीति के अनुसार चलने वाले श्रीरामचन्द्र ने तो जगल मे भी पक्षी-पशुओं (जटायु तथा वानरों) को अपना पवित्र मित्र बना लिया, परन्तु नीति-विरोधी बालि तथा रावण ने घर मे ही सुख-दायक संबधियों (सुग्रीव तथा बिभीषण) को अपनी मौत का कारण बना लिया। (बालि ने सुग्रीव से वैर किया और रावण ने विभीषण का अपमान, दोनों ने राम से मिलकर अपने २ भाइयों का नाश कर दिया)।

१२६. राम समाज—मुखर = बकवादी, वाचाल। दीन दयाल राम और लक्ष्मण तो जंगल में भी जीत गए किन्तु बकवादी बालि और रावण अपने घर मे रहते हुए भी संबंधियो समेत नष्ट हो गए।

पृष्ठ २०, १२७ तुलसी धोय—तुलसीदास जी कहते हैं कि जो लोग पराए यश को नष्ट कर स्वय यशस्वी बनना चाहते हैं उनके मुँह पर ऐसी स्याही (अपकीर्ति) लगेगी कि धो-धो कर मर जाएंगे तो भी न मिटेगी।

१२८ नीच .अकास—चग = पतंग। तुलसीदास जी देख-सुन कर अर्थात् निज अनुभव से कहते हैं कि नीच मनुष्य को पतग के समान समझना चाहिए। पतंग को खुली डोर दें तो वह नीचे गिर पडता है और डोर खींचे तो ऊपर जाता है। इसी प्रकार दुष्ट जन लालन से बिगड़ता और ताडन से सुधरता है।

१२६ कलह .धाम—झगड़े को छोटा न समझना चाहिए, उसका परिणाम बडा भयंकर होता है। देखिए, आग उठती तो दरिद्रों के छोटे झोपडों से हैं पर जल जाते हैं धनिकों के सामान भी और मकान भी।

१३०. तुलसी जानि—तुलसीदास जी कहते हैं कि मित्र तथा शत्रु की पहचान तीन प्रकार से होती है, पराधीन होने पर, पडोस में बसने पर तथा अभियोग (मुकदमा) आदि उपस्थित होने पर। (जो तीनो दशाओं में सहायक हो वह मित्र, जो न हो वह अमित्र)। [पञ्जाबी मे भी कहावत है कि 'राह पये या वाऽ पये' ही मनुष्य मित्र की परख होती है।]

१३१ दुरजन सरीर—सनाह (सनाह) = कवच। दुष्टों का मुख धनुष होता है जो दुर्वचन रूपी तीर बरसाता है। किंतु, वे तीर श्रेष्ठ जनों के दिल को नहीं छेद सकते क्योंकि उन्होने शरीर पर क्षमा रूपी कवच पहना हुआ होता है।

—:o:—

रहीम

अबदुलरहीम खानखानां अकबर के फुफेरे भाई और उसकी सभा के नवरत्नो मे से थे। ये अकबर के प्रधान सेनापति तथा मंत्री भी थे। इनका जन्म सवत् १६१० मे बैरमखा के घर हुआ। रहीम केवल अरबी .. सी के ही नहीं, अपितु हिंदी के अच्छे विद्वान् तथा कवि थे। वे संस्कृत से भी परिचित थे। रहीम बडे उदार, दानी तथा सज्जन व्यक्ति थे। धार्मिक पक्षपात इन्हे छू तक न गया था। इनके ग्रथो से विदित होता है कि हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों तथा प्राचीन कथाओं से इन का घनिष्ठ परिचय था।

इनकी कविता सरल तथा सासारिक अनुभवों से पूर्ण है। छोटे छोटे छंदो में ज्ञान और नीति के तत्त्व भरे पडे हैं। रहीम की कविता व्रजभाषा, अवधी भाषा तथा खडी बोली मे मिलती है।

इन के हिंदी काव्यग्रथ ये हैं—रहीम सतसई, नगर शोभा, बरवै नायिका भेद, बरवै, शृगार सोरठा, मदनाष्टक, रास पचाध्यायी, खेट कौतुकम्। 'रहिमन विलास' तथा 'रहीम रत्नावली' नाम से इन के दो उत्तम संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

इन्होंने संवत् १६८२ मे इहलोक लीला समाप्त की।

दोहों का सरलार्थ

पृष्ठ २२, १. अमर. .काहि—रहीम कहते हैं कि भगवान् उस अमर-बेल नामक लता का भी, जिसकी कि जड ही नहीं होती, पालन करता है, हम उस प्रभु को छोड कर और किस की खोज करें।

(टिप्पणी—अमरवेल एक पीली बेल होती है जो वृक्षों के ऊपर चढती है, वह अपना आहार भूमि से नही अपितु उस वृक्ष से लेती है जिस पर यह आश्रित रहती है। यह मूल-पत्र-हीन होती है)।

२. अनुचित चकोर—पचवत = हजम कर लेता है। रहीम कहते हैं कि छोटे लोग भी बडों के बल-बूते पर अच्छे-बुरे सभी काम वैसे ही कर डालते हैं जैसे चांद के साथ स्नेह होने के कारण चकोर अंगारे तक पचा जाता है।

(टिप्पणी—कवि-संप्रदाय मे यह बात प्रसिद्ध है कि चकोर अंगारे भी खा जाता है परन्तु उसकी चोंच-जीभ नहीं जलती। इसका कारण यही बताया जाता है कि चकोर चांद से इतनी शीतलता ग्रहण कर लेता है कि अंगारों की तपश का उस पर प्रभाव नहीं पडता। दोहे का भाव इस उक्ति से मिलता-जुलता है, "सइयाँ भए कोतवाल. अब डर काहे का"।)

३ अब राम—रहीम कहते हैं कि बड़ी कठिनाई आ पडी है क्योंकि दोनों ही बातें कठिन हैं। सच्चे मनुष्य का तो संसार साथी नहीं और झूठे को ईश्वर नहीं मिलता। (इच्छा तो दोनों से सम्बन्धबनाए रखने की है, परन्तु बात असंभव देख पडती है)।

४. अमीं बुलाइ—मरिवो = मरना। रहीम कहते हैं, जो मनुष्य अनादर-पूर्वक अमृत भी पिलाए, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। किंतु जो प्रेमपूर्वक निमंत्रण दे कर जहर खिला कर मार भी दे तो वह अच्छा है। (भाव यह है कि अपमानित जीवन की अपेक्षा सम्मानपूर्वक मर जाना अच्छा है)। (७८वें दोहे से मिलाइए।)

५. अमृत . फास—गांस = गांठ। रहीम कहते हैं कि अमृत जैसे (मधुर तथा शांतिदायक) वचनों मे क्रोध की गांठ वैसे ही बुरी लगती है जैसे कूज़ा मिसरी में स्वादहीन बांस की तीली।

६. होइ खजूर—रहीम कहते हैं, जिन वृक्षों की छाया भी पास न हो और फल भी अत्यंत ऊँचा हो, उन वृक्षो का बढ़ना ऐसे ही व्यर्थ है, जैसे ताड और खजूर के पेड का। (तात्पर्य यह है कि जो संपत्तिशाली लोग संतप्तों को मधुर वचनों से आश्वासन तथा धनादि से सहायता नहीं देता, उनकी समृद्धि निष्फल है)।

७. आप बबूर—रहीम कहते हैं—बबूल के पेड भी कैसे नीच होते है। ये स्वय—जड़ों, डालियो, पत्तों या फलों द्वारा तो किसी का भला नहीं करते, पर हा, औरो की चाल मे विघ्न अवश्य डाल देते हैं। (भाव यह है कि दुष्ट जन भी ऐसे ही होते हैं, उपकार तो कर नहीं सकते, अपकार को तैयार हो जाते हैं)।

८. उरग .बार—रहीम कहते हैं कि सांप, घोडा, स्त्री, राजा, नीच मनुष्य तथा शस्त्रास्त्र इन सब को सावधानी से रखना चाहिये क्योंकि इन्हें बिगड़ते देर नहीं लगती। (तुलसीदास जी के ११६ वे दोहे से मिलाइए)

९ ओछे कोई—रहीम कहते हैं—यदि साधारण जन असाधारण कार्य भी कर डाले तो भी उनकी महिमा नहीं मानी जाती। जैसे हनुमान ने भी पर्वत उठाया था परन्तु उसे (श्रीकृष्ण चन्द्र जी के समान) कोई भी गिरधर (पर्वत उठाने वाला) नहीं कहता।

१० अजन जाय—जिन नयनों से प्रभु के दर्शन हुए हैं, रहीम उन पर अनेक बार बलिहार जाते हैं। वे उनमे काजल लगाने से भी डरते हैं कि कहीं किरकरी होने से उन्हे पीड़ा न हो, फिर सुरमा लगाना तो दूर रहा (क्योकि वह तो खनिज द्रव्य का चूर्ण होने के कारण अधिक कष्ट प्रद हो सकता है।)

११ कदली दीन—स्वाति नक्षत्र में बरसी हुई बून्द सगत के प्रभाव से तीन रूप धारण कर लेती है। केले के पत्ते पर पड कर मोती की मानिंद चमकती है, सीपी में पड कर मोती ही बन जाती है और सांप के मुँह में पड कर विष बन जाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी सगति के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट बन जाता है। (कुछ लोगों का कहना है कि वह बून्द केले पर पड कर काफ़ूर बन जाती है पर यह बात अशुद्ध है)।

१२. करम .भोर—रहीम कहते हैं, देखिए, कोई मंद-भाग्य चोर

किसी धनी के घर में घुस गया। वह वहां से प्राप्त हो सकने वाले भारी लाभ को सोचता ही रहा और सवेरा हो गया। (भाव यह है कि भाग्य खोटा हो तो पास पड़ी सम्पदा भी नही मिलती)।

१३ कहि खात—रहीम कहते हैं कि सम्पत्ति आकर के नष्ट हो जाए तो धनियों की प्रतिष्ठा मे बहुत कमी आ जाती है। परन्तु उनकी मान-मर्यादा मे कुछ भी अन्तर नही पड़ता जो कि पहले ही घास बेचकर पेट पालते हैं। (चार पैसे आए तो क्या, गए तो क्या !)

१४ कहि मीत—रहीम कहते हैं कि जब मनुष्य के पास पैसा होता है तो अनेक लोग अनेक उपायो से आकर के उसके सगे बन जाते हैं। परन्तु, (सच तो यह है) कि जो संकट-रूपी कसौटी पर कसे जाने के बाद पूरे उतरते हैं, वही सच्चे मित्र होते हैं। (शेष तो पैसे के यार होते हैं)।

पृष्ठ २३, १५ कहु अग—केर=केले का वृक्ष। रहीम कहते हैं, कहिए बेरी और केले की मैत्री कैसे टिक सकती है ? बेरी तो (पवन के झोके से) मस्ती मे झूमती है और उससे बिचारे केले की पत्र आदि छिल जाते हैं। (भाव यह है कि सहज वैरियो की मित्रता असम्भव है। कबीर साहब के ५६वें दोहे से मिलाइये)।

१६. कहु पछिताइ—बिहाई=बीत । रहीम कहते हैं—कहिए, कितनी (अधिक) आयु बीत गई है और कितनी (थोड़ी) रह गई है। मनुष्य प्रपञ्च, समत्व और अज्ञान मे पड़कर अन्त में पछताता हुआ ससार से चल बसता है (इसलिये अब भी भगवद्-भक्ति कर लेनी चाहिए)।

१७. काम ढेड—रहीम कहते हैं कि जो बाज, पख टूट जाने के कारण, कोई काम नहीं कर सकता और इसीलिये जो बिक भी नहीं सकता, उसे भी (उदार) स्वामी चारा देता रहता है। (इसी प्रकार दीन अपाहजों को भी भगवान् भोजन भेजते ही रहते हैं)।

१८ काह अनाज—पामरी=दोपट्टा, उपरना। रहीम कहते हैं—सरदी से बचना उद्देश्य है, कम्बल हुआ तो क्या और चादर हुई तो क्या। इसी प्रकार भूख मिटाना अभिप्रेत है, अन्न चाहे कैसा ही क्यो न हो। (भाव यह है कि सतोषी व्यक्ति सुखी रहता है)।

१६. रहिमन. कपाल—सरग-पताल=उलटी सीधी (खरी खोटी)

एक याचक की मदद करने मे असमर्थ थे, तब सिफारिश मे इस दोहे को लिख कर याचक के हाथ रीवॉ-नरेश के यहा भेजा था। राजा ने उस व्यक्ति को एक लाख रुपया दे दिया।)

३१ जे गरीब—बापुरो=बिचारा। रहीम कहते हैं—बडे लोग वही होते हैं जो निर्धनों से प्रेम करते हैं। नही तो क्या बेचारा सुदामा श्रीकृष्ण महाराज की मित्रता का पात्र बनने योग्य था!

३२ जेहि ओर—रहीम जी कहते हैं—जिसने निज मन को समझदार चकोर बना लिया है, उसका मन रात-दिन श्रीकृष्ण रूपी चाद की ओर ही देखता रहता है।

३३ जेहिं जात—जिस अंचल ने (आरभ में) दीपक को पवन से बचाया, उसने (अंत मे) उसे बुझा भी दिया। (दीप को पल्ला मार कर ही बुझाया जाता है।) रहीम कहते हैं कि बुरे दिनों मे सखा भी वैरी बन जाते हैं।

३४ जैसी मेह—रहीम कहते हैं—इस (पार्थिव) शरीर पर जो भी सुख-दुख आ बने, उसे (सहर्ष) सहना चाहिए। देखिए, सरदी, गरमी और वर्षा पृथिवी पर ही पडती है (और वह उसे प्रसन्नतापूर्वक सह लेती है। शरीर भी तो उसी पृथिवी से बना है)।

३५ जो जाइ—रहीम जी कहते हैं—नीच मनुष्य जितना बढता है, उतना ही गर्वीला होता है। जैसे (शतरज के खेल मे) जो प्यादा (गोटी का नाम) फ़रजी (वजीर गोटी का नाम) बन जाता है, वह टेढ़ी चाल चलने लग पडता है।

(टिप्पणी—शतरज मे प्यादा केवल एक ही घर सीधी चाल से चलता है पर जब वही वजीर बन जाता है तो हर तरफ मार करने लगता है।)

३६ जो खात—विषया=विषयो का स्वाद। वमन=कै। सत-जन जिस वासना का त्याग कर देते हैं, अज्ञानी उसी से लिपटते फिरते हैं। जैसे मनुष्य जिस पदार्थ को कै कर देता है, कुत्ते उसी को स्वादले-ले कर खा जाते हैं।

३७ जो ..चोट—रहीम कहते हैं—जैसी दशा दीपक की होती है (वैसी ही मनुष्यो की भी)। स्त्री जिस वस्त्र की ओट से (आरंभ में)

दीपक की रक्षा करती है, उसी वस्त्र के अञ्चल से अन्त मे उसे बुझा भी देती है। (इसी प्रकार विपत्ति-काल मे मनुष्य के मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। (३३वे दोहे से मिलाए)।

३८. जो भुजग—रहीम कहते हैं—जिनका स्वभाव अच्छा होता है, उनका कुसंगति कुछ भी बिगाड नही सकती। देखिए चंदन के पेड़ पर साप लिपटे रहते हैं तो भी चंदन विषैला नहीं हो जाता।

३९. जो नाहिं—रहीम कहते हैं कि बड़ो को छोटा कह देने से वे छोटे नहीं हो जाते। जैसे, श्रीकृष्ण महाराज को गिरिधर के स्थान पर मुरलीधर भी कह दे तो भी वे बुरा नही मनाते।

(टिप्पणी—'गिरिधर' शब्द महत्तावाचक है क्योंकि यह भारी पर्वत उठाने की ओर संकेत करता है। 'मुरलीधर' अपेक्षा-कृत लघुता-वाचक है क्योंकि हलकी सी मुरली की ओर सकेत करता है।)

४०. जो रहीम—रहीम कहते हैं कि यदि धन पुरुषार्थ से मिलने वाला पदार्थ होता तो भीमसेन पेट के लिए राजा विराट के घर रसोइया न बनता। (रहीम इस दोहे मे पुरुषार्थ की अपेक्षा भाग्य की ही सराहना करते है)।

४१ जो होइ—बारे=(१) जलाने पर (२) बचपन मे। बढ़े= (१) बुझने पर (२) बड़ा होने पर। रहीम कहते हैं कि घर के कुपुत्र की अवस्था दीपक के समान होती है। जैसे दीपक बारे अर्थात् जलने पर उजाला हो जाता है और बढ़े अर्थात् बुझने पर अधेरा हो जाता है, वैसे ही कुपुत्र बारे अर्थात् बालपन मे प्रकाश कर देता है (मन को अच्छा लगता है) परन्तु बढे अर्थात् बडा होने पर अन्धेरा कर देता है (कुल को कलङ्कित कर देता है)।

४२. जो साथ—को धौं=कौन भला, न जाने कौन। रहीम कहते हैं कि यदि कहीं भगवान द्वारा किए जाने वाले काम मनुष्य कर सकता तो न जाने कौन किसे अपने समान बडा मानता।

(भाव यह है कि अभी मनुष्य की शक्तियाँ अत्यल्प हैं तो भी वह घमंड में चूर रहता है यदि कहीं यह ईश्वरीय काम भी स्वयं कर पाता तब तो पृथिवी पर पॉव ही न रखता)।

पृष्ठ २५, ४३ जो बाढि—नखत (नक्षत्र)=तारे। रहीम कहते हैं

(श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की) जिस धूलि से शाप से शिला बनी हुई अहल्या फिर मुक्त हो गई थी उसी को यह भी ढूँढता है ताकि उसे छूकर मुक्त हो जाए।

५६. निज हाथ—सुधि = फल, (भावी बात)। रहीम कहते हैं—कर्म करना अपने अधीन हैं, फल मिलना होनहार के, जैसे पांसे फैंकना अपने वस में होता है, और दांव का पडना न पडना भाग्य के हाथ में।

६० नैन लौन—रहीम कहते हे—(प्रेमपात्र के) नेत्र सलोने (नमकीन, सुन्दर) हैं और ओठ मीठे (माधुर्य पूर्ण)। बताइए, कौन किससे कम हैं ? कोई भी नही, दोनों समान हैं। नमकीन वस्तु से जी ऊब जाए तो मीठी अच्छी लगती है और मीठा से जी ऊब जाए तो नमकीन। (भाव यह है कि नायक कभी सुनयन दर्शन का और कभी अधर-रस-पान का आनन्द लेता है, ऊबता नहीं)।

६१ पात कौन—रहीम कहते हैं—उस बुद्धि से कौन सा काम बन पड़ेगा जो (जड में जल न डलवा कर) एक-एक पत्ते को सिंचवाती है तथा (पीठी मे नमक न डलवा कर) एक-एक बड़ी मे नमक डलवाती है ? अर्थात् कोई भी नहीं।

६२ पाच काज—रहीम कहते हैं—विपत्ति पडने पर बडों को भी छोटे काम करने पड़े हैं। (अज्ञात-वास के दिनों मे) पांचों पाडवों ने (राजा विराट के यहा) पाच भेस धारण किए और (बनवास के बाद) राजा नल भी (एक दूसरे राजा के सारथी बने)।

६३ रहिमन पीठि—घरिया—कूए का लोटा। रहीम कहते हैं—क्षुद्र मनुष्य की दृष्टि रहट के लोटे के समान होती है। जैसे वह लोटा ख़ाली होने पर (कूए-जल को) मुँह दिखाता है और भर जाने पर पीठ, वैसे ही क्षुद्र-जन भी काम पडने पर तो सामने आ जाता है और काम बन जाने के बाद दिखाई नही देता।

६४. पूरुष...साथ—द्योहरा = देवघर, भूतों का मदिर। रहीम कहते हैं–नर तो भूत-प्रेतो के मदिर में पूजा करें और नारियां श्रीरामचन्द्र की, उन नर-नारियों का पारस्परिक प्रेम वैसे ही नहीं हो सकता जैसे भैंस और बैल का।

६५. बड़े...पहिचानि—हुती = थी। रहीम कहते हैं—दीनों के दुःख

सुनकर श्रेष्ठों के दिल दया से भर जाते हैं। यदि यह बात न होती तो कहिए, विष्णु जी का (ग्रह-ग्रस्त) हाथी से कब का परिचय था जो उन्होंने इसे संकट से छुडा लिया।

(गजेन्द्र मोक्ष की कथा संक्षेपतः यों है। एक हाथी हथिनियों के साथ स्वच्छन्द विहार किया करता था, एक बार जब वह एक जलाशय में जल पीने को घुसा तो घडयाल ने उसका पॉव पकड़ कर खींचा। जल में हाथी बेबस हो गया। हथिनियां तट पर चुपचाप खड़ी रहीं, सहायता न कर सकीं। तब हाथी ने मन मे विष्णु का स्मरण किया और सूंड से कमल तोड़ कर उनके अर्पण किया। तब विष्णु जी ने उस पर दया कर के घड़याल से उस भक्त हाथी को छुड़ाया)।

६६ वडे मोल—टका = रुपया। रहीम कहते हैं—बड़े लोग आत्म-श्लाघा नहीं करते, न ही वे बड़ी-बड़ी डींगे मारते हैं। जैसे हीरे अपने मुँह से कभी नहीं कहते कि हमारा मूल्य लाख-लाख रुपया है।

६७ वसि परोस—रहीम कहते हैं—खेद है कि लोग बुरी संगत मे रह कर भी अपना भला चाहते हैं। (यह नहीं हो सकता, देखिए) रावण के पास रहने के कारण सागर की भी महिमा घट गई थी। (उसे भी वांधा गया था)।

६८ विगरी होइ—रहीम कहते हैं—चाहे लाख यत्न क्यों न करो, बिगड़ा हुआ मामला नहीं सुधरता। जब दूध फट जाता है तब बिलोने से मक्खन नहीं निकल सकता।

६९ विपति भोर—रहीम जी कहते हैं—जैसे प्रभात होते ही आकाश के (असंख्य) तारे छिप जाते हैं वैसे ही विपत्ति के समय पर लाखों-करोडों की संपदा नष्ट हो जाती है।

७०. भजौं . जान—(तीसरे चरण मे 'ह्वै' के स्थान पर 'है' पाठ भी मिलता है पाठ परिवर्तन के बिना अर्थ —

रहीम पूछते हैं—मै भजन करूँ तो किस का और त्याग करूँ तो किस का? (वे तो सदा अंग-संग ही विद्यमान हैं, उनकी प्राप्ति और त्याग का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता)। इस लिए स्वयमेव उत्तर देते हैं कि हे रहीम, इस सेवा और त्याग के विचार से पृथक् होकर तू केवल उस (भगवान्) के स्वरूप को समझ ले।

पृथक् कर दिया जाता है।

८०. यह...होड़—रहीम कहते हैं कि शत्रुता, प्रेम, अभ्यास तथा कीर्ति—ये चारों वस्तुए जगत् मे जन्म के समय साथ कोई भी नहीं लाता। ये सब धीरे-धीरे ही प्राप्त होती हैं।

८१. रहिमन...विपरीति—रहीम कहते हैं कि ओछे मनुष्यों से न प्रेम करना चाहिए न शत्रुता। देखिए कुत्ता प्रेम से चाटे तो भी और वैर से काटे तो भी अनिष्ट ही करता है।

८२. यद्यपि मराल—अवनि = भूमि। मनसा = (प्रसन्न) मन से। रहीम कहते हैं कि पृथिवी पर जल-पूर्ण सरोवर और तालाव तो बहुतेरे हैं परन्तु हंस केवल मानसरोवर मे ही आनदपूर्वक विहार करता है।

८३ ये नाहिं—मधुकरी = भिक्षा का भोजन। ये रहीम तो स्वयं प्रत्येक द्वार पर जाते हैं तथा भीख मांग कर खाते हैं, इस लिए, हे मित्रो, अब मुझ से मित्रता छोड़ दो, रहीम की दशा अब पहले की सी नहीं है।

(टिप्पणी—जब जहाँगीर ने रहीम का पद छीन लिया था तब उनकी दशा शोचनीय हो गई थी। यह दोहा भी उन्हीं बुरे दिनों मे लिखा गया था।)

८४ यों होत—रहीम कहते हैं कि अपने सगे-सबंधियों को समृद्ध होते देख कर मनुष्य वैसे ही सुखी होता है जैसे बडी-बड़ी (सुंदर) आंखों को देख कर आंखें प्रसन्न होती हैं।

पृष्ठ २८, ८५. यो भाँति—उवत = उदय होता है। रहीम कहते हैं कि महापुरुष सुख दुख को ऐसे ही शाति से सह लेते हैं जैसे चन्द्रमा चढते और डूबते समय समान-वर्ण ही रहता है।

८६. यों...रंग—रहीम कहते हैं कि परोपकारी मनुष्य को सुख ऐसे ही (सहज में) मिल जाता है जैसे मेंहदी बाटने वाले को रंग अपने आप लग जाता है।

८७. रहिमन विसाति—बिसात = शक्ति। रहीम कहते हैं कि केवल आटा लगने से ही तवला दिन-रात बजता रहता है, फिर जो घी-शक्कर खाते हैं उनकी शक्ति का तो कहना ही क्या? (वे क्यों न दनदनाते फिरेंगे)।

८८ रहिमन ..समेत—रहीम कहते हैं—मन में यह समझ ऐजलों

चिता की अपेक्षा चिंता अधिक हानिकारक होती है। क्योंकि चिता तो को ही जलाती है परन्तु चिंता जीते-जागते को ही दग्ध कर देती है।

८९ रहिमन चाम—रहीम कहते हैं कि छोटे मनुष्य बड़े काम कर सकते, जैसे—सौ चूहों के चमड़े से भी नक्कारा नहीं मढ़ा जा ता। [बिहारी के दोहा नं० १५ से मिलाइये।]

९० रहिमन .विशान—रहीम कहते हैं कि विद्या, बुद्धि, धर्म, यश दान से रहित मनुष्य का जन्म भूमि पर व्यर्थ ही है। उसे तो पूँछ सींग से हीन पशु ही समझिए।

९१ रहिमन दीठि—रहीम पेट से कहते हैं, अरे तू पीठ ही क्यों न गया ? तू भूखा होने पर मनुष्य की प्रतिष्ठा नष्ट कर देता है और होने पर उसे अभिमानी बना देता हैं। (पीठ में यह दुर्गुण नहीं होते)।

९२ रहिमन तासीर—फरजी = वज़ीर। मीर = शाह। रहीम कहते कि (शतरञ्ज में) प्यादा सीधी चाल चलने से वजीर बन जाता है, तु वज़ीर शाह नहीं बन सकता क्योंकि वह टेढ़ी चाल चलता है। व यह है कि सरलता से उन्नति होती है और कुटिलता से नहीं)।

९३ रहिमन ..सेस—रहीम कहते हैं कि महापुरुषों में रत्ती-मात्र अभिमान नहीं होता। देखिए सर्पराज संसार भर का भार धारण हैं तो भी शेष (बचा-खुचा) कहलाता है।

९४ रहिमन . ताहि—रहीम कहते हैं कि नीचों के साथ रहने से कलंक नहीं लग जाता ! देखिए शराब बेचने वाले के हाथ में यदि भी हो तो भी सब उसे शराब ही समझते हैं।

९५ रहिमन .करीर—विटप = वृक्ष। रहीम कहते हैं कि अब वे छाया वाले वृक्ष दिखाई नहीं देते, अब तो बागों में थूहड़, कंजा और के पेड़ ही दिखाई देते हैं। (भाव यह है कि दीनों को आश्रय देने उदार लोगों का अभाव हो गया है)।

९६ रहिमन कोय—गोय = छिपा कर। रहीम कहते हैं कि अपने का दुःख दिल में ही छिपा कर रखना चाहिए, क्योंकि लोग सुन कर ही करेंगे, कोई बाँट तो लेगा नहीं।

९७ रहिमन...बेर—नीके = अच्छे। रहीम कहते हैं कि जब ही उलटे आए हुए हों तो (धीरज धर कर) चुप-चाप बैठ जाना

११२. रहिमन चोट—अगोट = मिलाप, सहारा। रहीम क
कि इस ससार में सब सुख पारस्परिक मेल से ही मिलते हैं। देखिए, (
चौपड के खेल मे) गोटों का जोडा पृथक्-पृथक् हो जाता है तब द
मारी जाती हैं।

[व्याख्या—चौपड के खेल मे जब तक दो गोटें किसी घर में
रहती हैं तब तक वह नहीं मरतीं। परन्तु, जब पृथक्-पृथक् चलती हैं
नष्ट हो सकती हैं, इसी प्रकार जगत् मे भी मेल या प्रेमसे सुख मिलते

पृष्ठ ३०, ११३ रहिमन देस—नै = झुक कर। रहीम कहते हैं
क्रोध छोड दो, पहिनावा सादा रखो, वाणी मीठी बोलो, व्यवहार नम्र र
ऐसे जीवन से सब स्थान तुम्हारे लिए स्वदेश के समान सुखकर हो जाए

११४. रहिमन अनखाइ—अनखाइ = क्रुद्ध या रुष्ट हो। अरे
रहीम ने तो इस पेट को बहुत समझा कर कहा कि यदि तू बिना
रह सके तो क्यों कोई (हम पर) रुष्ट हो। (परन्तु यह मानता नहीं
(भाव यह है कि ससार की नाराजगी इसीलिये सहनी पड़ती है कि
पूर्ति आवश्यक है। यदि यह कुछ न मागे, तो हम भी किसी से कु
मागें और किसी का क्रोध न सहें)।

—0—

बिहारी

कविवर बिहारीलाल जी का जन्म संवत् १६६० मे हुआ
स्वर्गवास लगभग १७२० मे। इनका जन्म ग्वालियर रियासत के अन
बसुआ गोविंदपुर नामक स्थान मे हुआ। इनके पिता श्री केशवराए
माथुर ब्राह्मण (चतुर्वेदी या चौबे) थे। इनका बाल्यकाल बुन्देलख
बीता और यौवन मथुरा मे, निज ससुराल के यहां। इन्होने निज सव
लिखा भी है:—

जन्म ग्वालियर जानिये, खड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल ॥

मथुरा से ये जयपुर मे चले गए और वहां के महाराजा जयसि
आश्रय में रहने लगे। महाराज जयसिंह अपनी नवेली दुलहन के प्रेम मे

मग्न थे कि राज-काज से बेसुध हो गए। तब बिहारीलाल के निम्नलिखित दोहे से सचेत हो कर्तव्य-परायण बन गए:—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ, आगै कौन हवाल॥

महाराज की ओर से इन्हे प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशरफी पुरस्कार-रूप मे प्राप्त होती थी। ये सतोषी, श्रीकृष्ण-भक्त तथा सौम्य-स्वभाव व्यक्ति थे।

ये अपने एक ही ग्रंथ—'विहारी सतसई', के कारण हिन्दी-साहित्य संसार मे अमर हो गए। यह सतसई श्रृंगार-रस का अद्वितीय ग्रंथ है। इसमे शृगार-संबंधी सभी हावों, भावो, अनुभावो, विभावों आदि का उदाहरण रूप से सुदर वर्णन है। इसमे अभिधा, लक्षणा तथा व्यजना के मनोहर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। नायिकाओं के भेद तथा नख-सिख का वर्णन भी वडी उत्तमता से हुआ है। सौन्दर्य, प्रेम, संयोग, विरह आदि श्रृंगार-संबधी विषयों के वर्णन मे विहारी अद्वितीय हैं। सत्य ही कहा जाता है कि चंद जैसे छप्पय, तुलसीदास जैसी चौपाइयां, पद्माकर जैसे कवित्त, गिरिधरराय जैसी कुंडलियाँ तथा विहारी जैसे दोहे हिन्दी मे किसी और ने नही लिखे। बिहारी की भाषा परिष्कृत ब्रजभाषा है। उसमे बुन्देलखंडी शब्दो का भी यत्र-तत्र व्यवहार हुआ है। अलंकार प्रयोग, भाव-सौकुमार्य, अर्थगांभीर्य, प्रकृतिचित्रण आदि मे यह बडे सिद्धहस्त थे। प्रस्तुत संग्रह मे प्राय: ऋतु वर्णन, भक्ति तथा नीति के दोहे ही सकलित हैं।

—0—

दोहों के सरलार्थ

पृष्ठ ३२, दोहा १ मेरी होई—झाँई=(१) आभा, परछाई (२) झाँकी, झलक (३) ध्यान। परैं=(१) शरीर पर पडने से (२) दृष्टि मे पड़ने से (३) मन मे पडने से। स्यामु (श्याम)=(१) श्यामवर्ण श्रीकृष्ण (२) श्रीकृष्णचन्द्र (३) पाप-दु.खादि कृष्ण-वर्ण पदार्थ। हरितदुति (हरित-द्युति)=(१) हरे रंग वाला (२) हराभरा, प्रसन्नवदन (३) हृतद्युति, प्रभाशून्य।

(यह दोहा 'बिहारी सतसई' का मंगलाचरणात्मक प्रथम दोहा है।

अस्थायी सम्मान पाकर पृथ्वी पर पाव नहीं रखता ।)

८. सामा...हाथ—सामा = सामान, सामग्री । सयान = युद्ध कुशलता । यद्यपि सेना की तथा युद्ध कौशल की सभी सामग्री शाहजहाँ के साथ विद्यमान है तो भी हे बलवान् भुजाओ वाले जयशाहजी, (शाहजहाँ की) जीत तुम्हारे ही भरोसे पर होगी । (जयशाह शाहजहाँ के सहायकों मे से थे) ।

❀ ९. यों गुवाल—भुवाल = भूपाल । हे महाराज जयसिंह, तुम बलख से शाही सेना को ऐसे निकाल लाए जैसे श्रीकृष्ण चन्द्र ने अघ नामक राक्षस के पेट मे पड़ी हुई गौओं तथा ग्वालों को निकाल लिया था।

बलख का वृत्तान्त—शाहजहाँ के शासन-काल मे राजकुमार औरंगजेब ने राजा जयशाह को साथ लेकर बलख पर आक्रमण किया था। उसमे ये सफल न हुए । उलटी शाही सेना कठिनाई मे फँस गई । तब जयशाह ही अपनी चतुराई से उसे सुरक्षित वापिस ले आए थे ।

(अघासुर की कथा—श्रीमद्भागवत के अनुसार पूतना तथा बकासुर के भाई अघासुर का शरीर चार कोस का था । उसका खुला हुआ मुख गिरि-कन्दरा के समान था । उसकी जीभ को सडक समझ अनेक गौएँ तथा गोप गलती से उसके पेट मे जा पहुँचे । श्रीकृष्ण भी उन्हे बचाने को उसके मुँह मे घुस गए । राक्षस ने उन्हे दातों से पीसना चाहा परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी काया इतनी बढ़ाई कि वह दम घुटने से मर गया । तब श्रीकृष्ण ने अपनी अमृतवर्षी दृष्टि से सब गौ-गोपो को जिला कर बाहिर निकाल लिया ।

१० कोउ...हार—चाहे कोई करोड (रुपया) इकट्ठा कर ले चाहे दस करोड (मुझे इसकी रत्ती भी चिता नहीं) । मेरा धन तो वही श्रीकृष्ण हैं जो सदा ही कष्टों का नाश करने वाले हैं ।)

११ प्रगट राइ—द्विज राजकुल = (१) चन्द्रवश (२) ब्राह्मणवश । (इस दोहे में कवि ने स्वपिता केशवराय का वर्णन केशव (श्रीकृष्ण) के रूप मे किया है) ।

अर्थ —हे पिता (केशवराय), जैसे श्रीकृष्ण ने द्विजराज-कुल (चन्द्रवश) में जन्म लिया था वैसे ही आपने भी द्विजराजकुल (ब्राह्मण वंश) मे । जैसे वे स्वेच्छा से भू-जत्रि म मे आ बसे थे, वैसे ही आप

भी। इसलिए मेरे लिए तो आप ही श्रीकृष्ण हैं। मेरे सब कष्टों को आप ही नष्ट कीजिए।

१२ मकराकृति...निसान—मकराकृति = मगरमच्छ के आकार वाले कुण्डल। हियधर = हृदय-देश। समरु (स्मर) = कामदेव। निसान = झण्डा। श्रीकृष्णचन्द्र के कानों में मगरमच्छ के आकार के कुंडल ऐसी शोभा देते हैं मानो कामदेव ने उनके हृदय-रूपी देश पर अधिकार कर लिया हो और उसके झण्डे ड्योढी पर फहरा रहे हों।

[व्याख्या—इस दोहे में सखी नायिका को यह बता रही है कि उसके रूप-सौन्दर्य का श्रीकृष्ण के मन पर क्या प्रभाव पडा है। राजा लोग किसी के देश को जीत कर, उसके महल पर अधिकार करके, उसकी ड्योढी पर, स्व-प्रभुत्व सूचक झण्डे गाड देते हैं। इसी प्रकार यहां भी कामदेव रूपी राजा ने श्रीकृष्ण के हृदय देश पर अधिकार कर लिया और उसके मगरमच्छ के चिह्न वाले झण्डे (कुण्डलों के रूप में) उनकी कान-रूपी ड्योढी पर फहरा रहे हैं। (भाव यह है कि श्रीकृष्ण नायिका पर पूर्णतया अनुरक्त हैं)।]

१३. मरतु . बेर—बाइसु (वायस) = कव्वा। समय का फेर देखिए। (गुणी) तोता तो पिंजरे में बंद है और प्यासा मर रहा है परन्तु (निर्गुण) कव्वे श्राद्ध-बलि (खीर-पूरी आदि) खाने के लिए आदर पूर्वक बुलाए जा रहे हैं।

(यह अन्योक्ति तब फबती है जब दिनों के फेर से गुणी तो भूखे मर रहे हों और गुण-हीन चैन कर रहे हों)।

१४. या होइ—स्याम = (१) काला (२) श्रीकृष्ण। उज्जल = (१) सफेद (२) निष्पाप। (मेरे) इस प्रेमपूर्ण चित्त की चाल समझ नहीं आती। जितना ही यह श्याम रंग में डूबता जाता है उतना ही सफेद होता जाता है। वस्तुत. तात्पर्य यह है कि जितना ही श्याम (श्रीकृष्ण) के रंग में रंगता जाता है उतना ही निर्मल या निष्पाप होता जाता है।

पृष्ठ ३३, दोहा १५ कैसें चाम—छोटे मनुष्य बडे मनुष्यों के काम नहीं कर सकते। क्या कहीं चूहे की चमडी से भी नक्कारा मढा जा सकता है? (कभी नहीं)। [रहीम के दोहा सं० ८६ से मिलाइये।]

१६. रुक्यौ जातु—सांकरैं = संकीर्ण, तंग। झाँकि = अडी

तो वहां उपस्थित हैं ही, उनमे अनुराग के मिलने मे सरस्वती भी मिल जाती है। इन तीनों नदियों के मिलने मे कुंजों के कदम-कदम पर प्रयाग प्रकट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि श्रीराधा और कृष्ण के ध्यान में अनुराग करने से ब्रज के कुंजों के प्रति पग पर प्रयागराज का फल प्राप्त होती है अतः तीर्थाटन का श्रम उठाना व्यर्थ है।)

२४. समै ..काल—करुनाकरौ=दयालु । कपूत (कु+पूत)= अपवित्र, पापी। समय के बदलने पर स्वभाव मे भी अन्तर आ जाता है, सब अपनी पुरानी रीति त्याग देते हैं। देखिये इस निन्दित कलियुग में दयानिधान भगवान् भी निर्दय बन गए हैं। (इसीलिये हमारी पुकार नहीं सुनते, जैसे कि और युगो मे सुना करते थे।)

२५. नाचि ..किसोर—पावस (प्रावृष)=वर्षा ऋतु। नन्दित करी= आनन्दित किया है। (सखी नायिका को श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये वन मे जाने की प्रेरणा करती हुई कहती है) वर्षा ऋतु के बिना ही वन में मोर एकाएक नाच उठे हैं। इसलिए मेरा विचार है, श्रीकृष्ण चन्द्र ने अपने आगमन से इस दिशा को आह्लादित कर दिया है। (मोरो ने उन्हें मेघ समझ कर नाचना आरम्भ कर दिया है)।

२६. संगति ..सुगन्ध—दुर्बुद्धि के फेर में फंसे हुए लोग सत्सगति से भी सुबुद्धि नहीं पाते। देखिए, हींग को चाहे काफूर में मिला कर भी रखें तो भी वह सुगन्धित नहीं होती।

२७. बडे ..हाथ—गरुवे=गुरु, धीर, गम्भीर । बदिहौं=बड़प्पन मानूँगी। हे गोपी वल्लभ, आप अपने आप ही बड़े धीर-गम्भीर कहलवाने लग पड़े हो। मैं तो तभी आप को वैसा मानूँगी जब आप (उस नायिका के सुन्दर) हाथों को देख कर निज मन को हाथ से न जाने देंगे। नायिका की सखी ने श्रीकृष्ण के सामने नायिका के सुन्दर हाथो का वर्णन किया है। मुहावरे का प्रयोग भी स्तुत्य हैं)।

२८. मन ..धारि—हे मनुष्य, (यदि किसी के मोह मे फँसना ही है तो) मनमोहन (श्रीकृष्ण) से मोह कर, (यदि नेत्र तृप्त करने हों तो) (श्रीकृष्ण) के दर्शन कर, (यदि आनन्द मनाना हो तो) कुंजविहारी (श्रीकृष्ण) के साथ मना और (यदि किसी को हृदय में बसाना हो तो) गिरधारी (श्रीकृष्ण) को बसा।

पृष्ठ ३४. दोहा, २६. गिरि . पगारु—पगारु = पैदल पार करने योग्य छिछला। जहा (जिस प्रेम-रूपी सागर मे) रसिकों (भगवद्भक्तों अथवा प्रेमियों) के पर्वत से भी ऊँचे हज़ारों मन डूब गए (परन्तु उसकी थाह तक न पहुँच पाए), वही प्रेम-रूपी समुद्र पशुवृत्ति वाले मनुष्यो के लिए सहज ही पार करने योग्य है।

३०. अपने किसोरु—बादि = व्यर्थ। (अनेक सम्प्रदायों तथा मतो के लोग) अपने अपने मतो का समर्थन करते हुए व्यर्थ ही वाद-विवाद करते रहते हैं। (परन्तु सच तो यह है) कि जैसे-तैसे सब के सेव्य तो श्रीकृष्ण चन्द्र ही हैं (क्योकि सकल संसार श्रीकृष्णमय है)।

३१. तौ ओर—बलियै = बलिहारी जाऊँ । भलियै = भले ही। हे चतुर श्रीकृष्ण जी, यदि आप मेरे कर्मों की तरफ़ सूक्ष्म दृष्टि से देखेंगे तो मैं आप पर बलिहार जाऊँ और मेरा भला भले हो चुका। (भाव यह है कि मैं कुकर्मी, तो आप की दया-दृष्टि से ही तर सकता हूँ, न्याय-दृष्टि से नरकाधिकारी ही बनूँगा, इस लिए कृपादृष्टि ही कीजिए)।

३२ चितु मयूख—त्यो = ओर, तरफ । चिनगी = चिनगारी। चँद मयूख = चाँद की किरणों। तीजे भजै न भूख = भूख मे भी तीसरी वस्तु पर मन नहीं चलाता। चकोर की ओर ध्यानपूर्वक देखिए। या तो वह अङ्गार के कणो को चुगता है या चाँद की किरणो को। भूख लगने पर भी तीसरे पदार्थ का सेवन नहीं करता। (कवि अन्योक्ति द्वारा यह बता रहा है कि मानी जन निकृष्ट वस्तुओं से तृप्त नहीं हो सकते)।

*३३ स्वारथु.. विचारि—सुकृत = पुण्य। विहङ्ग = पक्षी। पानि = हाथ। (राजा जयसिंह शाहजहाँ की ओर से हिन्दुओ के साथ युद्ध किया करते थे। बाज की अन्योक्ति उन पर खूब घटती है)। (पराइ नौकरी करके अपनो ही पर अत्याचार करने वाले टोडियो पर भी यह अन्योक्ति खूब फबती है)। हे बाज पक्षी! तू बेगानों के हाथ मे पड़ कर पक्षियो (चिड़ियो, स्वजनों) को मत मार। (इस काम मे) न तेरा कोई निजी प्रयोजन सिद्ध होता है न ही यह पुण्य है। तेरा तो परिश्रम ही निष्फल जाता है।

३४ सीस लाल—बानक = बनाव, वेष। हे व्रजविहारी (श्रीकृष्ण) मेरे हृदय मे सदा इस रूप मे विराजिए जिसमे सिर पर (मोर पंखो का)

मुकुट हो, कमर मे काछनी हो, हाथ में बांसुरी हो और छाती पर वन-माला हो।

[टिप्पणी—वन-विहार मे श्रीकृष्ण का यही सादा किन्तु लुभावना वेष हुआ करता था।]

३५. भृकुटी लाल—चटक=चटकीलापन। लटकती=झूमती हुई। (नायिका श्रीकृष्ण के रूप का सखी के सामने वर्णन कर रही है)। श्रीकृष्ण ने अपनी भँवो के नर्तन, पीताबर के चटकीलेपन, झूमती हुई गति तथा चञ्चल नयनो की चितवन से (मेरा) मन हर लिया है।

३६ सखि ज्वाल—गुञ्जन=रत्तिया। दावानल=जगल की आग। ऐ सखी, श्रीकृष्ण के वक्ष स्थल पर रत्तियो की माला ऐसी शोभा देती है मानो पी हुई वन की आग—व्रज-लीला मे पी गई दावाग्नि (अथवा संकेतस्थल में मेरे न मिलने से सही हुई विरहाग्नि) की लपट वाहिर लपलपा रही हो।

(दावानल की कथा—एक दिन नन्द, यशोदा, गौएं और ग्वाले वन की अग्नि मे बुरी तरह से घिर गए। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें नयन बन्द करने को कहा और स्वय उस आग को अपनी योग माय से पी गए।)

३७ प्रलय...हाथ—(जब इन्द्र की आज्ञा से व्रजभूमि को नष्ट करने के लिए) प्रलय लाने वाले मेघ मिलकर एक साथ बरसने लगे तब गिरधारी (श्रीकृष्ण) ने प्रसन्नतापूर्वक गोवर्धन पर्वत को (छाते के रूप मे हाथ में लेकर) इन्द्र का घमण्ड चूर कर दिया।

३८ लोपै .गोपाल—लोपै=नष्ट किये। रोपै प्रलय अकाल=वेवक्त ही प्रलय करना चाहती है। (दुष्ट-पीडित भक्त निज मन को धैर्य देता हुआ श्रीकृष्ण-महिमा का वर्णन करता है)। गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण ने (संकट के समय) सब गौओ, गोपियों तथा ग्वालों की रक्षा की। (और तो और) उन्होंने अकाल में ही प्रलय करने पर तुले हुए क्रुद्ध इन्द्र को भी भगा दिया।

❀ ३९ दुसह...चदु—दंदु (द्वन्द्व)=झगडा, क्लेश। मावस=अमावस्या। असह्य दुअमली (दो राजाओं के एकत्र शासन) में प्रजा-जनो का दु ख-क्लेश क्यों न (अधिक) बढ़ जायगा। (देखिये) अमा-

वस्या की रात को सूर्य तथा चांद (एक ही राशि में मिलकर) जगत् में अधिक अन्धेरा कर देते हैं।

(इस दोहे से बिहारी के ज्योतिष ज्ञान का भी परिचय मिल जाता है)

४०. कहलाने निदाघ—कहलाने = गर्मी से व्याकुल। एकत = एकत्र। दीरघ-दाघ = प्रचण्ड-ताप-युक्त। निदाघ = ग्रीष्म ऋतु। प्रचण्ड ताप से युक्त ग्रीष्म ऋतु ने संसार को तपोवन के समान (वैर-शून्य) बना दिया है। (देखिये सहज वैरी) साप तथा मोर और हिरन तथा बाघ भी गर्मी से व्याकुल हुए एक साथ ही (वैर त्याग कर) रह रहे हैं।

४१ छकि .ग्रँव—(चतुर्थ चरण मे प्रथम "झौंर" के स्थान पर 'भौर' चाहिए)। छकि = तृप्त होकर। झौंरत = मडराते हैं। झँपत = झुकते हैं।

आम के बौरों की सुगध से तृप्त होकर, माधुरी-लता (के फूलों) की सुवास मे शराबोर होकर, तथा पुष्परस-रूपी सुरा के पीने से मस्त हो कर, भौरों के झुण्ड स्थान-स्थान पर मँडराते और झुकते हैं। (यह वसन्त का वर्णन है)।

❀ ४२ लटुवा जाइ—प्रभु = (१) ईश्वर (२) लट्टू का स्वामी। निगुनी निर्गुनी = (१) शौर्यादि-रहित मानव (२) डार-हीन लट्टू। गुण (गुण) = (१) विद्या, शौर्य आदि (२) लट्टू घुमाने की डोर। गुनी (गुणी) = (१) ईश्वर (२) डोरी वाला।

जैसे गुण-हीन (डोर-रहित) लट्टू अपने स्वामी के हाथ मे पड़कर गुण (डोर) से युक्त हो जाता है और उस गुनी-कर (डोरी पकडने वाले स्वामी के हाथ) से छूटने पर फिर गुण-रहित (डोर-रहित) हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर का आश्रय मिलने पर निर्गुन मनुष्य गुणी हो जाता है तथा उसका आश्रय दूर हो जाने पर फिर गुण-हीन हो जाता है। (भाव यह है कि ईश्वर की कृपा से निर्गुण भी गुणी और उसकी अकृपा से वही गुणी भी निर्गुण हो जाता है। लट्टू और उसके स्वामी की उपमा से इसी बात को स्पष्ट किया है)।

पृष्ठ ३५, ४३ रनित समीरु—रनित = गूंजते हुए। दान = गज-मद। मधु = पुष्परस, मकरंद। कुञ्जरु = हाथी। (वसन्त के सुखद पवन का गज-रूप मे वर्णन है)। कुञ्ज-पवन-रूपी हाथी धीरे-धीरे चला आ रहा है।

गूञ्जते हुए भौंरे ही उस (हाथी) की घण्टियों की मालाएँ हैं और मकरन्द (के कण) ही उसका मद-जल।

४४. जुवति ..बाइ—स्वेद = पसीना। बिरमाइ = आराम करता हुआ। बटोही = पथिक, मुसाफिर। बाइ = वायु। (शीतल, मन्द, सुगन्धित दक्खिनी वायु का यात्री के रूप मे वर्णन है।)

पुष्परस-कण-रूपी पसीने (की बून्दों) को टपकाता हुआ, प्रत्येक वृक्ष के नीचे विश्राम करता हुआ, थका हुआ पवन-रूपी पथिक दक्षिण देश से आ रहा है।

४५. पतवारी नाउ—पतवारी = नाव का कर्ण जिसके बल पर नाव चलती व इधर उधर घूमती है। ससारपयोधि = भव-सागर। ईश्वर के नाम की नौका बना कर तथा माला की पतवार बना कर, संसार रूपी सागर को तर जा। (इसे तरने का) इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है।

४६. जौ चित्त—('घटै' के स्थान पर 'घटै' चाहिए।) चटक = चटकीला पन। रज = धूल। राजस = रजोगुण (अभिमान, क्रोध आदि)। हे मित्र, यदि यह चाहते हो कि (चित्त का) चटकीलापन भी न घटे और न ही वह मलिन हो, तो स्नेह (प्रभु प्रेम) से चिकने हो चुके चित्त पर रजोगुण रूपी धूलि का स्पर्श मत होने दो।

(भाव यह है कि जैसे चिकनी चीज को धूल झट मैला कर देती है, वैसे ही स्नेह-सने हृदय को रजोगुण (क्रोध, इर्षादि) की धूल। अतः इसे सुरक्षित रखो)।

४७ मोत करोरि—गलीत ह्वै = अपनी दुर्दशा बना कर। हे मित्र, यह (अच्छी) नीति नहीं है कि दुर्दशा मे रह कर धन जोड-जोड कर इकट्ठा किया जाए। हा, खाने तथा खर्चने के पश्चात् यदि बच सके तो करोड़ भी जोड ले।

४८ नाहिन उसास—नाहिन = नहीं। पावक-प्रवल = आग सी प्रचण्ड। ग्रीष्म लेत = ग्रीष्म ऋतु द्वारा ली जाती हुई। (विरहिणी स्त्री सखी से ग्रीष्म की लुओं का वर्णन कर रही है)। (हे सखी) चारों तरफ़ ये आग सी प्रचंड लुएं नहीं चल रही हैं। इन्हें तुम वसन्त के वियोग में ग्रीष्म द्वारा ली जाती हुई आहें समझो।

४६. जाकैं.. होइ—एकाएक हूँ = अकेला भी । ब्यौसाइ (व्यवसायी) = उद्योग करने वाला । जिस के लिए संसार मे एक भी (मनुष्य) उद्योगशील नहीं है, वह आक का पौदा ग्रीष्म ऋतु मे [हरा भरा होकर फूलता-फलता है।

(आक के पौदे पर अन्योक्ति करके कवि यह कहना चाहता है कि ईश्वर-कृपा से परिश्रम के विना भी मनुष्य समृद्ध हो सकता है।)

❀ ५० नहिं.. फूल—पावसु (प्रावृष) = वर्षा ऋतु । अपतु (अपत्र) = (१) पत्र-हीन (२) मान-रहित । हे श्रेष्ठ वृक्ष, यह वर्षा ऋतु नहीं है, अपितु ऋतुराज वसंत है। इस लिए चित्त का भ्रम छोड़ दे। इस में तू पत्र-हीन हुए बिना नए पत्ते, फूल और फल न पा सकेगा।

(भाव यह है। कोई व्यक्ति राजा से लाभ उठाना चाहता है। दूसरा उसे समझाता है कि यह काम सहज नहीं है, पहले 'अपत' (मान-हीन) होना पडता है। नृप-जन वर्षा ऋतु के समान नहीं होते, वसत के तुल्य होते हैं। बरसात तो कुछ लिए बिना ही नव-पल्लव प्रदान करती है परन्तु बहार पहले पत्र-हीन करके फिर कुछ देती है।)

❀ ५१ करौ...लाल—कुवत = कुवार्ता, निंदा । कुटिलता = (१) बुराई (२) वक्रता, टेढापन। सरल = (१) निष्कपट (२) सीधा। त्रिभंगी = तीन जगह (पेट, कमर तथा गर्दन) से टेढे (श्रीकृष्ण का वह आकार जब वे बांसुरी बजाते हैं)। हे दीन दयालो, ससार मेरी निंदा करता रहे, तो भी मैं अपनी कुटिलता न छोड़ूंगा। (क्योंकि यदि मैं अपना टेढापन त्याग दूंगा तो तुम) हे त्रिभंगी लाल, मेरे सीधे हृदय मे रहते हुए दु ख उठाओगे।

(भाव यह है कि सीधी वस्तु मे टेढी वस्तु सुख से नहीं समाती। तुम त्रिभंगी, तीन स्थानों से टेढ़े हो। यदि मैं हृदय को सरल रखूंगा तो तुम्हें उसमें रहते दुःख होगा, अतः मै उसे कुटिल ही बनाए रखूगा। लोग निंदा करते रहें, तुम तो प्रसन्न रहोगे।)

५२. निज...गोपाल—त्यौं = ओर । (कोई अपने कुकृत्यों पर लज्जित भक्त श्रीकृष्ण को अपने ऊपर भी दयालु देख कर, अति संकुचित हो कर कहता है।) हे गोपाल, अपने कुकृत्यों से लजाते हुए को (अपनी) इस कृपा की रीति से, (अर्थात) मुझ जैसे सदा-विमुख की ओर भी

तुम्हारे मुख के समान सुन्दर नहीं हैं)।

५. मृग .सुवास—मृगपति = सिंह जिसकी कमर पतली होती है। सुलक = कमनीय कटि (कमर)। मृगलच्छन = मृग-लांछन, चाँद। मृगमद मृगों का गर्व, कस्तूरी। (नायिका के अङ्ग-सौन्दर्य का वर्णन है)। (उस नायिका ने अपनी) सुन्दर (पतली) कमर से सिंह को, मुस्कराहट से चांद को, सुन्दर नेत्रो से हिरन की आखो को और (देह की सहज सुगन्ध से) कस्तूरी को पराजित कर दिया।

६. कहा . माल—लाल = हीरे। लाल = लाल रग। मतिराम कहते हैं, क्या हुआ जो लाल रत्तियो की माला को श्रीकृष्ण ने निज वक्षःस्थल पर धारण कर लिया। इससे उसका मूल्य हीरों के तुल्य थोडा ही हो सकता है। (भाव यह है कि केवल ऊँचे स्थान पर बैठने से बडाई नहीं मिलती, तदर्थ गुण अपेक्षित होते हैं)।

७. गुन . कपार—तनकऊ = तृणमात्र भी। केतकि = केवडा। कपार (कपाल) = खोपडी। भगवान् लोगों के गुण-दोषों का ज़रा भी विचार नहीं करते। (वे तो स्वेच्छाचारी हैं)। देखिये, शिवजी महाराज केवड़े के फूल का तो आदर नही करते ,परन्तु खोपड़ियों को प्रसन्न होकर आदर पूर्वक ग्रहण करते हैं।

८ निज ..गोपत—खिस्याहु = लज्जित होते हो। हे श्रीकृष्ण, तुमने अपनी सामर्थ्य के अनुसार बड़े-बड़े पतितों का उद्धार कर दिया, क्या हुआ यदि मुझे नहीं तार पाते हो, इस कारण तुम शर्माओ नहीं। (तुमने तो यथाशक्ति कर्तव्यपालन कर ही दिया है। यदि मैं पापिष्ठ हूँ तो अपराध मेरा है, तुम्हारा नहीं)।

९ निडर उजार—निर्भय यात्री मार्ग (के खेत) से गन्ने उखाड लेता है। (कवि यात्री से कहता है) अरे भाई, तुम उस निर्धन (किसान) को क्यों उजाडने लगे हो।

१०. वसिबे नाहिं—सरवरनि = तालाबों में। मराल = हंस। पैठन = प्रविष्ट होना। जिस हंस को अपने तालाबों मे वसाने को देवता-गण लालेयित रहते हैं. (परिस्थिति-भेद देखिये कि) वह हंस बगलो के तालाबों में भी नहीं घुस सकता। (भाव यह है कि गुणियो का सत्कार गुणज्ञो में ही होता है, गुण-हीनों में नहीं)।

११. अदभुम ..अधिकाइ—तिमर (तिमिर) = अन्धेरा । इस धन का (मद-रूपी) अन्धेरा ऐसा आश्चर्यजनक होता है कि मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। ज्यो-ज्यो (हमारे घरों मे) रत्न-समूह चमचमाते हैं त्यो-त्यों वह मदाधकार बढता ही जाता है।

१२. कोटि...होइ—नेह (स्नेह) = (१) प्रेम (२) घी, चिकनाई। मतिराम जी कहते हैं कि चाहे सब लोग करोडो यत्न करते रहे तो भी (एक बार) फटे हुए हृदयो मे प्रेम नहीं आ सकता और फटे हुए दूध से घी नहीं निकल सकता।

१३. सुबरन गॅवार—दलनि = पंखुडिया। ऐ बेसमझ भँवरे, केवल तू ही सुनहरे रग वाले, सुगन्ध तथा मकरन्द से पूर्ण और अति कोमल पंखड़ियो वाले चंपे के फूल को छोड़ देता है (और कोई तो ऐसा विवेक शून्य नहीं है)। (यह अन्योक्ति उन निबुद्ध जनो पर खूब फबती है जो गुणवानो का आदर नहीं करते)।

१४ सुबरन सनेह—तमाल = आबनूस का पेड (जो कृष्ण वर्ण होता है)। हे राधे, तू प्रेम में मग्न होकर घनश्याम (श्रीकृष्ण) के संग ऐस शाभा दती ह जस सुनहरी लता आबनूस स तथा बिजली (की काया) मेघ से लिपट कर।

पृष्ठ ३८, दोहा १५. अब ताल—पानिप = पानी । पंक = कीचड़। हे हंस, अब तेरा यहां रहना उचित नहीं क्योंकि इस तालाब का समग्र जल सूख गया है और अब केवल कीचड़ ही कीचड दिखाई देता है।

१६. दुख...देस—भले मनुष्य दुःख पाने पर भी अपनी भली प्रकृति का त्याग नहीं करते। देखिये, अगर (एक सुगन्धित द्रव्य) को आग मे भी जला दे तो भी वह समीपवर्ती देश को सुगन्धित करता ही है।

१७ सरद सग—तिय = कामिनी। मंजु = सुन्दर। मंजीर = नूपुर, पाजेब। (शुक्लाभिसारिका के अङ्ग-सौन्दर्य का वर्णन है)। स्त्री (नायिका) के अङ्ग ऐसे निर्मल हैं कि शरद् ऋतु की चांदनी में (तद्-रूप होकर) बिलकुल दिखाई ही नहीं देते। उसके नूपुरों की मधुर ध्वनि सुनती हुई सखी उसके साथ-साथ जा रही है। (यदि यह ध्वनि न होती तो सखी को बडी कठिनाई पडती)।

१८. सुजस.. वार—साह-सुत = शाहजी भोंसला का पुत्र-शिवाजी।

[तृतीय चरण में 'आपत' के स्थान पर आतप चाहिये] आतप = प्रकाश, ज्योत्स्ना। शुचि = ग्रीष्म ऋतु। आतप = धूप।

वीर शिरोमणि, शाहजी के पुत्र शिवाजी ने अपनी सुकीर्ति के तेज से जेठ-अषाढ़ की धूप को शरद् ऋतु की चांदनी बना दिया है। (भाव यह है कि उनके यश के प्रबल प्रताप के सामने ग्रीष्म की धूप चांदनी सी प्रतीत होती है)।

१६ पिसुन .तरवारि—पिसुन (पिशुन) = चुगलख़ोर। तोय = पानी। तुपक = तोप। चुगलख़ोरों के शब्द भले मनुष्यों के हृदयों को (उनके मित्रों से) न अलग कर सकते हैं न ही उन्हें व्यथित कर सकते हैं। देखिये तोप, तीर या तलवार पानी में लग कर उसका क्या बिगाड़ सकती है? (कुछ भी नहीं)।

२०. अति . रूप—सुढार = सुंदर, सुडौल। पानिप = चमक, कांति। अत्यन्त सुंदर, अत्यधिक बड़े और अनुपम कांति से युक्त (नायिका के) नेत्रों और बेसर (नासिकाभूषण) के मोतियों में परस्पर यह प्रतिस्पर्धा चल रही है कि कौन अधिक रूपवान् है।

२१. ललित...राति—कलहंस, राजहंस। सारदा (शारदा) = सरस्वती। बिसद-रुचि = निर्मल कांतियुक्त। शरद् ऋतु की चांदनी-रात के समय निर्मल कांति वाली सरस्वती के समान (नायिका) राजहंस की सी मनोहर और मन्द चाल तथा हृदयहारी, हलकी सी मुस्कराहट से युक्त होकर चली।

२२ प्रीति मित्र—द्वैज = द्वितीया तिथि। द्विजराज = चन्द्रमा। मित्र = सूर्य। मित्र = सखा। जैसे जगत्-पूजित दूज के चांद की कला सूर्य से प्रकाश प्राप्त करके शनै शनै बढ़ती है, वैसे ही वह प्रेम स्तुत्य है जो मित्र के दर्शन से उत्पन्न होता है और यथाक्रम बढ़ता जाता है।

२३. प्रतिबिंबित . मयंक—तो (तव) = तेरे। बिंब = सूर्य, चांद का मण्डल। मयंक (मृगांक) = चन्द्र। हे चांद तुम्हारे मण्डल पर पड़ा भूमि का प्रतिबिंब ही (तुम्हारा) कलंक बन गया है। सो मन में यह समझ लो कि यह दोष तुम्हारी (अत्यधिक) निर्मलता का ही है (पृथिवी का नहीं)। (भाव यह है कि 'अति' किसी बात में भी अच्छी नहीं)।

२४. तिहिं जात—पुरान = पुराण ग्रंथ। नव-द्वै = अठारह।

पुरान=पुराना। जिसने यह तत्त्व जान लिया, कि जो पुराना है वह सदा नया रहता है और जो नया है वह पुराना हो जाता है, (समझ लीजिए) कि उसी ने अठारह पुराणों का पारायण किया है। (भाव यह है कि अठारह पुराणो का सार यही है कि जीवात्मा नित्य एक-रस रहता है और शरीर पुराने होकर नष्ट हो जाते हैं)।

२५. सुखद सुकुमार—गजमुख=गणेश। जगमायासुकुमार=जगन्माता (पार्वती) का सुपुत्र—गणेश। सज्जनो को सदा सुख देने वाले, हाथी के से मुख वाले, दान-शील और विशाल हृदय वाले, पार्वती जी के सुपुत्र (गणेश जी) सब संसार की पूजा के पात्र हैं।

२६ मदरस ‌नाथ—मद=गजमद, दान। मिलिंद गन=भँवरे। गन-नाथ=गणेश। रिद्धि=धन। (अपनी कनपट्टियों से बहते हुए) मद के आनंद से मस्त, भंवरों के झुण्डों की गुंजार से प्रसन्न गणेश जी का स्मरण कर कवि मतिराम सब सिद्धियो, ऋद्धियों और निधियों (अर्थात् दिव्य शक्तियों, सफलताओं तथा ऐश्वर्यों) को प्राप्त कर लेते हैं।

[टिप्पणी—सिद्धियां आठ होती हैं-अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्वं, वशित्वं, कामावसायिता। (योग०)

निधियां नौ होती हैं—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व। (ये कुबेर के दिव्य कोष हैं)]।

२७ अंग हँस—अंगराग=सौन्दर्य वर्द्धक द्रव्य (पाउडर आदि)। अवतंस=भूषण। हसवाहिनी=हंस की सवारी करने वाली (सरस्वती)। हंस=आत्मा। हे सुदर शरीर वाली, श्वेत वस्त्रधारिणी, अङ्गराग तथा आभूषणों से अलकृत सरस्वती, आप मेरी आत्मा को अपना वाहन बनाइए। (भाव यह है कि निज-कृपा से मुझे परम विद्वान् बनाइए)।

२८. जो बोध—हे प्रभो, जो (आस्तिक) रात-दिन आप की सेवा करता है और जो (नास्तिक आप का सदा) विरोध करता है, उन (दोनो को ही आप) मोक्ष दे देते हैं। कहिए तो, यह कहा का विवेक है? (भाव यह है कि भगवान् समदर्शी हैं, वे मित्र-शत्रु सभी के हितैषी हैं)।

पृष्ठ ३६, दोहा २६ पगी लोग—मधुप=भँवरा (यहां पर उद्धव)। हे ऊधो जी, हम तो नंदकिशोर के प्रेम में शराबोर हैं। हमें (आप का

बताया) योग नहीं अच्छा लगता। (देखिए) लोग राजा बन कर भीख थोड़े ही मांगते हैं।

३०. देखत ..नेह—दीपति = उजाला। निष्कपट प्रेम तो बस पतंगे मे ही दिखाई देता है जो दिए का प्रकाश देखते ही प्राण तथा तन निछावर कर देता है।

३१. मो फूल। हे मेरे मन, तू मेरा उपदेश सुन। शिवजी महाराज का प्रेम पात्र बन। उन्हे केवल धतूरे का फूल भेंट कर के त्रिलोकी का प्रभुत्व प्राप्त कर।

(टिप्पणी—प्रसिद्ध ही है कि शिव जी भांग पीते हैं और धतूरा चबाते हैं।)

※ ३२. खल मौन—मधुरई = मिठास (यहा कटुता)। श्रौन (श्रवण) = कान। गहि = धारण करके। साप, दुष्टों के वचनों की मिठास (वस्तुत: कटुता) अपने (नेत्र रूपी) कानों से चख (सुन) कर रोमाचित (अतिप्रसन्न) हो गए। (तत्पश्चात् अपने हार्दिक) आनन्द को (वे) चुपचाप प्रकट कर देते हैं (अर्थात डस कर लोगों को मार देते हैं)।

(व्याख्या—इस दोहे मे कवि ने चार असभव बातों के उल्लेख द्वारा यह भाव प्रकट किया है कि दुष्टो क वचन सर्प के डसने के समान भयकर होते हैं। वास्तव में देखा जाए तो न दुष्टों के वचनों मे मिठास होती है, न सापो के कान होते हैं (, क्योंकि वे तो चक्षुःश्रवा प्रसिद्ध हैं), और न ही कोई बिना वाणी के बोल सकता है। फिर भी कवि इन कल्पनाओ द्वारा यही प्रकट करता है कि साप का विष स्वाभाविक नहीं होता, अपितु दुष्टों के कटुवचनों को सुन कर ही उत्पन्न होता है।)

३३. मुकत उदोत—मरकत = नीलम। उदोत (उद्यात) = प्रकाश। घनश्याम की छाती पर पड़ी हुई मोतियों की माला नीलमों की माला सी दिखाई देती है। (परन्तु वही) राधा जी के मुख की मुस्कराहट की (श्वेत) कान्ति से फिर पहली शोभा को धारण कर लेती है।

(टिप्पणी—कविगण हंसी-मुस्कराहट का रग सफेद मानते हैं। इसलिए ही उपर्युक्त कल्पना की गई है।)

३४ सरद...प्रतिकूल। कोक = चकवा पक्षी। शरद की चन्द्रिका को कौन दुखदायक कहेगा (यदि कोई नहीं तो यह भ्रम है, देखिए)

शरद चन्द्र का प्रकाश चकवे के हृदय को दुख ही देता है।

[टिप्पणी—कविसम्प्रदाय के अनुसार चकवा चकवी रात को बिछुड़ जाते हैं और चन्द्रिका विरहियों को संतप्त करती है। (भाव यह है कि कोई भी वस्तु या व्यक्ति सब को प्रसन्न नहीं कर सकता।)]

३५. को द्विजराज। वाहन=सवारी। द्विजराज=(१) गरुड़, पक्षी (२) चांद (३) विप्र। (जहां पर तीन प्रश्न पूछे गए अर्थात) विष्णु की सवारी, सागर का बेटा और विद्या का जहाज कौन सा हैं ? वहां पर विद्वानो ने एक ही द्विजराज शब्द मे (तीनो प्रश्नो का) उत्तर दे दिया। अर्थात विष्णु की सवारी द्विजराज (गरुड़) है, समुद्र-सुत द्विजराज (चांद) है और विद्या का जहाज द्विजराज (ब्राह्मण) है।

३६. स्याम . राम। मति=बुद्धि। मति बिसरौ=मत भूलो। हे सावले रग वाले, अति सुन्दर, समस्त शुभ गुणो के भडार श्री रामचन्द्रजी आप रात दिन मतिराम की बुद्धि को किसी समय भी न भुलाइये (ताकि कुमार्ग गामिनी न हो जाए)।

※३७. प्रतिपालक काटि। दलमलत=कुचल देते हो। सम सांकरै सकटमय समय मे। सांकरैं=बंधन, जंजीरें। हे शान्तिदायक (शिव), तुम दुष्टों को झिड़क कर नष्ट कर देते हो और सकट के दृढ बन्धनों को काट कर सब सेवकों की रक्षा करते हो।

※ ३८. सेवक...एक। सेवा देव=काम देने वाले। सेवको से सेवा करने की सामर्थ्य सुन कर उन्हे काम पर लगाने वाले तो अनेक लोग है, किन्तु (कुछ न कर सकने वाले) दीनों के बन्धु तो केवल विष्णु ही हैं, हा नाम-मात्र का दीनबन्धु तो प्रत्येक (धनी) है।

(टिपणी—उत्तरार्द्ध का दूसरा अर्थ यो भी हो सकता है- किंतु दीनों के बन्धु तो केवल विष्णु जी या केवल शिव जी ही हैं।)

३९. अधम दरियाउ—हौं=मैं। हौं=हूं। राउ=राजा। दरियाउ=सागर। जो अजामिल आदि नीच लोग (आप द्वारा तारे गए हैं) मैं उनका राजा हूं (अर्थात सब से बडा पापी हू)। हे श्रीकृष्ण, आप दया के सागर हैं (इस लिए मुझ पर भी कृपा कीजिये।)

४० अनमिष .समान। अनमिष (अनिमिष)=एकटक। पखानि=पंख। पखान (पाषाण)=पत्थर। (श्री कृष्ण के) मयूरपक्ष-मय मुकुट

वाले भोगनाथ ने प्रातःकाल के सूर्य के समान बनकर मेरे नयन-रूपी कमलों को अन्ततः दर्शन से प्रसन्न कर दिया।

५६. भोग...विंदु—राजा भोगनाथ का मुख चांद तथा कमल के तुल्य है। कविता करता हुआ (वह मुख) सुन्दर तथा मधुर अमृत और मधु की बून्दों को टपकाता है।

पृष्ठ ४१, दोहा ५७. कौन ..चन्द—हे नन्दलाल, (तेरे) सौन्दर्य का वर्णन क्योंकर करे! (क्या चांद से उपमा दें? नहीं,) चाद तो तेरे मुख की (थोडी सी ज्योति की) भीख लेकर ही प्रकाशपुंज बन रहा है।

५८. दिन गोविंदु—द्यौस=दिन। वदन=मुख। हे श्रीकृष्णचद्र, कमल दिन मे ही शोभायुक्त होता है और चाद रात मे ही। तेरा मुख तो दिन और रात (दोनों में ही) अत्यन्त सुन्दर रहता है।

५६. सुनत .नाथ—गुरु=(१) शिक्षक या वृद्धजन (२) बृहस्पति, सुरगुरू। बिबुध=(१) विद्वान् (२) देवता। सुरनाथ=इन्द्र। यह राजा भोगनाथ सदा भूमि के इन्द्र समझे जाते हैं। जैसे इन्द्र (स्वर्ग मे) गुरू (बृहस्पति) के कल्याणकारी वचनों को सुनता तथा विबुधों (देवताओं) के साथ रहता है, वैसे ही यह (भोगनाथ भूमि पर) गुरुओं के वचनों को सुनता तथा विद्वानों की सगत मे रहता है।

६० सरनागत वीर—यह राजा भोगनाथ, बड़े भारी शरणागत रक्षक हैं, दान और युद्ध के समय अत्यन्त धैर्यवान् रहते हैं तथा वीर-रस में सदा सने रहते हैं।

६१. जगति भूप—जगति=ससार में। जगति=प्रकाशमान हैं। जग्यरूप=(यज्ञ रूप)=विष्णू। राजा भोगनाथ के दोनो बाहु लोक मे प्रताप दिखा रहे हैं। वे (पृथिवी पर) विष्णु के समान हैं। राजा लोग उनकी भँवो की ओर ताकते रहते हैं (अर्थात् उनकी कृपा के आकाक्षी तथा क्रोध से डरते रहत हैं)। गूढ तात्पर्य यह है कि विष्णु तो चार भुजाओं से ही लोक शासन कर पाते हैं और यह केवल दो भुजाओं मे सबको वश किये हुए हैं)।

६२ तुरग...भूप—अरब इराक के घोडों तथा अतुल्य रत्नाभूषणों को राजा भोगनाथ से भिक्षा के रूप मे प्राप्त करके (अन्य) राजा लोग भिखारियों के समान बन गए हैं।

६३. भोग रूप—राजा भोगनाथ का रीझना और खीझना अतुल्य है। (उनके अनुकूल होने पर) भिखारी राजा बन जाते हैं, (और प्रतिकूल होने पर) राजा भिखारी बन जाते हैं।

६४. मुरली . अभिराम—बकी = पूतना (बकासुर की भगिनी)। प्रभु (श्रीकृष्णचन्द्र) बाँसुरी बजाने वाले, गोवर्धन उठाने वाले, पीले वस्त्र पहिनने वाले, मेघ के समान साँवले, पूतना को मारने वाले, कंस के शत्रु, (गोपियों के) वस्त्र चुराने वाले तथा सुंदर स्वरूप हैं।

६५. पीत नाथ—झँगुलिया = झगा, कुरता। लकुटिया = छड़ी। पीला कुरता पहिने, हाथ में लाल छडी लिए, धूल मे सने हुए ब्रजेश्वर (श्रीकृष्ण) ब्रजवासियों के साथ खेल रहे हैं। (राजा का प्रजा के साथ खेलना आश्चर्यजनक और मनमोहक बात है)।

६६ तिरछी वरजोर—बरजोर = प्रबल, महान्। श्रीकृष्ण का (प्रेममय) कुटिल कटाक्ष राधा जी पर पड़ रहा है (और वह उस से मन में सुखी हो रही है)। (हे श्रीकृष्ण), यह महान् सुख राजा भोगनाथ को भी दीजिए अर्थात् उसे भी प्रेम-दृष्टि से देख कर आनंदित कीजिए।

६७. मेरी आराम—आराम = सुख। आराम = आ राम। मैं 'मतिराम' नाम का कवि हूँ और सदा राम का ही विचार करता रहता हूँ। मेरा चित्त सदा सुखी और शात रहता है। इस लिए, हे राम, (सदा) मेरे मन में आइए (रहिए)।

६८ पानिप पारावार—पानिप = पानी। दृग-मीनन = नयन-रूपी मछलियां। पानिप पारावार = काति-रूपी सागर। सारा संसार कहता है कि मछली पानी में रहती है। (किन्तु यह आश्चर्य) दिखाई देता है कि नयन-रूपी मछलियों में पानी (काति) का समुद्र रह रहा है। (भाव यह है कि नयन अतिशय सुंदर हैं)।

६९. रोस . सिंगार—छितिपालनि (क्षितिपाल) = राजाओं। हे लाल (रत्न), यदि (कोई) मूर्ख (तुझे) अङ्गारा समझ कर छोड कर चला गया तो क्रोध न कर। राजाओ की माला का सिंगार तो तू ही है। (वे तो तेरा सत्कार करेगे ही)।

७० देखैं . प्यास—जैसे स्वप्न मे प्यास लगी हो तो किसी भाँति भीनहीं बुझती, वैसे ही प्रेमियो की पारस्परिक दर्शन-पिपासा (एक दूसरे

को) देखने पर भी और न देख सकने पर भी (बराबर) बनी रहती है।

पृष्ठ ४२, दोहा ७१ *तरु. .सुकुमार—करार=नदी का ऊँच किनारा। करार=चैन। (ऐ वृद्ध मनुष्य), तू अब नदी-तट का वृक्ष हो रहा है (न जाने कब गिर पडे)। अब भी तू चैन से क्यों पडा है (अब तो) नंदलाल के कोमल चरण कमलों को हृदय में धारण कर।

७२. तनु मीन—मग=मार्ग। चडाऊ=चढाव। जैसे, पानी के प्रवाह मे चढाव की ओर मछली बड़ी कठिनाई से जाती है, वैसें ही (विरही यात्री का) शरीर तो आगे-आगे (मंदगति से) जा रहा है परन्तु मन उसी मार्ग मे मग्न है (क्योंकि प्रेयसी तो प्रतिपग दूरतर होती जाती है)।

वृन्द

वृन्द का जन्म संवत् १७४२ के लगभग हुआ। कोई इनका जन्म-स्थान मथुरा प्रान्तान्तर्गत बताता है और कोई जोधपुर के रियासत में मेड़ता नामक गॉव। शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् ये औरंगजेब के दरबार में जा पहुँचे। औरंगजेब का पोता अजीमुश्शान बंगाल, बिहार तथा उडीसा का सूबेदार था तथा ढाके मे रहता था। जहॉ वह स्वय कवि था वहाँ कवियो का आश्रय दाता भी। उस ने वृन्द को सम्राट् से माग लिया और ढाके मे ले गया। वृन्द ने निज सतसई स० १७६१ में ढाके मे ही लिखी।

वृन्द की सतसई को दृष्टान्त सतसई तथा वृन्दविनोद सतसई भी कहते हैं। वृन्द-रचित 'भावपंचासिका' नामक ग्रन्थ भी सुना जाता है।

इन की सतसई नीति-विषय का अत्युत्तम ग्रन्थ है। जैसे नीति-विषयक सुन्दर दोहे इन की सतसई मे उपलब्ध होते हैं वैसे हिन्दी के और किसी भी ग्रन्थ मे नहीं। इनकी भाषा सरल-सुबोध है। छोटे-छोटे दोहों में अतिगभीर नीति-तत्त्वो का उपदेश भी दे दिया गया है और साथ ही उन्हें दृष्टान्तो से चमत्कृत भी कर दिया गया है। यही कारण है कि इन के दोहे ग्राम-नगर सब कही लोगों की जिह्वा पर चढे हुए हैं। प्रस्तुत दोहे इन की सतसई से ही लिए गए हे।

कवि के देहावसान का समय निश्चित नहीं है।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ

पृष्ठ ४४, दोहा १. श्रीगुरु...वृद्धि—घन=बादल । श्री गुरु देव की कृपा से (सब) मनःकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं; जैसे, मेघ (के जल) से वृक्ष, लताएं, पत्ते, फूल तथा फल बढ़ जाते हैं ।

२. भाव ..सुहाय—सरस=अच्छा । भाय=भाव । रस युक्त भावों को सब समझ भी लेते हैं और वही सब को पसंद भी आते हैं, जैसे, उचित समय पर कही हुई बात सुनने पर अच्छी लगती है ।

३. नीको . सुहात—नीको=सुंदर, सरस । अनुचित समय पर कही हुई सरस बात भी नीरस लगती है; जैसे, युद्ध के अवसर पर शृंगार रस का वर्णन शोभा नहीं देता ।

४. फीको गारि—गारि=गाली । अवसर को समझ कर कहीं हुई नीरस बात भी सरस लगती है; जैसे, विवाह के समय पर गाली भी सब का मन प्रसन्न कर देती है ।

५ जो...लेत—निबौरी=नीम का (कड़वा) फल । जो जिसका गुण जानता है, वही उस का आदर करता है; जैसे, कोयल आम लेती है और कव्वा नीम के फल को ।

६. कहा...निरमूल—सलभ (शलभ)=सलहा, टिड्डी । यदि परमेश्वर ही दयालु न हों तो पुरुषार्थ से क्या बन सकता है ! (कुछ भी नहीं) । जैसे, तैयार फ़सल को टिड्डी-दल नष्ट कर देता है ।

७. जाही .पियास—रीते (रिक्त)=ख़ाली । जिस से कुछ लाभ हो उसी से आशा रखना उचित है । ख़ाली (जल-हीन) तालाब पर जाने से प्यास कैसे मिट सकती है ।

८. जो . पियास—सघन=मेघयुक्त (ऋतु) । जो जिसका अनन्य प्रेमी हो जाता है, वही उस की आशा पूर्ण करता है । देखिए, स्वाति नक्षत्र में बरसी हूई बूंद के बिना वर्षा ऋतु में भी पपीहा प्यासा ही मरता है । (किसी ने कहा भी है—'चातक संवत् में इक बूंद पिए, तिहि आश्रित प्रान रहे') ।

९. गुन ..कौन—('गुनही' तथा 'मगाइए' पाठ चाहिए) । उसी गुणवान् को मँगाना चाहिए जो जीवन मे सुखों का भण्डार हो अर्थात्

अति सुखदायक हो। आग चाहे नगर को जला देती है तो भी उसे कौन नही लाता।

१०. रस हाथ—जो सरसता तथा नीरसता को समझे बिना प्रेम की बात करने लगता है, तो मानो वह बिच्छू तक के मन्त्र को भी न जानता हुआ साप के पिटारे में हाथ डालने का प्रयत्न कर रहा है। (भाव यह है, प्रेम करना तो दूर रहा, पहले मनुष्य को चाहिए कि रुखाई छोड़ कर मधुरता धारण करे)।

११ अपनी...सौर—दौर = प्रयत्न। सौर = चादर। अपनी शक्ति का विचार कर के ही किसी काम के लिए प्रयत्न करना चाहिए। चादर जितनी लबी हो, पाव उतने ही फैलाने चाहिए, (अधिक नहीं)।

१२ ओछे जाय—छीलर = छिछला, थोड़े पानी वाला। क्षुद्र मनुष्य का प्रेम ऐसा कहा गया है जैसा थोड़े जल वाले तालाब का जल। जैसे वह जल क्रमशः क्षीण होकर सूख जाता है वैसे ही क्षुद्र की प्रीति क्रमशः घटती हुई नष्ट हो जाती है।

१३. रहे बेल—बड़ों के पास रहने से (मनुष्य का) अपार कल्याण होता है। सब ही जानते हैं कि बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है उसी के बराबर बढती है।

१४ फेर...बार—ह्वै है = होगा। जो काम धोखे से किया जाएगा, वह दोबारा न होगा। जैसे, लकड़ी की देगची (चूल्हे पर) दूसरी बार नहीं चढ़ सकती।

पृष्ठ ४५, दोहा १५ नैना...देन—आरसी = शीशा। नेत्र हृदय का प्रेम या वैर सपूर्णतया बता देते हैं। जैसे, स्वच्छ दर्पण रूप या कुरूप (भली भांति) दिखा देता है।

१६ अति . जराय—परचै (परिचय) = मेल-जोल। भाय = भाव। जहां अधिक मेल-जोल हो जाता है वहां प्रेम तथा आदर-भाव नहीं रहता। देखिए, मलयपर्वत की भीलनी चन्दन को जलाती रहती है।

१७. जासो आहि—ससिहि = चाँद को। सुधाकर = अमृत जैसी किरणों वाला। कलंकी = धब्बों वाला। जिसका जिसके तईं जैसा भाव होता है वह उसको वैसा ही समझता है। देखिए, कोई तो चाद को सुधाकर (अमृत जैसी किरणों वाला) कहता है और कोई कलंकी

(धब्बों वाला) ।

१८. सबै ..बुझाय—बलवान् के सहायक तो सभी हैं परन्तु निर्बल का सहायक कोई भी नहीं । देखिये जो हवा (सबल) आग को प्रदीप्त करती है, वही (निर्बल) दिए को बुझा देती है ।

१६. अति. .होय—कामरी = कम्बल । बहुत अधिक ज़िद मत करो । ज़िद बहुत बढ गई तो कोई तुम से बोलेगा भी नहीं । देखिए, कम्बल ज्यो-ज्यों गीला होता जाता है त्यों-त्यों भारी होता जाता है ।

२०. लालच ..प्यास—लोभ भी वही अच्छा है जिस से अभिलाषा तो पूरी हो जाए । कहीं ओस को चाटने से भी प्यास शांत हो सकती है ।

२१. जो. .हार—जिसे जो अच्छा लगे, वही अच्छा है । (जगत् में) गुणों का विचार नहीं किया जाता । देखिए, भीलनी हाथियों की कनपट्टियो से निकलने वाले मोतियो को छोड़ कर रत्तियो का हार पहिनती हैं ।

२२. एक अनेक—एक भद्रजन के द्वारा अनेको का कल्याण हो जाता है । इस बात को विचार से समझ लो । जैसे राजा हरिश्चन्द्र के सत्य के प्रभाव से अनेक प्राणी मुक्त हो गए ।

(ऐतिहासिक सकेत—जब राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर बैठे तब भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें बैकुण्ठ मे चलने तथा वर मांगने का आदेश दिया । हरिश्चन्द्र बोले—मै यही वर मांगता हूँ कि सभी अयोध्या-वासी मेरे साथ ही चले । इस प्रकार इन की भद्रता से सब का कल्याण हो गया ।)

२३. एक .लोप—एक के बुरा होने के कारण, कोई बलवान् क्रुद्ध हो जाए, तो सब का अनिष्ट हो जाता है । देखिए, (अकेले सहस्रबाहु), अर्जुन के दोष के कारण सब क्षत्रिय नष्ट हो गए ।)

(ऐतिहासिक सकेत—सहस्रबाहु अर्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार डाला था । इस परशुराम जी ने क्रुद्ध होकर इक्कीस वार क्षत्रियों का संहार किया था ।)

ॐ २४ बडेन...बखान—गिर ढार = पर्वत की ढलवान । बखान = प्रशंसा, बडाई । मागना बड़े लोगो से ही अच्छा है, चाहे निरादर ही हो । पर्वत को ढलवान से चाहे हाथी के दात गिर पड़ते हैं तो भी उस की

प्रशंसा ही होती है।

(व्याख्या—हाथी पर्वतों की ढलवान पर उगे हुए पेड़ों के पत्रों से पेट भरते हैं। उनको गिराने के लिए वे पर्वत की चट्टानों अपने दांतों से ठोकरें मारते हैं। इससे कई बार उनके दांत भी जाते हैं और वृक्ष-पत्रादि भी नहीं मिलते। इसी आधार पर कवि उक्त दोहा कहा है।)

२५. मान ..कोइ—सुक (शुक) = तोता। सारी (सारिका) = मैना पक्षी। गुणों से ही आदर होता है, विना गुणों के नहीं। सब लोग तोतों तथा मैनाओं को (प्रेमपूर्वक) पालते हैं, कव्वों को कोई भी नहीं पालता।

२६. आडम्बर...बँधाय—चाय = चाव, चाह। दिखावा छोड़कर चित्त के चाव से गुणों का संग्रह करना चाहिये। देखिए, चाहे घटी बंधवा कर लाइये तो भी दुग्धहीन गौ बिक नहीं सकती।

२७. जैसी सुगंध—दई (दैव) = विधाता। निबंध = मेल। विधाता ने जैसा गुण दिया है वैसे ही रूप का मिलना (असम्भव है)। सोना, और फिर उसमें सुगन्ध का होना यह दोनों बातें कहा पाई जाती हैं!

२८. अपनी...रेख—ठौर = जगह। लहत = पाते हैं। महावर = एक लाल रंग का पदार्थ जिसे सौभाग्यवती स्त्रियां पैरों मे लगाती हैं। (सब पदार्थ) अपने अपने स्थान पर ही विशेषतया सुशोभित होते हैं। देखिए महावर चरणों पर ही और काजल की रेखा आंखों में ही भली लगती है।

पृष्ठ ४६, दोहा २६. कुल...घात—(धात के स्थान पर "घात" पाठ चाहिये) घात = दांव, चाल। गढ़ = दुर्ग, क़िला। बनिक-पुत्र = बनिये का पुत्र। जिसकी जैसी वशपरम्परागत शक्ति होगी वह वैसी ही बात करेगा। दुर्ग विजय करने को बनिये का बेटा क्या जानेगा।

३०. जो...कोइ—दाता तो उसे ही कहना चाहिए जो (पात्र-अपात्र) सभी को देता है। देखिए, बादल भूमि का विचार नहीं करता, सपाट तथा ऊँची नीची भूमियों पर अर्थात् सब कहीं बरस पड़ता है। (इसलिए वही वास्तविक) दाता की पदवी का अधिकारी है।

३१ जो . चार—चार = चाल, गति। जो जिस बात को जानता है वह उसी को सोच विचार कर कह सकता। देखिए, ज्योतिषी रोगों को और वैद्य ग्रहों की गति को नहीं जानता।

३२. प्रकृत...जाय—प्रकृत (प्रकृति)=स्वभाव । स्वभाव समान होने पर ही मन मिल सकता है, असमान होने पर नहीं। देखिए, दूध दही (जाग) से तो जम जाता है और कांजी डालने से बिगड़ जाता है।

३३. स्वारथ जाहिं—सरस=हरा भरा । निरस=सूखा हुआ। मतलब पूरा करने के लिए सब अपने बनते हैं, बिना मतलब के कोई किसी का कुछ भी नहीं। जैसे, हरे-भरे वृक्ष पर तो पंछी टिके रहते हैं, परन्तु उसके सूखने पर उड़ जाते हैं।

३४. सुख ..उदोत—दिवस=दिन । निसि=रात। उदोत=उदय होता है। सुख के पश्चात दुख और दुख के पश्चात् सुख होता है। जैसे, दिन के बाद रात का और रात के बाद दिन का उदय होता है।

३५ पर . होति—पराए घर मे (बिना बुलाए) कभी न जाना चाहिए, (क्योंकि इस से) प्रतिष्ठा क्षीण हो जाती है। देखिए, जब चांद की कला सूर्य के मडल में जाती है (अर्थात् दिन के समय आकाश मे दिखाई देती है) तब उसकी शोभा मन्द पड जाती है।

३६. उत्तम ..चाल—होड=बराबरी। रसाल=मधुर (यहां श्रेष्ठ, सुन्दर)। श्रेष्ठ पुरुष की बराबरी करके नीच व्यक्ति उत्तम नहीं बन सकता; देखिए, कौआ कभी राजहंस की चाल नहीं चल सकता।

३७ या जग नाँव—सुभाव=सम्यक् विचार से। जनार्दन=मनुष्यो को खाने वाला। शंकर=कल्याणकारी। (मैंने) बुद्धिपूर्वक देख कर यह समझा है कि संसार की चाल उलटी ही रही है। क्योकि (लोग उपकारक) श्रीकृष्ण को जनार्दन (पुरुषों को खाने वाला) तथा हर (प्रलयकारी रुद्र) को शंकर (कल्याणकारी) कहते हैं।

३८ कलुष. .जाँय—कलुष=मैले, गन्दे। श्रेष्ठ लोग जहां पर गन्दे भाव देखते हैं वहाँ नहीं रहते; जैसे, राजहंस वर्षा ऋतु में (तालाबो को) त्याग कर और कहीं (निर्मल सरोवरों की ओर) उड़ जाते हैं।

३९ जिहिं.. हाथ—प्रसङ्ग=ससर्ग, सङ्गति । कलाली=मदिरा बेचने वाली। जिसके संसर्ग से कलङ्क लगता हो, उसकी सङ्गति छोड़ देनी चाहिए। देखिए, कलारिन (सुराविक्रेत्री) के हाथ मे दूध भी हो तो भी लोग उसे शराब ही समझते हैं।

४०. जाके...पानि—जिसकी सङ्गत से कलङ्क छिप जाएँ उससे मेल

जोल करना चाहिये, जैसे, ग्वालिन के हाथ में मद्य भी हो तो भी लोग उसे दूध ही समझते हैं।

४१. जिहिं ओर—जिसके दर्शन से कलंक लगे उसे देखना भी न चाहिये। जैसे, कोई चतुर्थी के चन्द्रमा की तरफ़ नहीं देखता।

(टिप्पणी—लोक में प्रसिद्ध है कि चतुर्थी का चांद देखने से चोरी माथे लगती है।)

४२. मूरख...उलूक—बिभौ (वैभव)=शोभा । यदि मूर्ख मनुष्य गुण को नहीं पहिचानता तो इसमें गुणी का कोई दोष नहीं। देखिए यदि दिन की शोभा को उल्लू नहीं देख सकता तो क्या हुआ। (इसमें दिन का तो कोई दोष नहीं)।

पृष्ठ. ४७, दोहा ४३. दुष्ट . चोट—पोखै=पालने पर। राखै ओट=रक्षा करने पर। दुष्ट मनुष्य दुष्टता का त्याग नहीं करता चाहे कोई उस का पालन-पोषण करे या उसे (कष्ट) से बचाए । देखिये, साप का कितना ही भला करो, वह चुपके से डस ही लेता है।

४४ होत . तयार—खाड=गढ़ा। यह बात निश्चित है कि (किसी का) अपकार करने से (अपना भी) अनिष्ट होता है। जो दूसरे के लिए गढ़ा खोदेगा उसके लिए भी कुआँ तैयार है।

४५. एक . समात—(साधु-संन्यासी आदि के) केवल वेष के द्वारा जाति-वर्ण आदि सब छिप जाते हैं, जैसे हाथी के पाँव में सब प्राणियों के पाँव समा जाते हैं।

४६ जाको...रात—जिसका जिस बात से मतलब पूरा हो जाता है, उस को वही बात भली लगती है। देखिए, चोर को अँधेरी रात जितनी प्यारी लगती है उतनी चादनी (रात) नहीं।

४७. कछु बिनास—दैव के आगे किसी की सहायता भी काम नहीं आती। देखिए, भीष्म तथा युधिष्ठिर जैसे धर्मात्माओं की विद्यमानता में भी कुरु-कुल का विध्वंस हो गया।

४८ अति जाय=वनराय=वृक्ष । बाकौ (वक्र)=टेढ़ा। मनुष्य बिलकुल सीधा न होना चाहिए। देखिए, जो वृक्ष सीधे होते हैं वे काटे जाते हैं और जो टेढ़े होते हैं वे बच जाते हैं।

४६, बहुतन...मान—नागहि=हाथी को। नग=पर्वत। बलवान्

को चाहिए कि बल-हीन जान कर बहुतो के साथ वैर न करे। (देखिए, बहुत सी निर्बल) चींटियां मिल कर पर्वत सरीखे हाथी को खा जाती हैं।

५०. कन ..तोय—('घट' के स्थान 'वट' पाठ चाहिए)। दाना-दाना जोडने से मन-भर (अनाज) इकट्ठा हो जाता है और (दाना-दाना) खाने से (मन भर) भी समाप्त हो जाता है। देखिए, बूँद-बूँद डालने से तो घड़ा भर जाता है और (बूँद-बूँद) टपकने से खाली हो जाता है।

५१ ऊँचे होइ—देवल = मंदिर। बायस (वायस) = कव्वा। कोई मनुष्य, गुणो के बिना, केवल ऊँचे आसन पर बैठने से, महत्ता प्राप्त नहीं कर पाता। देखिए, मन्दिर की चोटी पर बैठा हुआ कव्वा गरुड नहीं बन जाता।

५२. सांच. दोय—जो नीति-कुशल होता है वही सच-झूठ का निर्णय कर सकता है। देखिए, राजहँस के बिना दूध और पानी को कौन पृथक्-पृथक् कर सकता है।

५३ जे होय—पर = पराये, दूसरे। पिक-सुत = कोयल का पुत्र। यह बात समझ लीजिए कि पराए पराए ही रहते हैं। उन मे से कोई अपना नहीं हो सकता। देखिए, कोयल के बच्चे का पालन-पोषण (चाहे) कव्वा ही करता है तो भी वह कव्वा नहीं बन जाता।

५४ क्यो तोय—तोय = पानी। जिस परिश्रम से कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती उसे नहीं करना चाहिये। देखिए. पर्वत पर कुआं खोदने से पानी नहीं निकल पाता।

५५ सेयौ . जाय—सेयौ = सेवित। गरज = मतलब। सराय = सिद्ध हो जाय। उस छोटे की सेवा भी अच्छी जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाये। उस सागर को क्या करे जिससे प्यास तक भी नहीं बुझती।

५६ जो.. अरधग—अङ्ग = शरीर (यहा पर मन)। बड़े मनुष्य मन मे निडर होते हैं, (इसी लिए) जो चाहते हैं कर गुजरत हैं। देखिए नंग धडंग शिव जी सब के सामने ही पार्वती को अपने आधे शरीर मे धारण कर लेते हैं।

टिप्पणी—शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की ओर संकेत है।

पृष्ठ ४८, दोहा ५७ वड़ .ईस—कुलीन लोग जरा सी बात से भी प्रसन्न हो कर पारितोषिक दे देते हैं। जैसे, विष्णु जी तुलसी के पत्तों से

और शिव जी आक तथा धत्तूरे (से ही प्रसन्न हो वरदान दे देते हैं।)

५८. सुधरी ..न—वेग ही = शीघ्र ही । बनी बात झट बिगड़ जाती है परन्तु बिगड़ जाने पर फिर नहीं सुधरती । देखिए, कांजी पड़ जाने से दूध (झट) फट जाता है परन्तु फिर वह दूध नहीं बनता ।

५६ सहज. .देत—['रसा नौ' के स्थान 'रसीलो' पाठ चाहिये] रसीलो = रसभरा, (यहां श्रेष्ठ पुरुष) । ऊख = गन्ना । स्वभाव से श्रेष्ठ पुरुष की यदि बुराई भी की जावे तो भी वह उपकार ही करता है । जैसे, गन्ना पेला जाने पर भी रस ही देता है ।

६० कहा .होइ—प्रकृति = स्वभाव । सानै = भिगोना । कोई कितना ही यत्न क्यों न करता रहे, उस से किसी का स्वभाव नहीं बदल सकता । देखिए, चिकनाई से सदा लिप्त रहने पर भी जिह्वा चिकनी नहीं होती ।

६१. जदपि...ठौर—सहोदर = भाई । प्रकृत (प्रकृति) = स्वभाव । चाहे सगे भाई भी हों तो भी स्वभाव भिन्न भिन्न ही होता है । देखिए, एक ही स्थान से उत्पन्न होने पर भी (सगे भाइयों के सदृश होने पर भी) विष (जीवतों को) मार देता है और अमृत (मुर्दों को भी) जिला देता है ।

६२ भेष ..होय—सयार = गीदड । वीरों जैसा वेष धारण करने मात्रा से ही भीरू सूरमा नहीं बन जाता । देखिए, गीदड शेर की खाल पहिन लेने पर भी शेर नहीं बन पाता ।

६३ सब करतार—सार = जड़, मूल (यहा जरा भी) । इस बात में जरा भी झूठ नहीं है कि मांगना सब से तुच्छ काम है । देखिए, जगत्कर्त्ता (विष्णु) ने ज्यों ही बलि से (तीन पग भूमि) मांगी त्यों ही वह बौने बन गए ।

६४. बडे .नीर—श्रेष्ट जन कुल की प्रतिष्ठा को नष्ट नहीं करते परन्तु धीरज-रहित नीच लोग उसे नष्ट कर देते हैं । देखिए, समुद्र तो मर्यादा का त्याग नहीं करता, परन्तु नदियों का पानी (बरसात आदि में) किनारे तोड कर बहने लगता है ।

६५ नाम भुवाल—(केवल) सुन्दर नाम से ही कोई अच्छा नहीं बन सकता । अच्छा वही होता है जिस का भाग्य अच्छा होता है ।

देखिए, 'लक्ष्मी' नाम वाले तो भीख माँगते फिरते हैं और 'भूखा' नाम वाले राजा बने बैठे हैं।

६६. काम ..कोय—मनुष्य की प्रकृति का पता काम पड़ने पर ही लगता है। देखिए, गहना खरा है या खोटा, यह उसे तपाए बिना कोई नहीं जान सकता।

६७ चतुर...माहिं—कूर = अज्ञ, मूढ। विद्वानो की मंडली मे मूर्ख मनुष्य शोभा नहीं पाता। जैसे, हंसो के झुंड मे बगला शोभा नहीं देता।

६८. मिलै .छार—छार = धूल। श्रेष्ठो की सङ्गत मिलने पर भी नीच मनुष्य नीचो से प्रेम करता है। देखिए, गधे को गंगा में भी नहलाएं तो भी वह धूल (में लोटना) नहीं छोड़ता।

६६ बात...नाहिं—कूप = कुआँ। प्रेम की बात उसी प्रकार अपने मन मे रखनी चाहिए जिस प्रकार कुएं की परछाहीं बाहर नहीं निकलती।

७० जहां...अधिकार—बर = बड़ (बोहड)। जहां बुद्धिमान मनुष्य नहीं होते वहाँ मूर्खो से ही काम चलाना पडता है। देखिए, जहाँ बड़ और पीपल नहीं होते वहा एरंड ही बड़ा माना जाता है।

पृष्ठ ४६, दोहा ७१. यथा...माहिं—कथीर = रांगा। कनक = सोना। योग्यता के अनुसार स्थान न मिलने पर मनुष्य शोभा नहीं पाता। जैसे, रांगे मे (जडा हुआ) रत्न और सोने मे (जड़ा हुआ) कांच (शोभा नहीं देता)।

७२ उद्दिम . काज—उद्दिम (उद्यम) = पुरुषार्थ। जब पुरुषार्थ (का बल) ज्ञान के बल से मिल जाता है तभी (मनुष्य) सुख की सामग्री प्राप्त करता है। जैसे, लङ्गडा अन्धे के कन्धे पर चढ़ कर सब काम सिद्ध कर लेता है (अर्थात् अन्धे का पुरुषार्थ तथा लङ्गड़े का ज्ञान दोनो मिल कर अभीष्ट सिद्धि करते हैं)।

७३ दुष्ट पात—('वर' के स्थान पर 'वेर' कर ले) दुर्जन के पास नही रहना चाहिए। रहना भी पड़े तो उससे बात न करनी चाहिए अर्थात् मेल-जोल न बढाना चाहिये। देखिए, बेरी के साथ रहने से, उसके कांटो से केले के पत्ते कट जाते हैं।

७४. तिनके बिलाय—कार्य उन्हीं के सिद्ध होते हैं जिनकी सहायता बड़े लोग करते हैं। देखिए, पांडव इसी कारण जीते कि श्रीकृष्ण उन

के पक्ष में थे। (श्रीकृष्ण की सहायता न पाने से) कौरव नष्ट हो गए।

७५. अरि . अँगार—जो हानि पहुँचा सकता है उस शत्रु को छोटा मत समझिए। देखिए, ज़रा सी चिंगारी घास के ढेर को क्षण-भर में जला डालती है।

७६. सब देखै होइ—मनुष्य और तो सब कुछ देखता है पर अपना दोष कोई नहीं देखता। देखिए, दिया (सब ओर) प्रकाश कर देता है पर (उसके अपने) नीचे अन्धेरा ही रहता है।

७७ संत ..दीप—श्रेष्ठ लोग स्वयं कष्ट सह कर भी पास रहने वालों को सुखी रखते हैं। देखिए, दीपक चाहे आप जलता रहता है तो भी दूसरो के लिए प्रकाश कर देता है।

७८. मारै . दोय—एक ही वंश मे जन्म लेकर भी (दो व्यक्तियों मे से) एक मारता है और एक बचाता हैं। जैसे, एक ही लोहे से बनी हुई कृपाण तो मार डालती है और ज़िरहबक्तर रक्षा करता है।

७९. अपनी नाव—अपने-अपने स्थान पर सब का दाँव लग जाता है अर्थात् सब बड़े होते हैं। देखिए, पानी में गाडी नाव के आश्रय से ही पार पहुँचती है और स्थल पर नाव गाडी पर रखकर ही कहीं ले जाई जाती है।

८० बडे . डारि—तजत = छोडते। धरा = पृथ्वी। धर धरै = हृदय की धड़कन से। श्रेष्ठ लोग (किसी कार्य का) भार अर्थात् उत्तरदायित्व लेकर उसे अवश्य पूर्ण करते हैं, कष्ट का विचार करके (बीच मे ही) छोड नहीं देते। देखिए, शेषनाग ने भूमि को उठा कर, हृदय की धडकन के कारण, अब तक उसे नीचे नहीं रख दिया।

८१ ..ताहिं—दुष्ट से दङ्गा नहीं करना चाहिए। उसे बाहिर से सुख दिखा कर अन्दर से दु.ख पहुँचाना चाहिये। जो गुड खिलाने से ही मर सके, उसे जहर क्यों खिलाया जाय ?

८२ फिर दूध—मति सूध = शुद्धमति, बुद्धिमान्। तातो = गरम। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि ऐसी बात न करे जिससे पीछे पश्चात्ताप करना पड़े। देखिए, गरम दूध पीने से मुख, जिह्वा तथा हृदय (पेट) जल जाते हैं।

८३ को जोर—ध्वजा = झण्डा। मनुष्य को सुख तथा दुःख

(दूसरा) कौन देता है ? (कोई भी नहीं)। (उसके अपने) कर्म ही उसे झंझोरते हैं। जैसे, वायु के वेग से झण्डा अपने आप ही उलझता-सुलझता रहता है।

८४. कायर .जाय—चटक = कान्ति। युद्ध को देख कर भीरू मनुष्य का मुख फीका दिखाई देने लगता है अर्थात् रंग फ़क हो जाता है। जैसे, धूप मे (वस्त्रादि के) कच्चे रंग की कान्ति चटपट नष्ट हो जाती है।

पृष्ठ ५०, दोहा ८५. विनसत . भीति—बार = देर। अम्बर-डंबर = सन्ध्या की लाली। बारू (बालू) = रेत। भीति = दीवार। क्षुद्र मनुष्य के प्रेम को नष्ट होते देर नहीं लगती। जैसे, सायकाल आकाश की लाली तथा रेत की दीवार (तुरन्त ही नष्ट हो जाती है)।

८६. कुल. .पात—बिरवान = वृक्षों। सुन्दर लक्षणों से युक्त शरीर देख कर कुलीन सत्पुत्र पहिचाना जाता है। देखिए, जिन वृक्षों को भविष्य में खूब फूलना-फलना होता है, उनके पत्ते चिकने होते हैं।

८७ बिना अभीति—तनय = पुत्र। अभीति = निडरता से। जिस कुल की जो रीति होती है, (बच्चा उसे) बिना सिखाए ही ग्रहण कर लेता है। देखिए, शेरनी का बच्चा उत्पन्न होते ही हाथी पर निडरता से आक्रमण कर देता है।

८८. बहुत उठाय—बहुत बाते न बनानी चाहिएं। उचित अवसर पाकर कार्य कर देना चाहिए। देखिए, बगला वैसे तो चुप ही रहता है पर दाँव लगने पर झट मछली पकड़ लेता है।

८९. का.. रसबुभाग—रस = प्रेम। जिनि = मत। पतियाय = विश्वास करे। शत्रु चाहे प्रेम करे चाहे क्रुद्ध हो, उस पर विश्वास न करना चाहिए। जैसे, पानी चाहे ठण्डा हो चाहे गरम, आग को तो बुझा ही डालता है।

९० अतर...कोय—सच तथा झूठ में चार अंगुल भर का अन्तर होता है, अर्थात् बहुत थोड़ा फर्क होता है। (स्वय) देख कर कही हुई बात पर सब विश्वास करते हैं परन्तु सुनी-सुनाई को कोई नहीं मानता।

(टिप्पणी:—सच तथा झूठ मे चार अंगुली के फासले का एक अर्थ यह भी है कि आंखो देखी बात सच तथा कानो सुनी झूठ होती है। माप

कर देखें तो आंख के कोने से कान तक फासला भी चार-अंगुली मात्र का ही होता है ।)

९१ जोर...बुझाय—जोर = हानि । भोडर = अभ्रक, अबरक । यदि बलवान् सहायक हो तो निर्बल को कोई हानि नहीं पहुँच सकती। देखिए, अबरक की फ़ानूस मे (जलते हुए) दीपक को वायु नहीं बुझा सकती ।

९२. होय जोय—सज्जन के घर कुपुत्र भी होता है और दुर्जन के घर सुपुत्र भी । देखिए, (उज्ज्वल) दीपक से (काला) काजल उत्पन्न होता है और (गन्दे) कीचड से (सुन्दर) कमल ।

९३ सब सीति—विनाश के काल मे सब की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । देखिए (विनाश-काल में बुद्धि भ्रष्ट होने पर विद्वान्) रावण सीता को चुरा ले गया और श्रीराम द्वारा मारा गया ।

९४ झूठे जाहिं—धन = धान । यत्न यदि झूठ-मूठ भी किया जाए तो भी काम नहीं बिगडता । देखिए धान के खेत पर कृत्रिम या बनावटी पुरुष को देख कर पशु भाग जाते हैं (और फसल बच जाती है)।

९५. होत...छाज—समाज = सब, समुदाय । अपना गुजारा तो होता नहीं तिस पर भी साथी-सघातियों को साथ लिए फिरते हैं । (यह तो वही बात ठहरी कि) चूहा अपने आप तो बिल में समाता नहीं, उसकी पूँछ के साथ छाज और बाँधा जा रहा है ।

९६ जिहि ..आय—निहचै = निश्चय । तितौ = उतना । दई (दैव) = विधाता । सक्कर खोरे = शक्कर खाने वाले को । जिस का जिस बात मे जितना निश्चय होता है, विधाता उसे उतना ही पहुँचा भी देता है । जैसे शक्करखोरे को शक्कर (कहीं न कहीं से) अवश्य मिल जाती है ।

९७ जानै दंत—विरतंत = वृत्तांत, बात । जो आरभ से समाप्ति पर्यन्त समस्त वृत्तांत को (स्वयं) जानता है, वह भला (किसी से) क्यों पूछेगा । क्या घर में उत्पन्न हुए पशु के दांत भी कोई देखता है ? (कोई नहीं)

(टिप्पणी—लोग पशुओं की आयु उनके दान्तों से जान जाते हैं । परन्तु घर मे उत्पन्न हुए पशुओ की आयु तो हमे वैसे ही विदित होती है ।)

९८ कहवौ...होय—दुरद (द्विरद) = गज । रद = दात । जगत् की

चाल-दो प्रकार की है अर्थात् कहना कुछ और, तथा करना कुछ और। जैसे, हाथी के दांत खाने के और, तथा दिखाने के और होते हैं।

पृष्ठ ५१, दोहा ६६. जो...विचार—पहले निश्चय करके जो कहिए उसे कीजिए। पानी पी कर घर (जाति-वर्ण आदि) पूछना अच्छी बात नहीं है।

१००. पीछे...बार—पहिले उपायों का विचार करना चाहिए, पीछे काम करना चाहिए। पूर्वजों का कथन है कि (खेत में) पानी (छोड़ने) से पहिले बाड़ लगानी चाहिये (ताकि वह जल बाहिर ही न बह जाए)।

[टिप्पणी—उत्तरार्द्ध का दूसरा अर्थ यों भी हो सकता है। बड़े लोग कहते हैं कि (बाढ़ का) पानी आने से पहले ही (गांव आदि की रक्षा के लिए) बांध वांध लेना चाहिए।]

१०१. झूठ...लौन—झूठ (अत्युक्ति आदि) के बिना बात नीरस प्रतीत होती है, परन्तु अधिक झूठ बोलना भी दुःखदायक होता है। झूठ इतना ही बोलना उचित है जितना आटे में नमक डालते हैं।

१०२. ठौर...सॉप—वांबी = साप का बिल। ('सूधो' के स्थान पर 'सूधौ' कर ले)। परिस्थिति के अनुसार अपनी चाल टेढ़ी या सीधी रक्खे; जैसे, सांप बाहिर तो टेढ़ा चलता है बिल मे जाते समय सीधा हो जाता है।

१०३. आप...हाथ—दुर्बुद्धि मनुष्य की सगति से मनुष्य अपना काम आप बिगाड लेता है। जैसे, मूर्ख मनुष्य अपने हाथ से अपने पांव पर कुल्हाडी मार बैठता है।

१०४ भले...तोष—भद्र-जन (लोगों की) भली बातों का ही बखान करते हैं, त्रुटियो का नहीं। देखिए, नेत्र-हीन को सूरदास कहा जाय तो उसे प्रसन्नता ही होती है (क्रोध नहीं)।

१०५. सदा प्रभाव—सुथान—अच्छी पदवी। महिमा सदा ऊँची पदवी (कुर्सी) की है। (व्यक्तिगत) शक्ति को मुख्य मत कहिए, देखिये, शिवजी महाराज की छाती का हार बनने के कारण सांप गरुड़ को (उलटा) डराने लगता है।

१०६. भले...कोय—बंस (वंश) = कुल। संतति = सन्तान। अच्छे कुल की सन्तान भी अच्छी ही होती है, नीच कभी नहीं होती। जैसे, सोने की खान मे शीशा कभी उत्पन्न नहीं होता।

१०७. करैं...मृगराज—मृगराज = सिंह । वीर मनुष्य कभी दीनों-हीनों जैसे काम नहीं करता । देखिये, सिंह भूख (के कष्ट को) सह लेता है परन्तु घास नहीं खाता ।

१०८. छोटे ..तोय—छोटे मनुष्य बड़ों का कभी भी अपकार नहीं कर सकते । जैसे फूस की आग समुद्र के जल को तपा नहीं सकती ।

१०९. नीचहु...भाय—क्षुद्र मनुष्य श्रेष्ठों के साथ मिल कर श्रेष्ठ हो जाता है । जैसे, गन्दा जल गंगा में मिल कर गंगा के जल के तुल्य ही माना जाता है ।

११०. ऊँचे .जात—पात = पतन । गिरि = पर्वत । छोटा मनुष्य ऊँची पदवी पाकर शीघ्र ही गिर जाता है (पद-च्युत हो जाता है) । देखिये, (स्वभावतः नीच गति) जल (पहिले) बादल से पर्वत पर गिरता है (और फिर) पर्वत से भी नीचे लुढक जाता है ।

१११ मधुर ..उफान—श्रेष्ठ पुरुषों का अभिमान मीठी वाणी से शांत हो जाता है । जैसे, जरा सा ठण्डा पानी डालने से दूध का उबाल शांत हो जाता है ।

११२. अति ..तोय—तोय = पानी । बड़े लोगों की हृदय की विशालता का कोई कहा तक बखान करे । देखिये, पपीहा तो बादल से जरा सा जल मांगता हैं परन्तु (उदार) बादल जल बरसा कर (सारी पृथिवी को, भर देता है ।

पृष्ठ ५२, दोहा ११३. औसर. काम—सेतबन्ध = पुल । उचित समय निकल जाने पर उपाय करना अच्छा नहीं होता । जैसे पानी निकल जाने पर पुल बाधना व्यर्थ होता है ।

११४. कहूँ कीर—कीर = तोता । कहीं-कहीं तो गुणों से शरीर को अधिक दुःख ही होता है । जैसे, तोता मीठी वाणी बोलने के कारण ही पिंजरे में कैद हो जाता है ।

११५. हीन...आय—रजहू = धूल को । (किसी को) छोटा समझ कर उसके साथ वैर न करना चाहिए । वह (छोटा भी) शरीर को कष्ट देता है । धूल को भी ठोकर मारे तो वह भी आकर सिर पर सवार हो जाती है ।

११६. दूर ..तोय—नियरै = निकट । धुर = आरम्भ (यहां मूल) । नालेर = नारियल । क्या दूर और क्या समीप, होनहार नहीं टलती ।

देखिये, सींची तो नारियल की जड़ जाती है पर जल उस के फल में जा प्रकट होता है।

११७. आए = जाय—(जो मनुष्य घर में) आए हुए का सत्कार नहीं करता और (उसके रूठ जाने पर) पीछे मनाता फिरता है (उस के सम्बन्ध में यह उक्ति खूब फबती है कि घर मे) आए हुए सर्प-देवता को तो पूजता नहीं और उसे पूजने उसके बिल पर जाता है।

११८ देखत = परतीति—परतीति (प्रतीति) आभास । दुष्ट मनुष्य का प्रेम मुँह पर (सामने रहते हुये ही) होता है। वह वैसे ही दिखावा-मात्र है, वास्तविक नहीं, जैसे मृग-मरीचिका मे हिरन को जल का आभास मात्र होता है, वस्तुतः जल होता नहीं।

११६ द्वै हो...विलाय—भाय = भाव (यहा, सदृश-भाव)। बिलाय नष्ट हो जाती हैं। मालती के फूल के समान बडे लोगो की दो ही रीतिया होती हैं। मालती के फूल या तो श्रीकृष्ण (की मूर्ति) के सिर पर विराजते हैं या जंगल मे मुरझा जाते हैं । इसी प्रकार महापुरुष भी या तो नगरो मे नेता बनकर या वनों मे विरक्त होकर जीवन बिताते है।

१२०. खाय पछताय—मधु मच्छिक = शहद की मक्खी । कजूस मनुष्य न धन को खाता है न खर्चता है । (उसका सब धन) चोर ले जाते है। पीछे (वही कजूस) शहद की मक्खी की मानिंद हाथ मल-मल कर पछताता है।

१२१ जैसो बसाय—अहि = सर्प। अनल = आग। चख (चक्षु) = नेत्र। जैसा-जैसा गुण उत्कृष्ट होता है, वैसा वैसा (गुणी को) पद भी ऊँचा प्राप्त होता है। देखिये, सांप शिवजी की छाती पर, जहर गले में, आग आंख में तथा चन्द्रमा मस्तक पर रहता है।

[व्याख्या—उपर्युक्त चारो पदार्थों मे साप से विष, विषसे अग्नि तथा अग्नि से चांद अच्छा है। इस लिये इनको स्थान भी क्रमशः ऊँचा ही मिलता गया है। सांप तो कहीं से आकर भी डस जाता है परन्तु विष अपनी भूल आदि से ही खाया जाता है। अग्नि जला तो बेशक देती है परन्तु साथ ही उपकारक भी है अतः पूर्वोक्त दोनो से अच्छी है। चांद हानि नहीं पहुँचाता, अमृत ही बरसता है, अत. सर्वोत्तम है और परिणा-मतः शिवजी के माथे पर विराजमान है।]

१२२. दान...शरीर—दान कंगाल को ही देना चाहिये ताकि उसका कष्ट दूर हो। दवाई उसको देनी चाहिए जिसका शरीर रोगी हो।

१२३. सबैसों. .खात—(कोई भी) बात सबसे आगे होकर कभी न करनी चाहिये; क्योंकि यदि कार्य सुधर जाय तब तो उसका फल सब को समान मिलता है, परन्तु बिगड़ जाय तो (आगे बात करने वाले को ही) गालियाँ खानी पड़ती हैं।

१२४ उत्तम .कोय—अपावन=अपवित्र। श्रेष्ठ विद्या यदि क्षुद्र मनुष्य के पास हो तो भी ग्रहण कर लेनी चाहिये। देखिये, सोना अपवित्र स्थान पर भी पड़ा हो तो उसे कोई नहीं छोड़ता।

१२५. दुष्ट वसाय—ऊँची पदवी पाकर भी दुष्ट अपनी बुराई नहीं छोडता। देखिये, जहर शिवजी के गले में रह कर भी अपनी कालिख नहीं छोड़ता।

१२६. कहा...न—आगम निगम=वेद शास्त्र। जो मूढ समझ ही न सके उसे वेद-शास्त्र क्या समझाएँ। यदि अन्धा मनुष्य मुख नहीं देख सकता तो इसमें शीशे का क्या दोष है?

पृष्ठ ५३, दोहा १२७. नृप...खाय—झख (झष)=मछली। केहरि =शेर। खग=पक्षी। धनवान् मनुष्य, राजा, चोर, पानी तथा अग्नि से डरता है, जैसे, मास को पानी में मछली, पृथिवी पर सिंह और आकाश में पक्षी खा जाता है!

१२८. वड़े निकारि—निहचै=निश्चय से। निःसंदेह बडे लोग बड़ों को संकट से बचा लेते हैं। जैसे, (एक) हाथी को कीचड़ में से (दूसरा) हाथी निकाल लेता है।

१२९ छोटे. मँजार—अरि=शत्रु। उपचार=उपाय। मँजार (मार्जार)=बिल्ला। साधारण शत्रु को साधारण उपाय से ही वश में लाना चाहिये। देखिए, चूहे को शेर तो नहीं मार सकता परन्तु बिल्ला मार डालता है।

१३०. बुरौ...मलीन—लीन=स्थित। श्रेष्ठ स्थान पर विद्यमान बुरी वस्तु भी भली लगती है। देखिए, काजल काला होता है तो भी स्त्रियों की आँखों में सुंदर प्रतीत होता है।

१३१. विना कोय—अवज्ञा=अपमान। तेज-हीन मनुष्य का

अवश्य निरादर होता है। जैसे, आग बुझ जाने पर राख छूने में कोई नहीं डरता।

१३२. जहाँ...उदोत—गुणी मनुष्य जहाँ रहता है वहीं उसकी शोभा होती है (अर्थात् कीर्ति फैलती है)। देखिये, दीपक को जहा भी रखिये वहीं पर अवश्य प्रकाश कर देता है (और प्रशसा पाता है)।

१३३ जानि...जगाय—अजगुत (अयुक्त) = अनुचित बात। जो मनुष्य जान बूझ कर अन्याय्य का आचरण करे उसके आगे क्या बस चल सकता है, जो जागते हुए भी सोने का ढोंग करे उसे कौन जगा सकता है।

१३४. विद्या...विहीन—बास = गन्ध। सुन्दर तथा कुलीन व्यक्ति भी गुणों के बिना शोभा नहीं पाते; जैसे, सुगन्ध-रहित पलाश का फूल शोभा नहीं पाता।

१३५ एकहि ..बसाय—बसाय = सुगन्धित हो जाता है। एक ही अत्युत्तम पुत्र से सब वंश का यश बढ़ जाता है। जैसे, एक ही हरे-भरे सुगन्ध-युक्त पेड़ से सारा जंगल सुगन्धित हो उठता है।

१३६. क्षमा .जाय—जो क्षमा-रूपी तलवार लिये रहते हैं उन पर दुष्टों का क्या जोर चल सकता है ? देखिये, घास-पात-रहित जगह पर पड़ी हुई आग अपने-आप बुझ जाती है।

१३७. एकै...बसाय—जिस के आराम करने का स्थान केवल एक ही हो वह उसे छोड कर कहां जा सकता है। जैसे जहाज का पक्षी उड़-उड़ कर फिर वहीं आ रहता है।

१३८. गूढ .रहै न—गरुवे = गुरु (गम्भीर) व्यक्ति। हेम = सोना। गोपनीय बात को गम्भीर व्यक्ति के सिवा कोई (छिपा कर) नहीं रख सकता। जैसे, बाघिनी का दूध सोने के बरतन के सिवा किसी और धातु के बरतन मे नहीं रह सकता।

१३९. मूरख ..ओप—कोप = क्रोध। ओप = चमक (यहा वृद्धि)। मूर्ख मनुष्य को कल्याणकारिणी वाणी सुनकर क्रोध ही आता है; जैसे, साप को दूध पिलाएँ तो उसके मुँह मे जहर ही बढ़ता है।

१४०. हाँ . भौंर—जहां भले जन होते हैं वहाँ प्रेम होता है और जहां प्रेम रहता है वहीं सुख रहता है। जैसे जहां फूल होते हैं वहां सुगन्ध रहती है और जहाँ सुगन्ध रहती है वहीं भँवरे भी रहते है।

पृष्ठ ५४, दोहा १४१. देत . पात—दुजहि = द्विज (सुदामा) को। त्रिपत = तृप्त। बात यह है कि यदि हम कुछ भेंट न दे तो भगवान् भी हमें कुछ नहीं देते और यदि हम दें तो वे भी देते हैं। देखिये, भगवान कृष्ण ने चावल लेकर ब्राह्मण (सुदामा) को धन दिया था और साग खाकर मुनि विदुर को तृप्त कर दिया था।

१४२ यथा आवास—श्रीपति = श्रीकृष्ण। आवास = भव धाम। जिसके पास जो कुछ होता है वह उसमें से शक्ति के अनुसार ही दे सकता है। देखिए, ब्राह्मण (सुदामा) ने तो (केवल) चावलो के दाने दिये और श्रीकृष्णचन्द्र ने धन-धाम।

१४३. जोरावर . सिपाह—बलवान् मनुष्य सब के सिरों के ऊपर अपना मार्ग बना लेता है। देखिये, श्रीकृष्ण तो रुक्मिणी को बलपूर्वक ले गये और (विरोधी) सिपाही देखते ही रह गये।

१४४. काहू . निरमूल—किसी से परिहास नहीं करना चाहिये, परिहास के कारण ही कौरव-वश का जड़ से नाश हो गया।

१४५. जग...कोय—परतीति (प्रतीति) = विश्वास। साखि = साची, गवाही। संसार में (अपना) विश्वास बढाना चाहिए और सच्चे बनकर रहना चाहिये। देखिये, झूठे मनुष्य की सच्ची गवाही पर भी कोई विश्वास नहीं करता।

१४६. रूखे दुष्ट—रूखे सूखे भोजन से भर कर पेट तो सन्तुष्ट हो जाता है, परन्तु यह मन इतना दुष्ट है कि लाख-करोड़ (रुपया) पा लेने से भी प्रसन्न नहीं होता।

१४७ कहे नीर—धैर्यवान सत्पुरुष कहे हुए वचनों को नहीं बदलते। सब कहते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र ने नीच के घर मे (अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए) जल भरा।

१४८. मति . सीत—राजा तथा दरिद्र दोनों की बुद्धि संकट के समय समान रूप से भ्रष्ट हो जाती है। देखिए, श्री राम (जैसे बुद्धिमान नृप) सोने के हिरण के पीछे भागे और सीता गंवा बैठे।

१४९ प्यारी . सुहात—सब प्रिय बातें भी समय बीत जाने पर अप्रिय लगती हैं। देखिए, जो धूप सरदियो मे अच्छी लगती है वही गर्मियो में बुरी।

१५०. आप...नाव—अबर=और को । उत्साही (सज्जन) काठ की नौका के समान आप भी तर जाता है और दूसरो को भी तार जाता है। परन्तु (उत्साह-हीन दुर्जन) पत्थर की नाव के समान आप भी डूबता है और दूसरो को भी डुबो देता है।

१५१. जूवा ..बनवास—जूआ खेलने से सुख तथा धन नष्ट हो जाता है। देखिये, जूए से ही राजा नल का राज्य चला गया और पांडवों को बनवास भोगना पड़ा।

१५२. सरसुति...जात—सरसुति=विद्या। सरस्वती (विद्या) के कोष की महिमा कैसी अभूतपूर्व है। वह कोष जितना अधिक खर्च करें उतना ही बढता है और यदि खर्च न करें तो कम हो जाता है।

१५३. देखा...संसार—सब अन्धाधुन्ध अनुकरण करते हैं, वास्त-विकता का विचार कोई नहीं करता। इस से तो यही अनुमान होता है कि संसार भेड-चाल ही चलता है।

१५४. चले...पाय—पिपीलिका=चींटी। समुद (समुद्र)=सागर। पंडहु=मार्ग। मार्ग पर यदि चलने लग पड़े तो चींटी भी समुद्र पार कर जाती है और यदि न चले तो गरुड़ भी मार्ग पर एक पग तक नहीं चल-सकता।

पृष्ठ ५५, दोहा १५५. भले...विचार—उपकारी लोग भलों तथा बुरों दोनों का उपकार करते हैं। देखिए, वृक्ष दुष्ट-श्रेष्ठ का विचार छोड़ कर सब ही को छाया देते हैं।

१५६. करियै..बिनास—मुख से ऐसे ही शब्द निकालने चाहिये जो सभा को अच्छे लगें। अविचार-पूर्वक बोले हुए शब्दों के द्वारा शिशुपाल मारा गया था।

१५७ सरस होइ—दुति (द्युति)=प्रकाश। समय पाकर सभी बढते या क्षीण होते हैं। देखिये, दिन के समय सूर्य तो खूब चमकता है तथा चांद का प्रकाश क्षीण हो जाता है।

१५८ बाँके...कोय—(प्रथम चरण मे 'बांके नर के होत हैं' पाठ चाहिए)। बन्दनीक=बन्दना करने वाले। लोय=लोग। सब लोग टेढ़े (मायावी) मनुष्य की ही वन्दना करते हैं (सरस की नहीं)। देखिए, (लोग) दूज के (टेढ़े) चांद को ही नमस्कार करते हैं, पूर्णिमा के

हिंडोले आदि अनेक ग्रन्थ मिले हैं । प्राय: इनका विषय प्रेम ही है । ये स्वयं भी प्रेमीजन थे इस लिए इनकी कविता से प्रेम की तन्मयता झलकी पडती है । कहीं-कहीं इनका प्रेमवर्णन सुरुचि का अतिक्रमण कर अश्लील हो गया है । भावों को झलकाने में इन्होंने बडी सूक्ष्म बुद्धि का व्यवहार किया है । कहीं-कहीं तो इन के दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं ।

प्रेम के अतिरिक्त इन्होने नवीन वेदान्त के भावों को भी अपने दोहों में खूब भरा है । इन के विचारानुसार समस्त संसार ही ब्रह्म-रूप है । हिन्दु-मुस्लिम-ऐक्य के विषय में भी इन्हों ने एकाध उक्ति लिखी है । विचित्र निरुक्तियों को इन्होने अपने अनेक दोहों का आश्रय बनाया है । इन्होंने अपनी रचनाएं ब्रजभाषा मे ही कीं और यमक, श्लेष आदिक अलङ्कारों का अच्छा प्रयोग किया है ।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ

पृष्ठ ५८, दोहा १. लसत . गनेस—लसत = शोभा देता है । सिंधुर-बदन = हाथी के मुँह वाले, गजानन, गणेश । भालथली = मस्तक । नखतेस (नक्षत्रेश) = चन्द्रमा । ['गौरी ननय' के स्थान पर 'गौरी-तनय' पाठ चाहिये] । हाथी के मुँह वाले, बाधानाशक, कल्याणकारी, पार्वती-पुत्र सुन्दर गणेश जी के माथे पर चन्द्रमा शोभा देता है ।

२. नमो मोहि—परमार्थी = तत्व को ढूँढन वाला । हे प्रेम-परमार्थी (गणेश जी) मैं आप को नमस्कार करता हू और तुम से यही माँगता हूँ कि मुझे श्रीकृष्ण जी के चरणो से मिला दीजिए ।

३. निसि...लाज— हे दीनबन्धो, हे कमलनेत्र, जो रात-दिन (सदा) तेरा यशोगान करते रहते हैं, उन पुत्र-रूपी भँवरों की लाज तेरे ही हाथ है ।

४. अब तो .आधार—नातर = अन्यथा, नहीं तो । कुनार = कुव्य-वस्था, गड़बडी । तारन-तरन = तारने वालों को भी तारने वाला । हे प्रभो, अब तो तुम्हे मुझे तारना ही पडेगा । नहीं तो सब मामला बिगड़ जायगा । तारने वालो को भी तारने वाले (परमोद्धारक) तुम्हीं हो । मेरे एक मात्र आश्रय भी तुम्हीं हो ।

५. अद्भुत...नसात—साँवरो (श्याम) = श्रीकृष्ण । उर को तिमिर = हृदय का अन्धेरा (अज्ञान)। रसनिधि कहते हैं कि सरस प्रेम की भी कैसी आश्चर्यमयी बात है कि ज्यों ही साँवला (श्रीकृष्ण) मन मे आता है त्यों ही हृदय का (अज्ञान-रूपी) अन्धेरा नष्ट हो जाता है।

६ कै इक .साँच—कै इक = कई एक, कितने ही । रिझवार = रीझने वाला। चाहे कितने ही रूप धार कर अनेक प्रकार से नाचो वह रीझने वाला (सत्यप्रेमी भगवान्) हृदय की सचाई बिना (तुम पर) रीझ नहीं सकता। (भाव यह है कि भगवान् की कृपा-दृष्टि पाने के लिए मन की सत्यता अनिवार्य है)।

७ जाकौ ..साखि—अगति = कुमार्ग। भागवत = भगवान् के भक्त, भक्तों का एक सम्प्रदाय। साखि = साक्षी। भगवान जिसे तारना चाहते हैं उसे कुपथ-गमन से बचा लेते हैं। रसनिधि कहते हैं कि भागवत भक्त इस बात के गवाह या समर्थक हैं।

८. धनि...नन्द—वे गोपियां, गोप, यशोदा तथा नंद सौभाग्य-शाली थे जिनके मन के सामने परमानंद (श्रीकृष्ण) दौड़ते फिरते थे।

९ आदि आस—('अस' के स्थान पर 'अरु' पाठ चाहिए)। स्वयं-प्रकास = जिसको प्रत्यक्ष दिखाने के लिये और प्रकाशो की आवश्यकता नहीं। जो (भगवान्, सृष्टि की) उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के समय (अर्थात् सदा ही) अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है, रसनिधि मन में उसी के चरणों (की कृपा) की आशा रखता है।

१० भले पास—कर-तार (कर-ताल) = हाथ से ताल देना। करतारैं = कर्ता (परमेश्वर) के। करतार (ताल) को भूल जाने पर राग ठीक ताल में नहीं आता। (हे मनुष्य), यही समझ कर तू मन को करतार (सृष्टि-कर्ता) में लगाए रख।

११. हरि . सुजान—ठौर जुबान = जिह्वा-स्थान, मुख । रसनिधि कहते हैं—हे ज्ञानी संतो, प्रतिपल परमेश्वर का स्मरण करो। 'हरि-हरि' जप ही तुम्हारी जिह्वा पर रहे और (तुम) हर प्रकार से हरि के हो कर रहो। (भाव यह है कि मन, वाणी तथा कर्मों से सदा हरि की भक्ति करो)।

१२ जिन. .किसोर—करनी = कर्म। जिन = मत; न। कर नीके

कर गहौ=हाथो को भली भाँति पकड़ो। छोर=सीमा। रसनिधि कहते हैं—हे व्रजनाथ (श्रीकृष्ण जी), मेरी करतूतो की सीमा मत खोजिए (अर्थात् मेरे पापों का पार आप नही पा सकेंगे। इस लिए कृपा करके) मेरे हाथ को भली भांति पकड लीजिए (अन्यथा मेरा उद्धार नहीं होगा)।

१३ रसनिधि ..तार—करतार=कर्त्ता, परमात्मा। रसनिधि कहते हैं कि परमेश्वर को करतार इसी कारण से कहते है कि संसार की तार (व्यवस्था की डोरी या सूत्र) सदा उसी के कर (हाथ) मे रहती है। [ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पुतलियों का तार सूत्रधार के हाथ में रहता है।]

[टिप्पणी—यहां पर रसनिधि ने 'करतार' शब्द की व्युत्पत्ति को जान-बूझ कर बदल दिया है ताकि अर्थ अधिक चमत्कृत हो उठे। वस्तुत: 'करतार' शब्द 'कर्तृ' से बना है, पर यहां 'कर'+'तार' से बना हुआ कहा गया है।]

१४ तेरी आइ—हे नंद दुलारे तुम्हारी चाल कुछ समझ मे नहीं आती। तुम (सब से बड़े होकर भी) उस मन मे आ रहते हो जो धूल के कण से भी छोटा होता है।

पृष्ठ ५६, दोहा १५ दंपति सुहाइ—दंपति=पति-पत्नी (यहां राधा कृष्ण। अलि=भँवरा। श्रीराधा-कृष्ण जी के चरण रूपी कमलों पर जिनका मन-रूपी भँवरा मँडराता रहता है, रसनिधि को (उनका तो क्या) उनके सेवकों के सेवकों का संग भी भला लगता है।

*१६ घरि लाइ—घरयार=घडियाल, घण्टा। बजिकै=हठपूर्वक। बजाइ=जोर-शोर से। बहुरि=फिर। अभी वडी टन-टना रही थी (सब कुछ ठीक था)। (और लो अभी) घड़याल सुन लो (मनुष्य चल बसा)। और (यह घडयाल) वजकर वलपूर्वक (ऊँचे स्वर से) कह रहा है कि यह (मनुष्य-जन्म रूपी) अवसर फिर नहीं पा सकोगे—(इसलिये अभी ही) भगवान् के चरणो मे मन लगाओ।

१७ हरि धाम—तुव=तेरे। नैकु=जरा भी। किहि=किसी। हे मन, भगवान् के विना तुम्हारी सब कामनाएँ जरा भी काम न आवेंगी। देखो, क्या सपने के धन मे अपना घर किसी ने भरा है! (किसी ने भी नहो)।

१८. जिन .जाइ—वारे=निछावर किये। वारे=लाभ। जिन

मनुष्यों ने अपना मन धन ला कर नन्दलाल पर निछावर कर दिया, उनके लाभ का कुछ भी वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। (भाव यह है कि साधारण मन-धन अर्पण करके अमूल्य मोक्ष प्राप्त करना बड़ा सस्ता सौदा है)।

१६ हरि...उदोत—उर=हृदय। हरबर=शीघ्र। उदोत=(उद्योत्) प्रकाश। वही मनुष्य भगवान् की भक्ति तथा पूजा मे मग्न होता है जिसके हृदय् मे भगवान (स्वयं) आकर शीघ्र ही प्रकाश कर देते हैं। (भाव यह है कि भगवद्भक्ति भी भगवत्-कृपा से ही प्राप्त होती है)।

*२० रसनिधि नाहिं—रसनिधि कहते हैं कि जब मन रूपी भँवरे (भगवान्) के चरण-रूपी कमलो पर मँडराने लगते हैं तब बन्द रस का भण्डार (आध्यात्मिक ससार) खुल जाता है और खुला हुआ (नीरस मायामय जगत) खुला हुआ नहीं रह जाता। (भाव यह है कि भक्ति का उद्रेक होने पर आत्मिक आनन्द की उपलब्धि तथा सासारिक सुखों से विरक्ति हो जाती है)।

२१. रूप अभिराम—दृगन=आंखो मे। श्रवनन=कानो मे। रसनिधि कहते हैं कि (हमारे) नेत्रो मे भगवान् का रूप, कानो मे भगवान् की सुकीर्ति, जिह्वा पर उनका नाम और मन मे उनके सुन्दर चरणकमल नित्य निवास करें।

२२ कपटौ रिझवार—कपटौ=काटो। विगुरदा=एक प्राचीन हथियार का नाम। जब तक सत्य-रूपी बिगुरदे की धार से छल-कपट को न काटोगे तब तक सचाई पर रीझने वाला प्रभु कैसे मिलेगा!

*२३ नेत आन—नेत नेत (नेति नेति)=ऐसा नहीं, ऐसा नहीं (अर्थात् अनुपम प्रभु)। निगम=वेद। वेद भी जिसके विषय में 'नेति-नेति' कहकर रह गये और जान नहीं सके अर्थात् सम्यक् वर्णन नहीं कर सके, वही हरि अपने निराकार रूप का त्याग करके व्रजभूमि मे अवतार लेकर सब का मन हरने लगे।

२४ परम ठौर—गौर=ध्यान। रसनिधि कहते हैं कि जब गुरू ने कृपा करके सेवक पर ध्यान दिया तब सभी स्थानों पर प्यारे मोहन (श्रीकृष्ण) के दर्शन करा दिए।

*२५. पाप ..आन—चाहे पाप-पुण्य (कर्मपाश) तथा प्रकाश के भेद के कारण सूर्य और चांद पृथक-पृथक् जान पडते हैं तो भी (सच

तो यह है कि) सभी वस्तुओं में वही (एक प्रभु) आकर प्रतिफलित हो रहा है। भाव यह है कि सभी पदार्थ ब्रह्म-रूप ही हैं, दिखाई देने वाला भेद हमारे अदृष्ट (धर्माधर्म) के कारण है) ।

२६. आपु पास—सुबास = सुगन्ध। बासना = सुगन्ध। परमात्मा स्वयं ही भँवरा, स्वयं ही कमल, स्वयं ही (उस कमल का) रग तथा सुगध है। वह स्वयं उस सुगन्ध को सूँघता भी है और स्वयं ही सब ओर प्रकाशमान है।

२७ पवन...वास—धरनि = पृथिवी। (हे परमेश्वर) तुम्हीं वायु, तुम्हीं जल, तुम्हीं पृथिवी तथा आकाश हो। तेज भी तुम्हीं हो और जीवात्मा भी। शरीर में भी तुम्हीं रह रहे हो।

[टिप्पणी— 'है' के स्थान पर यदि 'ह्वै' पाठ हो जाय तो अर्थ बहुत सुन्दर बनता है—तुम्हीं ने जीवात्मा बन कर देह धारण की हुई है।]

२८. कहूँ ..दिखाइ—कहीं तो (वह प्रभु) शासन कर रहा है और कहीं (सेवक रूप में) आकर प्रणाम करता है। वह स्वयं ही शासक तथा सेवक है, दूसरा तो कोई दिखाई ही नहीं देता।

पृष्ठ ६०, दोहा २६ साचो. अनन्त—स्वांगी = बहुरूपिया । हे सज्जनो, हे सतो, यह सच्ची बात सुनिए। प्रभु अकेला ही बहुरूपिया है और (यह सब जड़-चेतन पदार्थ) उसके अनगिनत रूप हैं।

३० कोटि ओइ—घटन = घड़ों। घट घट = प्रत्येक हृदय। जैसे करोड घड़ों में सूर्य की परछाहीं स्पष्ट दिखाई देती है वैसे ही स्वतः प्रकाशमान प्रभु आकर प्रत्येक हृदय मे छिपा हुआ है।

*३१. म्ग...दिखान—फटिक मनि = स्फटिक, श्वेत मणि, बिल्लौर। हे ज्ञानवान मनुष्य, परमात्मा बिल्लौर के समान प्रत्येक हृदय में प्रकाशमान है। जो रङ्ग उसके समीप आ जाता है उसी रङ्ग को वह दिखाने लगता है।

[व्याख्या—बिल्लौर का अपना कोई रङ्ग नहीं होना। वह समीपवर्ती वस्तु के रङ्ग की झलक देने लगता है। कवि कहता है, इसी प्रकार प्रभु भी निर्लेप है। वह (जीवात्मा रूप में) जैसे भले-बुरे मन के साथ संयुक्त होता है वैसा ही दिखाई देने लगता है।]

३२. वही फुलेल—वास्यौ = सुगन्धित किया। फुलेल = इत्र। वह (परमात्मा) स्वयं ही रग है और स्वय ही तिलों में का तेल है। फूल

उसी से सुगन्धित है और वह स्वयं ही फुलेल-रूप हो गया है। (भाव यह है कि कारण-कार्य-रूप जगत् ब्रह्म ही है)।

३३ यों बुनियाद—सनातन = शाश्वत, नित्य। आद (आदि) = आरम्भ। जैसे मिट्टी के घड़ों का मूल कारण मिट्टी है, ऐसे ही सब जीवात्माओं का मूल कारण अनश्वर परमेश्वर को समझो।

३४. जलहूँ आपु—वह (प्रभु) निराला ही है। वह आप ही जल मे, स्थल मे तथा सब जीवों मे प्रकाशमान है। (भाव यह है कि सब जड़-जंगम जगत् ब्रह्मरूप हैं)।

३५. मोहन ..आपु—पोहनवारो = पिरोने वाला। जोहनिहारो = देखने वाला, द्रष्टा। (प्रभु) स्वय ही मन है और स्वयं ही मन को मोहने वाला। वह स्वयं ही माणिक्य है, स्वय ही उसे पिरोने वाला तथा स्वयं ही उसे देखने वाला।

३६. वसी...आपु—सप्तसुर = गाने के सात स्वर—स रे ग म प ध नि। वह (प्रभु) स्वयं ही बांसुरी में है और स्वयं ही सातों स्वरों (सप्तक) में भी। वह स्वयं ही बजाने वाला है तथा स्वयं ही (सुन कर) रीझने वाला भी।

३७. बीज...आपु—जर = जड, मूल। रसनिधि कहते हैं:—वह प्रभु स्वयं ही बीज है और स्वयं ही जड़। शाखा और पत्ते भी वह स्वयं ही है। तथा फूल, फल और रस में भी वह स्वय ही है।

३८ पंचन...परवीन—पंचन = पांचों इन्द्रियों को। पंच मे = पांचों तत्वों में। रसनिधि कहते हैं जो पाचो इन्द्रियों को पाचों तत्वों में मिला कर आत्मा को परमात्मा मे लीन कर देता है, वही जीवन मे मुक्त कहलाता है और वही बुद्धिमान् है। (भाव यह है कि जो शरीर तथा इन्द्रियों को पांच भौतिक जान कर, उनकी उपेक्षा करता हुआ, आत्मा में परमात्मा का चिंतन करता है वह जीता हुआ ही मुक्त है)।

३९. कुदरत आग—जाग = जगह, स्थान। रसनिधि कहते हैं—उस (प्रभु) की कुदरत सब स्थानों में समा रही है; जैसे, ईंधन के बिना भी पत्थर में अग्नि विद्यमान रहती है।

४०. अलख.. जाइ—अलख (अलक्ष्य) = अदृश्य प्रभु। दृग तारिन = आंख की पुतली। तिलक = पुतली की मध्यवर्ती बिंदी। झांकी

जाय = देखी जाय । वह अदृश्य (प्रभु स्वयं तो) सब को देखता है परन्तु (आप) किसी को दिखाई नहीं देता । जैसे, आंखों की पुतलियो की बिंदी स्वयं (सब को देखती हुई भी) आप किसी को दिखाई नहीं देती ।

४१. गरजन आपु—बादल के गरजने में भी वह (प्रभु) स्वयं ही हैं और मेह के बरसने मे भी स्वय ही । इसी प्रकार सुलझने मे भी वह आप ही हैं और उलझने मे भी आप ही । (उत्तरार्द्ध का भाव यह है कि जीवात्मा की बन्धन-दशा में भी आप ही हैं और मुक्तदशा में भी आप ही।)

४२. कहुँ.. रिझवार—(वह प्रभु स्वय ही) कहीं गाता है, कहीं नाचता है, कहीं ताली देता है और कहीं रीझने वाले के रूप में बैठ कर तमाशा देखता है ।

पृष्ठ ६१, दोहा ४३ नर .खेल—थावर (स्थावर) = जड पदार्थ । जंगम = चर सृष्टि । मनुष्यों, पशुओं, कीडो, पतगों तथा विविध जड-चेतन वस्तुओ में (वही) अनोखा खिलाडी अप्रकट रूप से खेल खेल रहा है ।

४४ हिंदू ठौर—क्या हिंदुओं तथा मुसलमानों में व्यापक परमात्मा भी भिन्न-भिन्न है ? नहीं सब का परमात्मा तो एक ही है और वही सर्वत्र व्यापक है ।

*४५. कहुँ प्रबीन—(वह प्रभु) कहीं नाचता, कहीं गाता और कहीं वीणा बजाता है। वह सब मे विराजमान है और सभी कलाओ मे कुशल है ।

*४६ जल अनेक—माया जल की अनेक तरंगो के तुल्य है और प्रभु एक सूर्य के सदृश है। उस प्रभु रूपी सूर्य के प्रतिबिंब को ले कर माया-रूपी लहरे अनेक प्रकार से नाच रही हैं। (भाव यह है। सूर्य एक है, तरगे अनेक। सभी तरंगो मे एक ही सूर्य पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है ,इसी प्रकार प्रभु एक है, माया-रूप पदार्थ अनेक। उन सभी प्राकृतिक पदार्थों मे परमात्मा पृथक्-पृथक् रूप मे प्रतीत होता है, पर है वस्तुत: एक ही) ।

४७ राई. .दिखाई—राई (के दाने) के बीसवें भाग मे भी वह समा जाता है । (वस्तुत. तो समाया हुआ है) । प्रभु से रहित कहीं भी जरा भी स्थान दिखाई नहीं देता ।

४८. अनत .दिखाई—(जात' के स्थान पर 'जोत' पाठ चाहिये) । विदित = प्रकट, स्पष्ट । इन आंखो से (उस प्रभु की) अदृश्य ज्योति स्पष्ट

दिखाई नहीं देती। तो भी, उसके प्रेम का प्रकाश सब ही स्थानों पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

४६. यदपि ..जहूर—भावतौ = प्रीतम। बल = बलिहार। जहूर = आविर्भाव, प्रकट होना। चाहे वह प्रीतम सारे संसार में ओत प्रोत है तो भी हम तो उसी स्थान पर बलिहार जाते हैं जहां पर वह प्रकट हो जाता है।

५० पच...सोइ—सुर = देव (यहां आत्मा)। जैसे समस्त ब्रह्माण्ड मे परमात्मा व्यापक है, वैसे ही पांच भौतिक शरीर मे आत्मा को व्यापक समझो।

५१. रसही .होत—रस मे भी और रसज्ञ में भी उसी (प्रभु) ने प्रकाश किया हुआ है। वह आप ही स्वाति नक्षत्र मे बरसी हुई बूँद है और आप ही (उसको पीने वाला) पपीहा बन जाता है। (भाव यह है कि भोग्य और भोगी दोनों परमात्मा के ही रूप हैं)।

५२. करत ..पहिचान—अरे पागल मन, (तू व्यर्थ) ही फिरता रहता है परन्तु अपनी पहचान नहीं करता। परमात्मा तो तुझी मे वर्तमान है, (उसे) पहचान क्यों नही लेता।

५३. तू .नाहिं—हे सत्पुरुष, तू इस बात को मन मे विचार कर देख ले कि जो आनन्द दया करने से मिलता है, वह अत्याचार करने से नहीं।

५४. सज्जन .और—दरदवंत (दरदमंद) = भावुक जन। हे सत्पुरुष इस बात को मन में विचार-पूर्वक देख लो कि भावुक जन का बोलना, देखना तथा चलना निराला ही होता है।

५५. मीता फेर—हे मित्र, तू इस बात को मन में विचार कर देख ले कि दयालु तथा निर्दय व्यक्ति मे दिन-रात का अन्तर होता है।

५६. सज्जन .जात—रदन = दांत। अरे (भाई), भले मनुष्य के सामने मूर्खता की ये बातें (मत करो), कहीं मोम के दांतों से भी लोहे के चने चबाए जाते हैं ? (कभी नहीं)। (भाव यह है कि मूर्ख अपनी बातों से विद्वानों को अपने वश में नहीं कर सकते)।

पृष्ठ ६२, दोहा ५७. जब...खसबोहि—हे मित्र, जब चाहो देखो, भले भलाई ही करते हैं। जैसे, अगर (की बत्ती) लगातार जलाई जाने पर भी सुगन्ध (से लोगों का भला करना) नहीं छोड़ती।

❀५८ बेदाना ..अनार—बे-दाना = अ-ज्ञानी । दाना = चतुर । किनार = किनारे, दूर । बे-दाना (अज्ञानी) सैंकड़ो (सर्वत्र) होते हैं (परन्तु) दाना (चतुर) विरला ही होता है (और मूर्खों से) दूर ही रहता है। बेदाना (मूर्ख) दाना (बुद्धिमान्) का आदर नहीं करता। वह तो केवल अनार के दाने का आदर करता है। (उत्तरार्द्ध का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है—बुद्धिमान् बेदाना (मूर्ख) का आदर नहीं करता, वह केवल बेदाना (गुठली-रहित) अनार का आदर करता है।)

❀५९. प्रीतम हार—["सुनैकहूँ" के स्थान पर "सुनै कहूँ" पाठ चाहिये)। गुन = (१) डोर (२) गुण। सुमन = (१) फूल (२) सज्जन। हे प्रीतम, इतनी बात तो मन में विचार कर देखो कि क्या कहीं फूल गुण (डोरी) मे बन्धे बिना हृदय का हार बन सके हैं। तथा गुण-हीन जन सज्जनो के हृदय का हार अर्थात् उसके प्यारे बन सके हैं। (कभी नहीं)।

❀६० हित ..बात—छीर (क्षीर) = दूध। प्रेम इस प्रकार से करना चाहिये, मेल-जोल उस प्रकार से करना चाहिये। प्रेम करने का ढग दूध और पानी से पूछ लो। [भाव यह है कि दूध पानी से प्रेम कर उसे अपना ही रूप तथा मूल्य प्रदान करता है। पानी भी उसमे मिलकर पहले आप जल जाता है तब दूध पर आच आने देता है। फिर जब जल के वियोग में दूध आग पर क्रुद्ध होकर उफान के रूप मे उभरता है तब प्यारे पानी के छींटों के मिलने से प्रसन्न हो जाता है।] (देखिये दोहा स० ७७।)

६१. बढ़त...सिहाइ—गोत = गोत्र, जाति । अनखाइ = कुढ़ना, खिन्न होना। सिहाइ = मुग्ध या प्रसन्न होना। सुहृदय = अच्छे हृदय वाली, उदार। और सब (तंगदिल लोग) तो अपने सम्बन्धियो को बढते देख कर कुढ़ते हैं परन्तु उदार आंखे (दूसरों के) नेत्रो को बढ़ते देखकर मन में प्रसन्न होती हैं।

६२. पशु...पीर—अपने अपने कष्ट को तो पशु और पक्षी भी अनुभव करते हैं। मैं तो तुम्हे तभी चतुर मानूँगा जब तुम पराये कष्ट को भी अनुभव करने लगोगे।

६३. इतनौई...तोहि—हुतो = था। बात = यश। मान = लाज। हे प्रियतम, मुझे तुम से इतना ही कहना था कि यदि तुम्हारा यश लोगो की ग रखने के कारण है तो मेरी लाज भी तुम्हें ही बचानी होगी।

६४. कहै...निस्तार—मन्द-बुद्धि मनुष्य किस प्रकार तेरे असंख्य गुणो का वर्णन कर सकता है। हे दीनबन्धो, तुम मुझ दीन को किसी न किसी प्रकार से मुक्त कर दो।

६५ गह्यौ .काटनहार—बार=देर। (हे भगवान्) जिस समय मगरमच्छ ने हाथी को पकड लिया था उस समय (तुम्हे उसे बचाने को) पहुँचने मे देर न लगी। ऐसे अवसर पर विपत्ति का निवारण करने वाला और कौन होता है।

*६६ जो कछु .समेत—आँखे देत=कह देती है। जो कुछ (भाव) मन मे उत्पन्न होता है, उसे वे आँखे (कह) देती हैं। रसनिधि कहते हैं, इसलिये इन्होंने "आँखें" (जो कहें; कहने वाली) नाम सार्थक ही पाया हुआ है।

[टिप्पणी—"आँखें" शब्द वैसे तो संस्कृत मे अक्षि शब्द से निकला हुआ है। परन्तु रसनिधि ने इसे जान-बूझ कर 'आख्यान' से निकले हुये 'आखना' (कहना) से सम्बन्धित करके अर्थ में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।]

६७ श्रवत...नाम—श्रवत (स्रवत)=टपकाते या बहाते रहते हैं। श्रवन=कान। रसनिधि कहते हैं—चूँकि श्रवण (कान) मोहन के मनोहर गुणों (के प्रवाह) को मन की ओर स्रावित करते अर्थात् बहाते रहते हैं, इसीलिये इन्होने सुन्दर नाम "श्रवण" (स्रवन=बहाने वाला) प्राप्त किया है।

[टिप्पणी—वस्तुत: "श्रवण" शब्द तत्सम ही है और सुनने के अर्थ वाले 'श्रु' धातु से बना है। परन्तु अर्थ मे चमत्कार लाने के लिये रसनिधि इसे जान-बूझ कर 'स्रु' धातु से व्युत्पन्न 'स्रवन' मान कर उक्त कल्पना करते हैं।]

६८ मन धूम—मन (समय-समय पर) मलिन, पवित्र, उदार, कृपण, ज्ञानवान् तथा ज्ञानहीन होता है। सब समारोह मन ने ही उत्पन्न कर रखा है।

*६९ उडौ ..नाम—तूल=रूई। हरुये=हलके। मन=(१) ४० सेर का बट्टा (२) चित्त। जो रूई के समान इधर-उधर व्यर्थ ही उड़ता फिरता है, उस हलके मन (चित्त) का नाम मन (४० सेर का बट्टा)

क्या समझ कर रख दिया है।

[टिप्पणी—वस्तुतः 'मन' शब्द संस्कृत के 'मनस्'=(विचार वाला) शब्द से निकला है, परन्तु रसनिधि ने इस के दूसरे अर्थ (बट्टा) को लेकर दोहे में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।]

७०. को ..कौन—अवराधे=आराधन करे। मधुकर=भँवरा (यहां, ऊधो जी)। गोपियां ऊधो जी से कहती हैं--) हे ऊधो जी, आप चुप ही रहिए। आप के (बताए हुए) योग का सेवन कौन करे। श्रीकृष्ण के पीले वस्त्र के किनारे से (बँधे हुए) मन को कौन छुडा सकता है।

पृष्ठ ६३, दोहा ७१ तेरे ..ललात—दयौ=दिया हुआ। गो रस= दूध-दही आदि। लला=हे लाडिले। ललात=लालायित होकर। हे लाडिले (श्रीकृष्ण), तेरे घर विधना ने (इतना) दिया है कि दिया हुआ कोई नहीं खाता। (सब उसे खा कर तृप्त हो चुके हैं)। (फिर तू) दूध-दही आदि के लिये लालायित होकर क्यों घर-घर फिरता रहता है ?

७२. जान . जात—जान=परिचित । अजान=अपरिचित । बेर=बार। यह बात ससार में प्रसिद्ध है कि परिचित व्यक्ति अपरिचित नहीं हो सकता। (फिर हे भगवन्) जब हमें तारने की बारी आई तो तुम परिचित होते हुए भी क्यों अपरिचित हुए जाते हो ?

७३. नंदलाल ..सयान—(गोपियां ऊधो जी के विषय में परस्पर कह रही हैं—) (हमारी) बुद्धि, विवेक और उत्तम ज्ञान नन्दलाल के साथ ही चले गए। अब कौन बुद्धिमान् व्रजभूमि मे योग का उपदेश देने आया है ? (भाव यह है कि कोई सयाना नितान्त निर्बुद्धियों को योग का उपदेश नहीं देता। यह ऊधो भी अज्ञानी ही प्रतीत होते हैं)।

७४. मोहन ..नैन—मोहन (श्रीकृष्ण) को देखकर (मन में) सुख इतना बढ़ता है कि कहा नहीं जा सकता। (क्योंकि) आखों के पास तो (वर्णानार्थ) वाणी नहीं और वाणी के पास (दर्शनार्थ) नेत्र नहीं।

७५ मे ..जात—रसनिधि कहते हैं—कि मैंने ठीक-ठीक समझ लिया है, (नयन और मन) दोनो परस्पर सहयोगी हैं। (इसीलिये) जिधर नयन जाते हैं उधर मन जाता है और जिधर मन जाता है वहीं नयन भी जाते हैं।

७६. तन...काम—पतंगे का यश इसी कारण से है कि वह तुम

ीप) पर अपना तन-मन निछावर कर देता है। फिर भी, ऐ दीपक, स (सच्चे प्रेमी) को जला डालना तेरा ही काम है, अर्थात, तू नितांत ठुर है।

७७. तोय ..जाइ—तोय=पानी। छीर=दूध। (ऐ दुकानदार) दि तुम दूध को जल मिलाने से बढ़ा कर, पानी को भी मूल्य मे अर्थात दूध के भाव) देते हो तो वह (पानी अपने संमान का प्रत्युपकार रता हुआ) दूध को सेंक नहीं लगने देता, पहिले आप ही जल जाता। (देखो ६० वें दोहे का अर्थ)।

७८. लखि ..सिहाहिं—बड़वार=बड़े। सुजातिया=स्वजातियों को। नखि=ईर्ष्या। सिहरहीं=प्रसन्न होती हैं। अपनी जाति के लोगों को डे होते देखकर मनुष्य ईर्ष्या नहीं करता, (प्रसन्न ही होता है)। जैसे, पने से बडी आंखे देख कर, आखे वस्तुत प्रसन्न ही होती हैं।

७९. प्यास .आन—औघट=दुर्गम। पान=पानी। गरुवाई= ारीपन। गर=गले। हाथी का भारीपन ही उसके कष्ट का कारण बन ाता है। (इसी के कारण) वह दुर्गम घाटों से जल नहीं पी सकता ौर प्यासा कष्ट उठाता है। (भाव यह है कि बकरी आदि जीव तो दुर्गम ाटों से पानी अनायास पी लेते हैं पर हाथी फिसल कर मरने के भय से यासा दुख पाता है)।

८० औघट...तीर—पच्छी (अपने हलकेपन के कारण) दुर्गम ाटों से भी स्वच्छ जल पी लेते हैं, परन्तु हाथी अपने भारीपन के कारण ागर (के सुगम) तट पर भी प्यास फिरते हैं। (भाव यह है कि किनारे की रेत या कीचड आदि मे धस जाने के भय से हाथी पानी नहीं ी सकता)।

८१ धरि पाई—कीरा=कीड़ा। विष का कीड़ा विष मे ही सुखी हता है। चाहे उसे सोने के पिंजरे में रख कर अमृत भी खिलाओ (तोभी ह सुखी न होगा)।

८२. बैठत...हेत—बगले एक पांओ के सहारे ध्यान लगा कर बैठते हैं और मछलियो को दुख देते हैं। रसनिधि कहते हैं कि बगलों के मुह इसी कारण से काले हो गए हैं। (भाव यह है कि जो मनुष्य भक्ति का ढोंग कर मनुष्यो को ठगते हैं, उन के मुख पर बगलों के समान

कालिख लगती है)।

[illegible] अमित ..काम—हे सुंदर समुद्र, चाहे तुम असीम तथा अथाह जल से पूर्ण हो तो भी तुम किसी काम के नहीं क्योंकि तुम प्यासों के काम नहीं आते।

[illegible] अलि ..आक—गुल = पुष्प। इक ताक = निरन्तर। हे भँवरे, तुम ने (वसंत ऋतु में) गुलाब और कमल के फूलों के रस का निरन्तर पान किया। (उससे तुम्हारी तृप्ती नहीं हुई इस लिये) अब तुम (ग्रीष्म में) अकेले आक के फूलों को देख कर भी जीना चाहते हो। (भाव यह है कि भँवरे का प्रेम निंदनीय है। वह जैसे-तैसे प्राण-रक्षा चाहता है। मछली के समान उसका प्रेम सच्चा नहीं है। नहीं तो वह मर जाता परन्तु अन्य से प्रेम न करता)।

[illegible] पृष्ठ ९४, दोहा ८५ - काग .. आइ—लगर = लगड़ पक्षी। सलूना = झपट। ऐ कौवे, अपनी बुद्धिमत्ता का प्रभाव तब तक दिखा लो जब तक लगड़ पक्षी (तुम्हारे) सिर पर झपटा नहीं मारता। (भाव यह है कि मौत के सामने किसी की चालाकी नहीं चल सकती)।

[illegible] ८६. चल.. स्याम—बरसिबो = बरसना। लाजिम = आवश्यक, अनिवार्य। ये सब सुन्दर वृक्ष अपने स्थान से हिल नहीं सकते। इस लिये हे काले (जलभरे) बादल, इनके स्थान पर आ कर जल बरसाना तुम्हारा आवश्यक कर्तव्य है।

[illegible] ८७. तेरी . गौर—साहिबी = प्रभुत्व, राज्य। रसनिधि कहते हैं, हे प्रभो, इधर, उधर, सब ओर तुम्हारा ही प्रभुत्व है। (इसलिये) तुम ध्यान देकर मुझे तार दो।

[illegible] ८८. रोम . काम—अघ = पाप। रसनिधि कहते हैं—हे प्रभो, जिस के प्रत्येक रोएं में पाप समाया हुआ है और जो पतितों का सरदार (अर्थात् महापतित) है उसे पार लगाना तुम्हारा ही काम है।

[illegible] ८९. गंग . ओत—जिन चरणों से प्रकट होकर गंगा जी ने संसार को पवित्र कर दिया है, रसनिधि ने आ कर (विष्णु जी के) उन्हीं चरणों का आश्रय ले लिया है।

[illegible] ९०. लखि . बुहाइ—रसनिधि अपने अन्दर (अनेक) दोष देख सब सुध-बुध भूल जाता है परन्तु (हे भगवान्) पापियों को तारने से उत्पन्न

[illegible]

तुम्हारे यश का स्मरण कर के प्रसन्न हो जाता है।

९१ भगतन नाइ—भक्तों को तो तुम तार दोगे परन्तु नीच-जन किस के पास जांयगे। हे पापियों को तारने वाले, तुम्हारे बिना उन का कोई भी आश्रय नहीं है।

९२ निर्नन कुडाइ—अघवन = पापों। असरनसरन = निराश्रयों का आश्रय। मेरे पाप सख्यातीत हैं। (उन्हे गिन कर) और न बढ़ाओ। हे प्रभो, तुम तो निराश्रयो के आश्रय-दाता प्रसिद्ध हो। इस लिये मुझे अपनी शरण से मत हटाओ।

९३ हौं .आधार—अघ-भारन = पापो के बोझ से। मैं पापो के भारो से अत्यधिक लदा हुआ हूँ और पापियों का मुखिया हूँ। तुम्हारा नाम 'पापियो को तारने वाला है।' मुझे तुम्हारा ही भरोसा है।

९४ जौं छोर—हेरिहौ = देखोगे। छिति छोर = भूमि की सीमा। हे दयामय, यदि तुम मेरी करतूतो की तरफ देखोगे तो भूमि की सीमाओं तक ढूँढने पर भी मुझ जैसा पतित न पाओगे।

विक्रम

इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था परन्तु कविता यह 'विक्रमसाहि' नाम से किया करते थे। इनके जन्म तथा देहावसान के संवत् का कुछ ठीक पता नहीं, परन्तु इनका शासन-काल सवत् १८३६ से १८८६ तक रहा। ये बडे साहित्य-प्रेमी तथा गुणग्राहक शासक थे। ये बुन्देलखण्डान्तर्वर्ती चरखारी नामक रियासत के अधीश्वर थे। इनकी गुणग्राहकता के कारण अनेक कविगण इनकी सभा मे खिच आए। खुमान, भोज, प्रताप, प्रयागदास, विजयबहादुर आदि अनेक सुकवि इनके आश्रय मे रहते थे।

महाराज स्वयं भी कवि थे। सतसई के अतिरिक्त इन्हों ने श्रीमद्-भागवत के दसम स्कंध का 'हरिभक्ति-विलास' नाम से पद्यानुवाद किया और 'ब्रजलीला' आदि अन्य ग्रन्थों की रचना की। साधारणतया इनकी कविना अच्छी और सरस है। यद्यपि इन्हों ने अपनी सतसई मे विहारी का अनुकरण किया है परन्तु सम्यक् सफल नहीं हो सके हैं। इन्हों ने अपने दोहों मे भक्ति, प्रेम, शृङ्गार, नीति तथा ऋतु आदि का वर्णन किया है। इनकी भाषा मे शब्दो को काफी तोड़ा-मरोडा गया है।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ

पृष्ठ ६६, दोहा १. कूल स्याम—कलिंदी (कालिंदी) = यमुना। नीप तर = कदम्ब वृक्ष के तले। स्यामा = राधा जी। हे राधे-श्याम, आप यमुना के तीर पर कदम्ब के तले अति मनोहर रूप से शोभायमान होते हैं। इसी शोभा से युक्त होकर मेरे मन मे रात-दिन (सदा) निवास कीजिये।

२. राधापति दैन—(लहौं' के स्थान पर सम्भवतः 'लहों' चाहिए) बैन = वचन। लहौं = धारण करूँ। (मै) राधापति (श्रीकृष्णचन्द्र) को मन मे धारण करूँ, उन्ही के नाम का जप करूँ, उन्हीं को आखों मे बसाऊँ, (क्योंकि) वही सुख देने वाले हैं।

३ मनमोहन माहिं--हृषीकेस (हृषीक + ईष) = इन्द्रियो का स्वामी (श्रीकृष्ण)। हे मनमोहन, मेरे मन मे, हे जितेन्द्रिय, मेरे हृदय मे, हे कमल के समान नेत्रो वाले, मेरे नेत्रों में, तथा हे मुरली बजैया, मेरे मुख मे निवास कीजिये।

४ हे ब्रजचन्द—पौन (पवन) = वायु। मंद = नीच। बरजत = रोकते। (मेरा) मन वायु से भी अधिक शीघ्रगामी है। यह नीच तब तक स्थिर नही होता जब तक ब्रजचन्द्र (श्रीकृष्ण) कृपा करके इसे नहीं रोकते।

५ आधि होइ—आधि=मानसिक-रोग (शोक, चिंता आदि)। समाधा = समाधि। उन्ही राधा-कृष्ण का जप करो जिन्होंने मानसिक तथा शारीरिक भारी रोगो को हर लिया है। समाधि लगा कर स्मरण किया हुआ 'शिव' नाम विघ्नों को दूर कर देता है।

६. वृन्दावन ब्रजराज—उधर महारानी राधा, (इधर) महाराज ब्रजेश्वर (श्रीकृष्ण), दोनों ही वृन्दावन मे विराजमान हैं और सुख-सामग्री का संकलन करते हैं।

७ विहरत .नन्दलाल—विपिन = वन। विक्रम कहते हैं—हे गोपाल, हे नन्दलाल, वृन्दावन में गोपियों के साथ लीला करते हुए आप जिस शोभा से युक्त होते हैं, उसी छवि से युक्त होकर सदा मेरे मन में निवास कीजिये।

८. मन भाग—सुनाय = अच्छे प्रकार नवा (झुका) कर। भरत

बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि वह मन, वाणी और कर्मों में अति नम्र होकर श्रीराम के चरणों से प्रेम करते हैं और इस बात को सीता तथा राम दोनों जानते हैं।

६. फिरि .जाइ—बार-बार "राधा-कृष्ण" का जप करता हुआ, बार-बार ध्यान लगाता हुआ, कब तू (ऐ विक्रम) वृन्दावन जाकर वहाँ के कुञ्जों में निश्चिंत होकर घूमेगा ?

१० मेरी जहान—ना तरु=नहीं तो। हे दीन-बन्धो, मेरी करुणा पूर्ण प्रार्थना कान लगाकर सुनिये, नहीं तो संसार आप को परम दयालु कैसे कहेगा।

११. हौं .धर्म—पेरौ=पेल रहे हो। मैं तुम्हारा चेला बन गया हूँ इसपर भी (मुझे) कर्म-रूपी कोल्हू मे पेल रहे हो मेरी सेवकाई और आपकी प्रभुताई का क्या लाभ हुआ।

१२. करुना . व्रजराज—हे प्रभो, मन मे दया करके मेरा कार्य शीघ्र सिद्ध कर दीजिये अर्थात् मुझे शीघ्र मुक्ति दीजिए। नहीं तो, हे व्रजेश्वर, अपना 'दया-निधि' नाम त्याग दीजिए।

१३. चन्द आहि—स्रुति=वेद। साके=यश, कीर्ति। चाँद तथा सूर्य जिसकी आज्ञा से रात-दिन उदित और अस्त होते हैं और वेद जिसका यश गाते हैं, कवि विक्रम तो उन्हीं के (सेवक) हैं।

१४ करुना . करोर—कोर (कोण)=किनारा (यहां अंश)। रोर-हरन=आर्त्त-पुकार को हरने वाली (दया)। बर जोर=प्रबल। नंद-किशोर की जरा सी भी दया प्रबल आर्त्त-की कराह को नष्ट करने वाली है। वह करोडो को आठो सिद्धियों तथा नौ निधियो से युक्त कर के ऐश्वर्यशाली बना देती है।

पृष्ठ ६७, दोहा १५ नाउ जान—जाजरी (जर्जर)=जीर्ण, पुरानी। अदफर=(अध पर)=बीच में। भौंर=भँवर। (मेरी) पुरानी नौका धार के ठीक बीच मे भँवर में चक्कर खा रही है। हे यदुराज, मुझे अपना सेवक समझ कर शीघ्र पार कीजिए।

१६ त्रन अमान—त्रन (तृण)=तिनका। औढर=शीघ्र प्रसन्न होने वाला। ढरन=दया। अमान=असीम। नद-नंदन प्रभु (श्रीकृष्ण) जगत् के पूज्य, शीघ्र प्रसन्न होकर करुणा करने वाले तथा असीम हैं। वे

वज्र को तिनके के तुल्य तथा तिनके को वज्र के तुल्य कर देते हैं।

१७. नदी बरजोर—नदी का जल तीव्रता से बह रहा है, मेंह मूसलाधार बरस रहा है। भगवान के बिना कौन है जो मेरी नौका को जोर मार कर पार कर दे।

१८. मेरी सेव—गुन-आला (गुणालय) = गुणों का घर। हे दया के सागर, मेरी अपार दीनता की ओर ध्यान दीजिए। हे प्रभो, (आप को) गुणों का भंडार जान कर बचपन से (आप की) सेवा करता आया हूँ।

१९. प्रनत निधान—बिरदावली = यश के गीत। अबार = विलंब, देर। हे परम दयालो, संसार मे आप के यश के गीत इस कारण गाए जाते हैं कि आप भक्तो को पालने वाले हैं। अब मेरी बार देर क्यो कर रहे हैं। (शीघ्र पालन कीजिए)।

२० कै देर—हे दीनबन्धो, क्या मेरी पुकार तुम्हारे कानों म नहीं पड़ी ? हे चतुर्भुज (विष्णो!) चारो युगो मे कभी ऐसा नही सुना कि (किसी को तारने मे) आप को इतनी देर लगी हो।

२१ दीन. हेत—(हे भगवन्), यदि तुम दीन-बन्धु हो कर भी दीनो की सुध नहीं लेते तो (अपना) 'दीन-बन्धु' नाम किस हेतु से प्रसिद्ध कर रखा है ? (भाव यह है कि निज नाम की लाज तो रखिए)।

२२ निज सिरमौर—मैं ने मन मे विचार कर जान लिया है कि (कोई भी) अपना स्वभाव नही त्याग सकता। आप पापियो के परित्राता प्रसिद्ध हैं और मै पापियो का सरदार हूँ। (भाव यह है कि मैं पाप नहीं छोड़ सकूँगा और आप को मुझे तारना ही पडेगा)।

२३ तेरो आहि—बिरद = यशोजनित नाम। आहि = है। मैं तेरा ही (भक्त) हूँ, यह नित्य कहता हूँ। मेरा सहायक और कोई नहीं है। अब तो अपने यशोजनित नाम (भक्तवत्सल) को स्थिर रखने के लिए कहिए कि 'विक्रम' मेरा (भक्त) है।

२४ हौं चेरो ... बान—सारा ससार जानता है कि मै व्रजेश्वर (श्रीकृष्ण) का दास हूँ। हे स्वभावतः पापियो के उद्धारक, मुझे अपना (दास) कहते हुए मत चूकिए।

२५ दीन ..विशेष—तुम दीन-बंधु हो, मैं दीन हूँ। इस संबंध को

मन मे सम्यक् समझ लीजिए। कृपया 'विक्रम' की विशेष विनती को सुनिए। (अर्थात् इस दीन पर अवश्य दया कीजिए)।

२६. भूलि हमेस—जनि=मत। सुरत=याद। मैं भूल कर भी भूलें (अपराध) नहीं छोड़ता। यह संसार अपराधों का ही देश है (यहां प्राणी भूलें करते ही हैं)। हे स्वामी, तुम (मुझे) मत भूल जाना, सदा मेरा ध्यान रखना।

२७. भू लेख—सेष (शेष)=सर्पराज। (जिसके १,००० मुख हैं)। मुहि=मुझे। (हे भगवन्), तुम ने पृथिवी पर के (इतने बड़े-बड़े पतितों को तार दिया कि उन्हें वेद और शेष नाग भी नहीं गिन सकते। अब (मेरी बार) मन मे हारते क्यों जाते हो? उनकी गिनती में मुझे भी लिख लीजिए।

*२८ समुझि जात—अपडर=शंका, भीति। सकात=शंका करता (कांपता) हूँ। खानर=समान। अपने गुणों (अवगुणों) को सोचता हूँ तो डर कर दिल कांप उठता है। किन्तु, हे प्रभो, तुम्हारे गुणों को सुन-सुन कर तुम्हारी पूजा किए जाता हूँ।

पृष्ठ ६८, दोहा २६ नभ जात—निगम=वेद। कत=क्यों। हे प्रभो, वेद-शास्त्र प्रसन्नतापूर्वक कहते हैं कि आप ने इतने (पापी) तारे हैं जितने गगन मे तारे हैं। अब 'विक्रम' को तारने के विषय मे आप क्यों उत्साह-हीन हुए जा रहे?

३०. मोर नदलाल—आज मैं ने श्रीकृष्ण को सखियों के साथ गाते हुए, मार्ग पर आते हुए देखा। उनके सिर पर मोर-पख का मुकुट था, कमर में पीतांबर था और हृदय पर सरस वनमाला थी।

३१. फौजदार महाराज—पलास=ढाक। रसाल=आम। इस वसत-रूपी महाराज ने कचनार को (अपना) सेनापति, ढाक के पेड़ों को (अपने) योद्धा तथा आम के पेड़ को (अपना) युवराज बना दिया है।

३२. मोर मौर—('द्रुम' के स्थान पर द्रुम' कर लें)। चाहे सभी वृक्षों तथा वल्लियों ने अपने-अपने ढंग पर मंजरी धारण की है, (तो भी) वसन्त के दरबार मे आम का पेड़ ही सब का सरदार है।

३३. जो अनुसार—साहित-रीति=साहित्य की रीति। साहित्यिक रीतियों को ध्यान मे रख कर जिस (प्राचीन) कविता का मैं संमान

करता हूँ, उसे देख कर अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षेप से कह दिया है।

३४ दिसि ... बहार—अवनि = पृथिवी। वलित = वेष्टित, युक्त। दिशाओं, उपदिशाओं, नदियों, तालाबों, पृथिवी, असीम आकाश और वेलों से युक्त वनों तथा बागों में वसन्त की शोभा बहुत ही प्यारी है।

३५ बन ... बेस—बनक = बाना, सजधज। सुदेस = सुन्दर स्थान। बलि = हे सखी। बगरी = अत्यधिक। बेस (वेश) = बहुत। वसंत की सजावट प्रत्येक बन में, तथा लताओं से घिरे हुए सुंदर स्थानों में (दिखाई देती है)। हे सखी, बागों तथा बँगलों में अत्यधिक शोभा का प्रसार हो गया है।

३६ सुमन ... बितान—सेत (श्वेत) = सफेद। मैन (मदन) = कामदेव। बितान = चँदोए, तम्बू। कुंजों की वेलों में खिले हुए सुंदर सफ़ेद फूल ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो कामदेव ने मोतियों के मनोहर चँदोए ताने हुए हों।

३७ झरत ... मतंग—मकरंद = पुष्परस। मारुत = वायु। मतंग = हाथी। पुष्परस-रूपी मद धीरे-धीरे झर रहा है तथा भँवरे मधुर-स्वर से गा रहे हैं। (उक्त दोनों बातों से युक्त) पवन, वसंत-रूपी महाराज के मस्त हाथी के सदृश प्रतीत होता है।

३८. दामिनि ... लेति—जलद = बादल। जलद = जल्दी। दिशाओं में दिखाई देती हुई बिजली की चमक आँखों को चुँधिया देती है। बादल उठ-उठ कर तथा घूम-घूम कर मन को झट ही मुग्ध कर लेते हैं।

३९. झीनें ... घोर—झीने = हलके-हलके। झमकि = छा कर। झलनि = (ग्रीष्म की) जलन। झाँपि = ढक कर या हटा कर। झकझोर = झटका देना। घने बादल उठ-उठ कर, घूम-घूम कर, झुक-झुक कर, छा-छा कर, हलके-हलके बरस कर, (ग्रीष्म के) ताप को झटकों से हटा कर, झूम-झूम तथा घूम-घूम कर ताबड़तोड़ बरसते हैं।

४० लहराती ... मोर—लतिकान = वेलों के सिरों को। छहराती = शोभित करती है। छिति (क्षिति) = भूमि। छहराती = फैलती हुई। रंगराती = मस्त करती है। फैलती हुई काली घटा वेलों को खूब हिलाती है, भूमि को सीमाओं तक सुशोभित करती है तथा जंगल के मोरों को मस्त कर देती है।

४१. रहे पेख—('तन' के स्थान पर 'तम' पाठ कर लें)। तम-तोम=अन्धकार-समूह। पेख=देख कर। घने बादल आकाश में छा रहे हैं। बड़ा घना अँन्धेरा हो गया है। रात-दिन (का भेद) पता नहीं लगता। खिले हुए कमल देख कर (ही दिन का अनुमान होता है)।

४२. मन .आज—आज सुखों की वर्षा करने वाला सावन का सुहावना समय है। सुख बढ़ाने के लिए (आज) प्रीतम घर आयँगे।

पृष्ठ ६६, दोहा ४३. कुंभ .अधीन—नासा=नाक। मोद=प्रसन्नता। वानर कुंभकर्ण को नाक तथा कानों से रहित देखकर खिल खिलाकर भूमि पर लोट-पोट हो गए और मन में अत्यधिक प्रसन्न हुए।

४४ मारतण्ड कोदंड—मारतंड=सूर्य (यहा धूप)। कोदण्ड=धनुष। जब श्रीरामचन्द्रजी ने सूर्य के प्रखर प्रकाश में रावण को देखा तो उनके दोनो बलवान् बाजू फड़कने लगे और उन्हों ने धनुष को टंकारा।

४५. घाटौ बिकराल—घाटौ=आच्छादित कर दो, घटा सी उमड़ा दो। सर (शर)=तीर। दुज्जन (दुर्जन)=दुष्ट लोग। (हे श्रीरामचन्द्र जी), पृथिवी तथा आकाश को तीरों से आच्छादित कर दीजिये। दुष्टों के समूहों को दुत्कार दीजिये। और आज रावण के दस भयंकर सीस काट डालिये।

४६ हनूमान हेर—अनेक पर्वतों को उठाये हुए हनुमान श्रीराम को घेर कर गरज रहे हैं (मानों शत्रु पर शीघ्र आक्रमण करने का अनुज्ञा माग रहे हैं)। (शेष) रीछ और वानर टकटकी बाँधकर उन्हीं (हनुमान) की तरफ़ देख रहे हैं।

४७. भुमि काल—भूधराकार=पर्वत के डील-डौल वाला। लच्छ (लक्ष)=लाखों ही। पृथिवी पर पर्वत के समान विद्यमान, उद्दण्ड और युद्ध में दया-हीन कुंभकर्ण को देखकर लाखों रीछ तथा वानर काँप उठे, मानो वह यमराज हो।

४८. रघु लाल—छतज (क्षतज)=रुधिर। कबध=शिरोहीन धड। श्रीराम ने रावण के भयकर सिर काट डाले। उसके सीस-हीन धड से (इतना) रुधिर छलक उठा कि भूमि-आकाश लाल हो गए।

[टिप्पणी—श्रीराम ने रावण को सूर्यास्त के समय मारा था। तत्कालिक लालिमा को कवि ने रावण रुधिर-जनित मानकर यह दोहा रचा है।]

४६. रोदन .उतराय—सुलोचना = मेघनाद की पत्नी। सुलोचना अपने पति की मृत्यु पर विलाप कर रही है। (उसे सुनकर स्वाभावतः कोमल प्रकृति) श्रीराम के नयन-कमल आँसुओं से तर हो रहे हैं।

५० सत्रु नाहिं—दर = द्वार। दर = मूल्य, प्रतिष्ठा। जिसने क्रोध मे आ कर भी शत्रु को नहीं मारा, जिस की प्रसन्नता मन मे ही लीन हो गई। अर्थात् जिसने प्रसन्न होकर गुणी को दानादि नहीं दिया, उस के यहा बुद्धिमान् मनुष्य को नहीं जाना चाहिए क्योंकि उस द्वार का कोई मूल्य या आदर नहीं। (भाव यह है कि जिसका क्रोध तथा प्रसाद व्यर्थ है उससे मागना निष्फल है)।

❀५१. लै जात—स्यात = सहित। वामन ने बलि से राज्य ले कर उसे पाताल का राज्य दे दिया था तो भी उन्हे उसके साथ पाताल जाना पडा था। (औरों का तो कहना ही क्या) बलि और वामन तक को देख लीजिए, सब सब को ठग लेते हैं।

[टिप्पणी—विष्णु ने वामन के रूप मे बलि से तीन पग भूमि का दान मागा था। जब बलि ने दान देना स्वीकार कर लिया तब वामन ने एक पग मे भूमि दूसरे मे आकाश नाप लिया। तीसरे के लिए स्थान न पाकर, उसे बलि के सिर पर रख कर उसे पाताल भेज दिया। इस प्रकार वामन ने बलि को छल लिया। उधर बलि ने वामन से भी वर माग लिया था। इसके फल-स्वरूप वामन को पाताल का द्वारा-रक्षक बन कर रहना पडा। इस प्रकार बलि ने वामन को भी छल लिया।]

५२ मघा पियाउ—मघा = दसवा नक्षत्र। मघा नक्षत्र मे बादल बहुत प्रकार से (अर्थात् खूब जोर से) बरसता है। नदिया उमड कर भर जाती हैं। तो भी, अपने पापों के कारण, पपीहा 'पियाउ पियाउ' (पिलाओ, पिलाओ) रटता रहता है।

[टिप्पणी—यह प्रसिद्ध है कि पपीहा स्वाती नक्षत्रमे बरसी हुई बूँदे ही पीता है और कही से कभी नहीं। कवि कहता है, देखिए मघा-नक्षत्र मे खूब वृष्टि होती है तो भी वह प्यासा चिल्लाता है। उसके अपने पाप ही उसकी प्यास शात नहीं होने देते।]

५३ थरपत आग—थरपत = नष्ट करती है। हर = अग्नि (यहा, ताप, गरमी)। वृष्टि गरमी को नष्ट करती है, संसार को प्रसन्न करती है

और भूमि-आकाश को भर देती है। (तो भी) पपीहे का प्रेम ही सच्चा है क्योंकि वह स्वाति (नक्षत्र मे बरसी हुई) बूंद की आशा लगाए बैठा है, (इस वृष्टि की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता)।

५४ विटप सीस—विटप=पेड। रसाल=आम का वृक्ष। रसाल =रसपूर्ण। मौर=मजरी। हे भँवरे, जगदीश्वर ने इन आम के रसीले पेडो को चाहे बड़ा बनाया है तो भी बसत ऋतु के आने पर ही ये मजरी धारण करेंगे। (भाव यह है कि बड़े व्यक्ति भी हर समय दान-पुण्य-रत नहीं रहते, विशेष अवसरो पर ही अपनी उदारता दिखाते हैं।)

५५ कहा...आहिं—आहि=हैं। हे भँवरे, मन मे यह बात समझ लो कि ये गुलाब के पौदे वही हैं (जिन के फूलो का रस तू पिया करता था)। यदि इन मे कुछ काल फूल नही लगते तो क्या हुआ? (तुम्हें इन का साथ न छोडना चाहिये)। (भाव यह है कि उपकारी महानुभावो को उनके विपत्काल मे त्यागना कृतघ्नता है)।

५६. कत मकरंद—गुडहल=अडहुल का पौदा या फूल। नलिनि=कमल। अलिन=भँवरे। अरे मूर्ख अड़हुल घमंड क्यो करता है? विचार कर देख तो सही। क्या भँवरे कमल को छोड कर तेरे मैले पुष्परस को पिएगे? (कभी नही)।

[टिप्पणी—अडहुल कमल की अपेक्षा देखने मे सुदर परन्तु रस मे निकृष्ट होता है। अत. भँवरे उस की उपेक्षा करते है। इसी प्रकार गुणज्ञ जन रूप की अपेक्षा गुणो की ओर अधिक झुकते हैं।]

पृष्ठ ७०, दोहा ५७ नहिं उठाइ—गजमुक्ता=हाथियों के मस्तक से निकले हुए मोती (जो केवल कवि-संप्रदाय मे ही माने जाते हैं)। गुँजा= रत्ती। जो जिस के गुण नहीं जानता वह उस की निंदा ही करता है। जैसे (गुणों को न पहिचानने वाले) नीच लोग गज-मुक्ता छोड कर रत्तिया उठा लेते है।

५८. सघन होत—उडुगनि=तारो का समूह। निसा=रात। निसानाथ=चन्द्रमा। ('अनगित' के स्थान पर 'अगनित' कर ले)। चाहे आकाश मे असख्य घने तारे प्रकाश करते हैं तो भी रात चांद से ही उत्तम प्रकाश से युक्त होती है। (भाव यह है कि चांद बिना रात अँधेरी ही कहलाती है)।

५९. पंकज संग—भँवरे ने कमल के धोखे से केवड़े का संग कर लिया। (परिणाम यह हुआ कि वह) अन्धा हो गया, काँटों से बिंध गया और (रस-पान की) अभिलाषा भी पूरी न कर सका।

६० परमारथ एक—अवराधत=आराधना करते हैं। गुन एक=एक रस भगवान। जो परलोक सवारने में मग्न रहते हैं और एक अविकारी भगवान की आराधना करते हैं, वे संसार में विरले ही—हजार में कहीं एक—दिखाई देते हैं।

६१ विटप कहाइ—पहुप=पुष्प। रावरे=आप के। हे वृक्ष, हम तुम्हारे फूल हैं। (तुम्हारे पास रहते हुए तुम्हारी) शोभा बढा देते हैं। दूसरे स्थानों पर (लोगों के) सिरों पर विराज कर भी तुम्हारे ही कहलाते हैं (तुम्हारा ही यश बढ़ाते हैं)।

६२ श्रीफल चकचूर—श्रीफल=बिल्व, वेला। अतिनूत=बिलकुल ताज़े, रसीले। भूर=बहुत। सेमर=सेमल, शाल्मली का वृक्ष। वेल, दाख, अंगूर, शहतूत आदि अनेक रसीले फलों को छोड कर तोता (केवल देखने में सुंदर) सेमल के पास चला गया और (वहां उस की) आशा मिट्टी में मिल गई।

६३ केसर...नूर—पूर=ढेर। धूर=चूर्ण। कर पूर=भर कर। रस=शरबत। मोइ समोइ कै=भली भांति डुबा कर। नूर=प्रकाश (यहां, अपना विशिष्ट गुण अर्थात् दुर्गंधता आदि)। चाहे प्याज को केसर के ढेर या काफ़ूर में मिला कर रखे, चाहे अगर के चूर्ण से भर दें, चाहे शरबत में डुबो दें तो भी वह अपनी दुर्गंध आदि को नहीं छोडता।

६४ पतिव्रत . हमेस—छिति=पृथिवी। लौं=समान। (सखी नायक के समुख नायिका-गुण-वर्णन करती है)। वह (नायिका) पतिव्रता के समान व्रतों पर आचरण करती है, तनिक भी झूठ नहीं बोलती, पृथवी के समान शील तथा क्षमा से युक्त है और सदा (तुम्हारे) प्रेम में मग्न रहती है।

६५. सदा सृष्ट—असूया=द्वेष। सृष्ट=उद्भूत, उत्पन्न। (वह नायिका) सत्यरूपिणी और सत्यव्रतधारिणी है। केवल पति ही उसका सच्चा पूज्य देव है। वह ऐसी सुशील तथा ईर्ष्या-हीन है मानो अनसूया (अत्री ऋषि की पत्नी) ही फिर उत्पन्न हो गई हो।

६६. सुचि . मकरंद—हे सखी, पवित्र सुगध तथा मनोहर शोभा से युक्त निर्मल गुलाब का फूल अत्याधिक शोभायमान है और उस से मीठा रस भी टपक रहा है।

*६७. अरुन ब्रजराज—रितुराज = वसंत। पियरे = पीले। अङ्कन = गोद में। (कदाचित कवि ने 'अङ्कन' लिखा हो)। बनक = बाना। लाल, नीले और पीले फूलो के समूह श्री कृष्ण की गोद मे शोभा दे रहे हैं। (इसलिये प्रतीत होता है मानो) श्री कृष्ण ने वसंत-रूपी राजा का वेश धारण किया हुआ हो।

६८. अपत राज—अपत (अपत्र) = पत्र-रहित। जपत करी = जब्त कर ली, छीन ली। बसंत ने (आने से पहले) वन की बेले पत्र-हीन कर दीं और वृक्षों को सजावट छीन ली। (इतने पर भी न जाने) क्या समझ कर बुद्धिमान लोग बसंत को ऋतुओं का राजा कहते हैं।

६६ अग हेत—(नायिका के) अंगो की शोभा और सजधज देख कर सुवर्ण की शोभा भी फीकी पड़ जाती है। भूषण तो (उसके तन पर) कलंक के समान लगते है, फिर भी न जाने क्यो पहनाए जाते हैं।

७० मोर आज—अली = सखी। हे सखी, (श्री कृष्ण के सिर पर) मोर के पंखो का मुकुट था, कमर मे पीताम्बर था और होंटो पर बांसुरी शोभा दे रही थी। (मैं ने) उनके दर्शन पा कर आज निज नेत्र सफल कर लिये हैं।

पृष्ठ ७१, दोहा ७१. जब राम—साके = यश। ताते = अतः। जब यह समझ लिया कि आत्मा को और कहीं भी शान्ति नहीं मिल सकती तब श्री राम के चारो युगों में (फैले हुए) यश को सुन कर उन्हीं की ओर (कृपाकांक्षी) दृष्टी से देखा।

७२. जो बखानि—जो कुछ पूर्ववर्ती कवियो ने काव्यमयी वाणी बोली है, उसे विचार कर ही मैंने सुन्दर दोहे कहे हैं। (इस दोहे मे विक्रम पूर्ववर्ती कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन करते हैं क्योंकि इन्हों ने बहुत से भाव उन्हीं से ग्रहण किये थे।)

३. सम दूरि—विषम दरस=असमदर्शी। सासारिक भाग और शाश्वत मुक्ति उन लोगों को सुप्राप्य है जो सब के साथ सम बर्ताव करते हैं। परन्तु वे दोनों वस्तुए उन लोगो को सदा अप्राप्य हैं जो सब के साथ सम व्यवहार नही करते।

——:o:——

गुरु नानक

गुरु नानक (सवत् १५२६-१५९६) सिक्ख संप्रदाय के प्रवर्तक थे। इन का जन्म ननकाना साहब (पजाब) मे हुआ। इन के पिता का नाम कालू (कल्याणचंद) खत्री था। गुरु नानक के उपदेशों से जहाँ हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के समीप आ गए वहा एक ऐसा सप्रदाय (सिक्ख) भी बन गया जिस ने पजाब मे हिंदुओ की मान-मर्यादा की रक्षा की। इन्होने देश-विदेश मे यात्रा की और लोगो को ईश्वर-भक्ति तथा सदाचार का उपदेश दिया। इन के सब गीत भक्ति-रस तथा वैराग्य से पूर्ण हैं और उन मे पजाबी शब्दों का बाहुल्य है। इन के गीत 'ग्रथ-साहब' मे सगृहीत हैं।

*पृष्ठ ७२, दोहा १ कलिया खेदु—('धडले' तथा 'धडलियां' के स्थान पर 'धउले' तथा 'धउलियो' कर ले)। कलिया=काले। थी=से। धउले=श्वेत-कृष्ण। मता मनोंदिया=योजनाए तैयार करते करते। खेदु=खेत (यहा, शरीर)। काले बाल पहले कुछ-कुछ सफ़ेद हुए और फिर बिलकुल सफेद हो गए। गुरु नानक कहते हैं, योजनाएं तैयार करते करते ही शरीर नष्ट हो गया।

२ जागो .पसारि—गुरुनानक कहते हैं—अबभी जागने का समय है, जिन्हे जागना हो जाग लें। जब पाव फैला कर सो जाओगे, अर्थात् मर जाओगे, तब जागना असभव हो जायगा। (भाव यह है कि जब तक जीवन है हरिभजन कर लो, मृत्यु-समय कुछ भी करते-धरते न बनेगा)।

३. मित्रा जाइ—अति भाइ=अत्यत प्रिय। हस=आत्मा। गुरु नानक कहते हैं—अत्यंत प्रिय मित्र-सखा तथा धन-संपत्ति ने (मरते हुए मनुष्य का साथ) छोड़ दिया। (उस समय) कोई साथी नहीं होता। वह जीवात्मा अकेला ही (परलोक) जाता है।

४. हिरदे...भरपूर—पूरि रह्या = समा रहा है। गुरू नानक कहते हैं, जिनके मन में भगवान् रहते हैं उन्हे ही शूरवीर कहना चाहिए। वह प्रभु (सर्वत्र) भली भाँति व्याप्त हो रहा है, उसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

५. सूरा...रजाय—'एकन' के स्थान पर 'एह न' पाठ चाहिए। आँखियन = कहना चाहिए। दला = सेना। मंनणु = मानते है। रजाय = इच्छा, आदेश। गुरु नानक कहते हैं :—सूरमा उसे न कहना चाहिए जो सेना में लडने के लिए जाता है। (सच्चा) शूरवीर तो वही है जो भगवान् के आदेश तथा इच्छा को शिरोधार्य करता है।

६ मन...खोइ—गुरु नानक कहते हैं:—मन की दुविधा ही दूर नहीं होती, फिर मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है। मनुष्य तुच्छ पदार्थों (विषय भोगों) के बदले अपना (अति मूल्यवान्) मनुष्य जन्म नष्ट करके मर जाता है।

सूरदास

सूर दास जो कृष्ण-भक्ति-शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं। इन का जन्म सवत् १५४० के लगभग तथा स्वर्गवास संवत् १६०७ के लगभग हुआ। ये मथुरा तथा आगरा के बीच मे वर्तमान रुनकता (रेणुका क्षेत्र) मे श्रीराम दास जी सारस्वत ब्राह्मण के घर मे उत्पन्न हुए। कहा जाता है यह जन्मांध न थे पर एक सुदरी (जिस पर ये आसक्त हो गए थे) द्वारा इन्होंने निज नेत्र फुडवा लिए थे। इनके रचे हुए पांच ग्रंथ कहे जाते हैं:—सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नलदमयन्ती, ब्याहलो। इनकी कविता शांत, वात्सल्य तथा शृंगार-रस से पूर्ण है और साहित्यिक ब्रज भाषा में लिखी गई है। यहा केवल प्रेम और भक्ति के दोहे ही दिए हैं।

पृष्ठ ७२, दोहा १—सुनि...वारि—परमित = मर्यादा, रीति। पारि = पार, तरफ। अंत = अन्यत्र। प्रीत की रीत को सुन कर पपीहा (दूरस्थ बादल की) तरफ ही देखता है। वह बादल बरसने की आशा से सब कष्ट सहता रहता है पर और से पानी नहीं माँगता। (भाव—प्रीत की रीत यही है कि प्राण रहते अपने प्यारे के सिवा और किसी से प्यार न करना)।

२. देखो .समेत—कमल के (सराहनीय) कृत्य की ओर देखो। उस ने पानी से प्रेम किया। सरोवर के साथ वह भी सूख गया। उसने प्राण छोड़ दिए परन्तु प्रेम नहीं छोडा।

३. दीपक.. संग—पतगा आग (दीपक की ज्वाला) मे कूद पडता है परन्तु दीपक उसके (प्रेम जनित) कष्ट को नहीं जानता। पतगे का शरीर तो कसकी ज्वाला मे जल जाता है परन्तु उस के मन का प्रेम नष्ट नहीं होता।

४. मीन जात—रति=प्रेम, अनुराग। मछली तो (जल का) वियोग नहीं सह सकती, परन्तु पानी उसकी तनिक भी परवाह नहीं करता। तुम उस (मछली) की (प्रीत की) रीत तो देखो कि उस का शरीर नष्ट हो जाने पर भी प्रेम कम नहीं होता।

५. सदा...भगवान—सँघाती=सहचर। जो अपना नित्य का साथी है जीन का जीवन तथा प्राणाधार है, उस अनेक नामो वाले भगवान् को तुम सहज ही भूल गए।

६. खग और—सोधे=ढूँढे। मैं ने सभी स्थान ढूँढ मारे। जल-स्थल मे जितने पक्षी, पशु, मछली (आदि जलचर) तथा कीड़े-पतगे हैं (उन मे भी ढूँढा)। और कहाँ तक कहूँ। (प्रभु को अपने अन्दर ही पाया)।

७ प्रभु...हाथ—जिसके अधीन हमारा जीवन है, वह प्रभु परिपूर्ण, पवित्र, सखा, प्राणेश्वर, तथा अत्यन्त दया और कृपा से युक्त है।

पृष्ठ ७३ दोहा ८—१०—जिन ..नीच। (८–१०, ये तीनों दोहे परस्पर सबद्ध है)। चिकुर=केश। असन—भोजन। वसन=वस्त्र। औसर=(अवसर) मौका। कहँवा=कहाँ। कुमीच (कुमृत्यु)=बुरी मौत। जिस हरि ने (सत्त्व, रज और तम इन तीनों) गुणो तथा (पृथिवी आदि पांचों) भूतों के मेल से (हमें) जड से चेतन कर दिया, जिस ने (हमें) पॉव, केश, हाथ, नाखुन, आखे, नाक तथा कान दिए, जिस ने मौके २ पर अनेक प्रकार के भोजन तथा वस्त्र ला कर दिए, (जिस की कृपा से) नई रुचि के अनुसार (स्नेही) माता, पिता तथा भाई प्राप्त हुए, ऐसे हरि से प्रेम करना भूल कर जो नीच मनुष्य सुख की अभिलाषा करता है, वह न जाने कहाँ कैसी बुरी मौत मरेगा।

११. जो...गँवार—एकहु अंक—एक वार। सूरदास कहते हैं:—हे मूर्ख और दुष्ट मनुष्य, तू एक बार भी हरि का भजन नहीं करता। जो तेरे मन में जरा भी लज्जा नहीं तो मेरा तुझे सौ बार समझाना भी व्यर्थ है।

हितहरिवंश

(संवत् १५५९—१६२४)

ये देवबंद (अथवा देव नगर) के निवासी गौड़ व्यास स्वामी नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इन के पिता का उपनाम हरिराम शुक्ल, माता का तारा वती, तथा पत्नी का रुक्मिणी था। ये राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। ये संस्कृत हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान् थे। कहा जाता है कि राधिका जी ने इन्हें मंत्र-दीक्षा दी थी। ये कृष्ण की बाँसुरी के अवतार माने जाते हैं। इन्हों ने 'राधा-सुधा-निधि' संस्कृत मे लिखा। हिंदी मे इन्हो ने 'हितचौरासी' नाम से ८४ अत्यंत मधुर और प्रवाह पूर्ण गीत तथा कुछ दोहे लिखे जिन का विषय राधा-कृष्ण-भक्ति है।

पृष्ठ ७३, दोहा १. तनहिं ..सेव—सेव=भिगो दो। हित हरिवंश कहते हैं, (हे मनुष्य, यदि) सुख चाहते हो तो शरीर से सत्संग करो, मन को प्रेम-रस मे भिगो दो और श्री कृष्ण-रूपी कल्पवृक्ष की सेवा करो।

२ निकसि...बंस—निकसि=निकल कर। ठाढ़े=खड़े। अंस=कंधों पर। एक दूसरे के कंधो पर बाँहे रखे हुए राधिका और कृष्ण कुंज से निकल कर खड़े हो गए। हितहरिवंश उनके मुख-कमलों को देखता है (और भक्ति-रस मे मग्न हो जाता हैं)।

३. सब .नाम—निहकाम=निष्काम। सब का भला (करो)। मन को निष्काम (बनाओ), वृन्दावन में (रह कर) शांति-लाभ करो, प्रिय राधा-कृष्ण का मन से ध्यान और जिह्वा से जप करो।

४ रसना...बैन—वह जीभ कट जाए जिस ने राधा जी का जप नहीं किया। वे नेत्र फूट जाएं जिन्हो ने उन के दर्शन नहीं किए, और वे कान फूट जाए जिन्हो ने उनके यश के वचन नहीं सुने।

श्रीभट्ट

श्रीभट्ट निंबार्क संप्रदाय के अनुयायी थे और वृन्दावन में रहा करते थे। इन के जन्म-मृत्यु के समय का ठीक पता नहीं परन्तु इन का कविता-काल सं० १६३० के आस-पास है। इन्होंने दो ग्रथ लिखे—'आदि वाणी' तथा 'जुगुल शत'। इन की रचना मनोमोहिनी होती हुई भी साधारण कोटि की है। नाभादास जी ने भक्त-माल में इन का उल्लेख किया है। इन की अधिकतर कविता श्री राधा-कृष्ण के प्रेम से ही संबंध रखती है।

पृष्ठ ७३, दोहा १—मोहन ..राज—व्रजभूमि के सभी लोग, वहाँ के सब प्राकृतिक पदार्थ, तथा यमुना-तट के वे लतामंडप जहां श्री कृष्ण विहार किया करते थे, मन को हर लेने वाले हैं।

२. सेव्य ..उपासि—सेव्य = सेवा करने योग्य। वृषभानुजा = राधा। वृन्दावन में विहार करने वाले श्री कृष्ण तथा राधा जी सदा हमारे आराध्य हैं। हम केवल उन के ही चरणों के उपासक हैं।

३. आन .सोय—आनै = लाता। स्यामा = राधिका। जो औरों की कही को मन में नही लाता और हरि तथा गुरु से प्रेम करता है, वही मनुष्य आनंदमय राधाकृष्ण के उत्तम चरणों में पहुंचता है।

४. जन्म ..किसार—सुधाकर = अमृत की खान। ठाकुर = स्वामी। हम अनेक जन्मों से रात-दिन जिन के सेवक हैं, वही तीनों लोकों को पालने वाले और अमृत की खान राधा-कृष्ण हमारे स्वामी हैं।

पृष्ठ ७४, दोहा ५—तनिक. .मीन। धुनि = ध्वनि, आवाज़। वंसी = मछली पकड़ने का बांस। प्रिय श्री कृष्ण की बांसुरी मन-रूपी मछली को पकड़ने का बांस है (यह मन उस बाँसुरी की) ध्वनि सुन कर ज़रा भी धैर्य नहीं रख सकता, (तुरन्त) उस के वस में हो जाता है।

६. मेरे...चारु—अघटना = अघटित बात। हे राधे, हे कृष्ण, जो बात अभी मेरे मन में भी नहीं उपजी, उसे भी तुम जानते हो। तुम ने मुझे (अपने) सुंदर चरणों के दर्शन कराए, (अतः) मैं तुम पर बलिहार जाता हूँ।

७. ढारौं ..देह—सु देह = स्वदेह से (स्वयं)। जहां श्री राधा-कृष्ण सो रहे हैं, (वहां पहुंच कर) अपने हाथों से चँवर झुलाऊँ, अपनी

आंखो को प्रेम पूर्ण कर लूँ और स्वयं उन के चरण दबाने लग जाऊँ।

८. अंग .किसोर—विवि (द्वि) = दोनों। (राधा-कृष्ण के) सब अंग प्रकाश तथा माधुर्य से पूर्ण हैं। कवि उन दोनों के मुख रूपी चंद्रमा का चकोर है। श्री भट्ट की दृष्टि उस नट-शिरोमणी नववयस्क श्रीकृष्ण के सिवा और कुछ भी नहीं देखती।

हरिराम व्यास

यह उर्छा, बुँदेलखंड में रहा करते थे। इन का कविता-काल सं० १६१५ है। इन के लिखे हुए पाच ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। (१) बानी (२) रास के पद (३) ब्रह्मज्ञान (४) मंगलाचार पद (५) पद (छोटे आकार के २०० पृष्ठों का)। इन्होंने वृन्दावनियों के हरिव्यासी मत को चलाया। इनकी कविता साधारण श्रेणी की थी। प्रस्तुत दोहे भक्ति तथा नीति के विषय मे कहे गए हैं।

पृष्ठ ७४, दोहा १. आदि परतीति—परतीति = विश्वास। व्यास कवि कहते हैं—आरंभ, समाप्ति तथा बीच की दशा में अर्थात् नित्य भक्तों की रीति को अंगीकार करके मुझे यह विश्वास हो गया है कि सभी संत गुरुदेव-तुल्य होते हैं।

२ व्यास . भार—कथनी = बात करना। करनी = कार्य करना। खर = गधा। व्यास कहते हैं—बातें करने से कुछ लाभ नहीं, कार्य करना ही श्रेष्ठ काम है। भक्ति-हीन विद्वान् जन (का जीवन) वैसा ही निष्फल है जैसे गधे पर चन्दन का भार लदा हुआ हो।

*३ व्यास ..तनु-हानि—कूकर = कुत्ता। व्यास कहते हैं—जगत् का यश कुत्ते की पहिचान के समान है। वह प्रेम करने पर मुँह चाटने लगता है और शत्रुता करने पर शरीर को घायल कर देता है। पहली दशा में शरीर अपवित्र हो जाता है दूसरी में देह को असह्य कष्ट प्राप्त होता है। इस लिए न कुत्ते का प्रेम अच्छा न द्वेष। इसी प्रकार जनता से यश तभी मिलता है जब उनकी उचित-अनुचित सब अभिलाषाओं को पूर्ण करके आत्मा को अपवित्र किया जाए। यदि उन्हे प्रसन्न न रखे तो यश मिलना तो दूर, उलटा वैर करके हत्या ही कर डालते हैं। इस लिए उपेक्षा की नीति ही श्रेष्ठ है।

४. व्यास कोय—हरुवौ = हलका, छोटा। व्यास कहते हैं—कुछ आशा रख कर माँगने से (औरो का तो कहना ही क्या) हरि भी हलके हो जाते हैं। सब इस बात को जानते हैं कि हरि बौने (छोटे) बन कर बालि के पास (तीन पग भूमि माँगने) गए थे।

५ हरि उपहास—चौंप = चाव, अभिलाषा। भगवान् बहुमूल्य रत्न के समान हैं। कवि व्यास दरिद्र गाहक के तुल्य है। वह उस ऊँचे फल को कैसे प्राप्त कर सकता है! उस की यह (दुष्प्राप्य) अभिलाषा ही उसे परिहास का पात्र बना रही है।

६ मुख किसोर—व्यास कहते हैं :—(तुम्हारी) वाणी तो मधुर है परन्तु मन बिलकुल दया-हीन है। फिर बताओ, उस चतुर नंदकिशोर को कैसे पा सकते हो (जो तुम्हारे दिल की दशा जानता है)?

७ व्यास अभिराम—अभिराम = आनंद। व्यास कहते हैं:—(तुम) इधर तो सांसारिक ऐश्वर्यों की आशा लगाए बैठे हो और उधर हृदय में श्री कृष्ण को चाहते हो। अरे लज्जा-हीन, नीच मनुष्य, (इस अवस्था में भी) आनंद की इच्छा करते हुए तुम्हें संकोच नहीं होता?

८. मो . गाय—गड्यौ = फंस गया है। चहले = कीचड में। मेरा मन श्री कृष्ण पर मुग्ध हो गया है। वह उन के सौन्दर्य में ऐसे फंस गया है कि कीचड़ में फसी हुई निर्बल गौ के समान निकल नहीं सकता।

९. साधुन . रोप—रोष = क्रोध। व्यास कहते हैं कि संतो की सेवा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो संतों की उपेक्षा करके भगवान् का भजन करते हैं, भगवान् का क्रोध उन पर प्रतिदिन बढता जाता है।

पृष्ठ ७५, दोहा १०. सती . ठौर—सती, शूरवीर तथा साधु लोगों के तुल्य और कोई नहीं होता। ये उस मार्ग पर पाँव रखते हैं जो बडा विकट है। उस से गिरने वाले को (बचाव का कोई स्थान नहीं मिलता।

११ अपने किसोर—मत = सिद्धान्त। बादि = व्यर्थ। अपने-अपने सिद्धान्तों से चिपटे हुए (सांप्रदायक लोग) व्यर्थ ही शोर मचा रहे हैं। (सार तो यह है) कि सब को किसी-न-किसी मार्ग से, श्री कृष्ण महाराज की ही सेवा करनी है।

ध्रुवदास

इनका रचना काल लगभग संवत् १६८१ से १७०६ तक है। ये स्वप्न द्वारा हितहरिवंश के शिष्य हुए। यह रास लीला के बड़े अनुरागी थे। इन का काव्य भक्तिपूर्ण तथा सरस है। इन की कविता व्रजभाषा में है, जो अच्छी है। इन्हे तोष की श्रेणी मे रखा जाता है। इन्हों ने छोटे छोटे दर्जनों ग्रंथों की रचना की जिन मे से मुख्य ये हैं:—

बानी (२०० पृष्ठ फूलसकेप साईज के, श्रीकृष्ण लीला विषयक) वृन्दावन सत, सिंगार सत, रस रत्नावली, नेह मंजरी आदि। प्रस्तुत दोहे भक्ति की महिमा तथा श्री राधा कृष्ण के प्रेम के विषय में है।

पृष्ठ ७५, दोहा १ सेवा उपजाइ—सेवा और तीर्थ-यात्रा का फल तो उसे (मनुष्य को) समय पाकर ही मिलता है (और वह चिर स्थायी भी नहीं होता), किन्तु भक्तों का संग एक ही क्षण में सब भक्ति को उत्पन्न कर देता है (और उस से मन को स्थायी शान्ति मिलती है)।

२ जिन काल—पदरज=चरणधूली। ध्रुवदास कहते हैं—जिन के मन में प्रिय राधा कान्त (श्री कृष्ण) रहते हैं उन की चरण-धूली ले कर सदा पीते रहो।

३. जिन के . अधार—जुगुल=राधाकृष्ण की जोडी। जिन के जतलाने से चाँद-सी सुन्दर जोडी (श्री राधा-कृष्ण) जानी जाती है, उन की चरण-धूल मैं ने निज मस्तक पर धारण की है। ध्रुवदास का आसरा यही है।

४ सकल खोइ—बयस=आयु। बितई=व्यतीत की। यदि सारी आयु पुण्य-कर्मों में व्यतीत की हो तो भी भक्तों के प्रति किया हुआ केवल एक अपराध ही उन सब (पुण्यों के फल) को नष्ट कर डालता है।

५. और लीक—अघ-मुचन=पाप-नाश। नीक=बढ़िया, श्रेष्ठ। और सब पापों से छुडाने के लिए तो प्रभु-नाम ही श्रेष्ठ उपाय है, परन्तु भक्त-द्रोह रूपी पाप को नष्ट करने का कोई साधन नहीं। वह तो हीरे (या पत्थर) पर की रेखा के समान अमिट है।

६ निंदा . पासि—अघरासि=पाप निधान, महापापी। भानुसुत=यमराज। पासि (पाशि)=फंदा। जो महापापी भक्तों की निंदा करते और सुनते हैं वे दोनों एक-साथ ही यमराज के फंदों में बाँधे जाते हैं (और नरक-दुःख भोगते हैं)।

७ भूलिहुं...थोर—भूल कर भी भक्तों की निन्दा की तरफ़ मन न देना चाहिए। इस का उसको भारी पाप लगता है। थोडा नहीं। यह बात अपने मन में समझ लो।

८. सेवा . जाइ—वेगिहीं = शीघ्र । अरचहु = सेवा करो। भगवान् की सेवा करते समय यदि भक्त-जन आ उपस्थित हो तो भगवान् की सेवा तुरन्त छोड कर भक्तो की सेवा आरम्भ कर दो।

९. मन फूलि—श्वपच = चांडाल। भूल भक्तों से भी हो जाती हैं। (अतः उन की अपेक्षा अपने को बडा समझ कर) हृदय मे दर्प न लाना चाहिए। यदि भक्त चाडाल आदि भी हों तो उन से प्रसन्नतापूर्वक मिलना चाहिए (अभिमानवश परे न रहना चाहिए)।

१०. जिहि ताहि—सुर = देवता। जिस (मानव) शरीर को देवता आदि सभी सदा चाहते हैं, अरे मूर्ख, उसे प्राप्त कर के भी तू व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है।

दादू

इनका जन्म स० १६०१ मे हुआ। जन्मस्थान का ठीक पता नहीं परन्तु प्राय: अहमदाबाद (गुजरात) में कहा जाता है। कोई इन्हें ब्राह्मण कहता है, कोई मोची और कोई धुनिया। कहा जाता है यह बालक रूप में एक ब्राह्मण को साबरमती नदी में बहते हुए मिले थे। यह सब को दादा कहते थे और बड़े दयालु थे, इसी लिये इन्हे दादू दयाल कहते हैं। इन्होने देशाटन पर्याप्त किया और जयपुर के पास भराने की पहाडी पर १६६० में स्वर्ग सिधारे। वह स्थान दादू पन्थियों का केन्द्र है और वहीं दादू के वस्त्र तथा ग्रन्थ विद्यमान हैं। दादू के शिष्यो मे सुन्दरदास, जन गोपाल तथा मोहनदास अच्छे कवि हुए हैं। ये निराकार के उपासक थे और उसे ही सब में व्यापक राम कह कर उसी की पूजा का उपदेश देते थे। ये हिन्दी, फारसी, गुजराती, मराठी आदि कई भाषाएं जानते थे।। गुजराती तथा हिन्दी मे इनकी कविताएं अत्यन्त हृदयस्पर्शी हुई हैं। टैगोर तथा दादू के भावों तथा कहने के ढङ्ग में कहीं-कहीं बहुत समता पाई जाती है। इनकी कविता मे कबीर-का मा तो नहीं परन्तु उनमे प्रेम का मनोहर रूप बडी विलक्षणता से स्फुटित

हुआ है। ये भी कबीर के समान ही, हिन्दू-मुसलमान का भेद न मानते थे।

इनके बनाए हुए सबद, बानी तथा भजन प्रसिद्ध हैं। कविता की दृष्टि से इनकी रचनाएं साधारण श्रेणी की हैं। उनमे संसार की असारता तथा निराकार व्यापक राम की भक्ति का उपदेश है।

पृष्ठ ७६, दोहा १ घीव...और—दादू कहते हैं:—परमात्मा सब स्थानो मे ऐसे व्यापक है जैसे घी दूध (की प्रत्येक बूद) मे समाया हुआ है। इस बात को कहने वाले तो बहुत हैं परन्तु बिलोकर निकालने अर्थात् योगादि साधनों से प्रभु को पाने वाले बिरले ही हैं।

२ दादू ..होय—दीया=दान करना। दादू कहते हैं:—दान करना शुभ काम है। तुम सब दान दिया करो। यदि हाथ मे दिया (दीपक) न हो तो घर मे पडी वस्तु भी (रात को) दिखाई नहीं देती। (इसी प्रकार हाथ से दिया न हो, दान न किया हो, तो परलोक मे भी कुछ नहीं मिलता)।

३. कहि. .अजान—बपुरा=बेचारा। मेरी जिह्वा सुना-सुनाकर हार गई और तुम्हारे कान सुन-सुन कर। जब चेला नितान्त मूर्ख हो तो वेचारा श्रेष्ठ गुरु भी क्या कर सकता है।

४. सुख होइ—साइयाँ=स्वामी, प्रभु। दादू कहते हैं:—सुख की दशा में सारा ससार हमारा साथी होता है; दुःख की दशा मे कोई साथी नहीं होता। हे स्वामी, दु ख में तो केवल सच्चा गुरु (भगवान्) ही साथी होता है।

५. दीदू दूर—दादू कहते हैं कि दयालु परमात्मा को देखो। वह सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वह (सब के) रोम-रोम मे समाया हुआ है; तुम उसे दूर मत समझो।

६. मिसरी . हंस—दादू कहते हैं:—जैसे मिसरी से मिल कर बाँस भी (उसी भाव से) मोल बिक गया वैसे ही जीवात्मा भी परमात्मा से मिलकर अतिमूल्यवान् हो जाता है।

[टिप्पणी—कूजा मिसरी की ओर संकेत है जो बांस की तीली पर जमाई जाती है।]

७. केते खाइ—पारखि=रत्नपरीक्षक; योगी। दादू कहते हैं:—

पृष्ठ ७७. दोहा १ जहाँ .जाय—रमैया = राम, परमेश्वर। बछड़ा जिधर घूमता है, गाय उधर ही जाती है। मलूकदास कहते हैं, जहा साधु-सन्त जाते हैं, वहीं भगवान् भी पहुँच जाते हैं।

२. अजगर...राम—अजगर = बकरों तक को निगल जाने वाला बडा सांप, अजदहा। मलूकदास यों कहते हैं—अज़दहा (किसी की) नौकरी नहीं करते और पन्छी (किसी का) काम नहीं करते (तो भी उनका पेट भर जाता है) क्योंकि सब को देने वाले तो भगवान् हैं (मनुष्य नहीं)।

३ मलुका ..बेपीर—काफ़िर = नास्तिक। बेपीर = निर्दय, वेदर्द। मलूकदास कहते हैं, वस्तुत वीर वही है जो पराई पीडा में स्वयं पीडा अनुभव करता है। जो दूसरे के कष्ट से दु.खी नहीं होता वह निर्दय नास्तिक है। (भाव यह है कि सहानुभूतिशून्य व्यक्ति भक्त नहीं हो सकता)।

४. माला विसराम—मैं अब राम के नाम का जप न माला फेर कर करता हूं न हाथ (की उंगलियों) से गिन कर। मैं जिह्वा से भी 'राम-राम' नहीं जपता। मेरे जप के काम को राम स्वयं कर लेते हैं। मैंने तो अब परम शान्ति पा ली है। (भाव—सिद्धयोगियों को माला जप आदि की आवश्यकता नहीं रहती, वे निरन्तर प्रभु मे मग्न रहते हैं)।

५ दया . नैन—जिनके मन में दया रूपी धर्म निवास करता है, जो अमृत-सी (मधुर) वाणी बोलते हैं, जो आंखें नीची रखते हैं, अर्थात् नम्रता युक्त हैं, उन्हे ही श्रेष्ठ समझना चाहिये।

६ आदर ..देह - सत (सत्त्व) = सामर्थ्य। वालापन = बचपन। गौरव-प्रतिष्ठा, वडाई, सामर्थ्य तथा बचपन का प्रेम—ये चारों वस्तुए तभी नष्ट हो जाती हैं जब कहा जाता है—'कुछ दो'।

७ प्रभुता होय—सब लोग अधिकार-प्राप्ति के लिये ही भरसक उद्योग करते हैं। प्रभु-प्राप्ति के लिए कोई भी नहीं। (पर तथ्य यह है कि) जो प्रभु प्राप्ति के लिए उद्योग करेगा, अधिकार उसको स्वयमेव प्राप्त हो जायंगे।

सुंदरदास

सुन्दरदास का जन्म स० १६५३ मे द्यौसा (जयपुर) में हुआ। इन के पिता का नाम परमानंद तथा माता का नाम सती था। बचपन में ही ये दादू दयाल के शिष्य बन गए। इन्हों ने १६ वर्ष तक काशी में वेदान्त, दर्शन तथा पुराणादि का अध्ययन किया। ये हिन्दी, फारसी, गुजराती तथा मारवाड़ी भी जानते थे। सुन्दर दास नाम के अनुसार ही ऊँचे, गोरे और सुंदर थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे और स्त्री चर्चा से घृणा करते थे। इन्हों ने अपनी कविताओं मे विभिन्न प्रांतों की विशेषताओं का रोचक वर्णन किया है। ये अच्छे ज्ञानी, काव्य मर्मज्ञ तथा उत्तम कोटि के कवि थे। वेदांत पर इन की कविता बडी सुन्दर है।

इन्हों ने छोटे बडे ४० ग्रथ लिखे जिन में से कुछ ये हैं:—हरिबोल, चितावनी, साखी, सवैया, सुन्दर सांख्य, तर्क चिन्तामणि, ज्ञानविलास, सुन्दरविलास, सहजानंद, अद्भुत उपदेश। प्रस्तुत दोहे वेदान्त-संबन्धी हैं। इनका देहान्त संवत् १७४६ जयपुर के पास हुआ।

पृष्ठ ७७. दोहा १ वैद्य...जाम—सुन्दरदास कहते हैं:—हमारे वैद्य श्री राम चन्द्र हैं और औषधि ईश्वर का नाम। आठों पहर उन के नाम का जप करना ही अब (हमारे रोग का) उपाय है।

[टिप्पणी—यह दोहा सुन्दर दास ने अपनी अंतिम बीमारी में रचा था।]

२. सुन्दर देह—महुच्छव = महोत्सव। सुन्दरदास कहते हैं—शरीर चाहे रहे या नष्ट हो जाए, किन्तु यदि आत्मा परमात्मा से मिल जाए तो इसे बड़ा भारी उत्सव समझना चाहिए, इस में कोई भी सदेह नहीं।

३ सुन्दर...हजूर—गाफ़िल = प्रमादी। हाजिर = उपस्थित। हाजरां = विद्यमान। हजूर = भगवान्। सुन्दर दास कहते हैं—जब मैं ने प्रमाद किया तो वह प्रभु मुझ से दूर रहा और जब सेवक (मैं) उपस्थित हुआ तो भगवान् भी झट प्रकट हो गए।

पृष्ठ ७८, दोहा ४. सुन्दर . जानि—सुन्दर दास कहते हैं—कि पक्षियों ने (रात को) वृक्ष पर आकर निवास किया। वे रात रह कर प्रातः उठ कर चले गए। पारिवारिक जनों की स्थिति सी ऐसी ही अस्थायी है।

५ लौन .बिलाइ—लौन पूतरी = निमक की गुडिया। सुन्दर दास कहते हैं कि निमक की गुडिया समुद्र में थाह पाने उतरी । वह थाह तो न पा सकी, (स्वयं ही) उस मे घुल कर अदृश्य हो गई। (भाव यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंत नहीं पा सकता, उसी मे समा जाता है)।

उसमान

इन के जन्म-मरण का संवत् ठीक विदित नहीं परन्तु इन्हों ने १६७० मे चित्रावली नामक प्रेम काव्य दोहा-चौपाई मे लिखा था। ये जहाँगीर बादशाह के समय ग़ाज़ीपुर मे शेख़ हसन के घर में उत्पन्न हुए थे। इनकी चित्रावली अच्छी सरस और मनोहर है। उस मे चित्रावली की वाटिका, नखशिख, विरह, षड् ऋतु आदि का वर्णन बहुत ही हृदय हारी है। इन के काव्य मे अंगरेजों का भी वर्णन है जिन्हों ने उन्हीं दिनों सूरत मे कोठी बनाई थी। प्रस्तुत दोहे प्रेम, वैराग्य तथा नीति-विषयक हैं और चित्रावली से लिए गए हैं। इन के और ग्रंथ दुर्लभ हैं ।

पृष्ठ ७८, दोहा १ मान सार—उसमान कहते हैं—जो कुछ (शुभ काम) करने में समर्थ हो, कर डालो, उस प्रभु की महिमा अवर्णनीय और असीम है। केवल कहने मात्र से कुछ हाथ न आयगा, कर्तव्य का पालन ही तत्त्व की बात है।

२ काँन . जाय—शरीर का क्या भरोसा है। इस (की रक्षा) के लिए यत्न और उपाय करना त्याग दो। जैसे कागज़ की पुतली पानी पड़ने से गल जाती है (वैसे ही यह काया नश्वर है)।

३ तब ..समार—लहु = तक। बार = वेला, दिन। (प्रभु के) वियोग का कष्ट तब तक सह लेना चाहिए जब तक वह (प्रभु के मिलने का) दिन नहीं आता। सब जगत् जानता है कि दुःख के बाद सुख मिलता है।

४. सब .भात—रस = शोरबा। और सब के लिए तो पांच ही पदार्थ (दूध, दही, घी, चीनी तथा मधु) अमृत होते हैं, परन्तु बंगालियों के लिए केला काँजी ,पान शोरबा, साग, मछली और चावल-ये सात पदार्थ अमृत होते हैं।

५. छत्रों.. कारि—जोहारि = पुकार। पुहुमी = भूमि। कारि = काला।

स्त्री तथा गौ की पुकार सुन कर जो क्षत्रिय 'न' कर देता है (सहायता नहीं करता), उसे पृथिवी पर सब गालियाँ मिलती हैं और स्वर्ग में उस का मुँह काला होता है।

६. कहा खोज—सकबँधी=शकों को नाशक। हेराइगे=लुप्त हो गए। शकों को नष्ट करने वाला वह विक्रम और वह (प्रतापी) भोज राजा कहां चला गया। अहङ्कार करते हुए वे लुप्त हो गए। अब, ढूंढने पर भी उन का पता नहीं लगता।

नागरीदास

(संवत् १७५६—१८२१)

ये कृष्णगढ़ (राजपूताना) के शासक थे। इन के पिता महाराजा राजसिंह थे। ये राठौर क्षत्रिय थे। कवि होने के साथ-साथ ये बड़े वीर भी थे। घरेलू झगडों के कारण राजपाट छोड कर सं० १८१४ में वृन्दावन चले गये और वहीं इनका अन्त हुआ। वृन्दावन इन्हें अत्यधिक प्रिय था। वहां इनका सुकविता के कारण अत्यधिक मान हुआ। इनकी कविता बड़ी सरस तथा भक्ति रस-पूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य-रसिकों को उनके ग्रन्थ अवश्य पढने चाहिए। इन्हो ने ७५ ग्रंथों की रचना की, जिनमें से कुछ ये हैं:—सिंगारसार, गोपी प्रेमप्रकाश, व्रजसार, भोरलीला, बिहारचन्द्रिका, फूलविलास, फागविलास, ग्रीष्मविहार।

पृष्ठ ७८, दोहा १ मो ..धूँध—तीन ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक क्लेश। धूँध=धुंध (यहां छाया)। तीनों तापों को शान्त करने वाली (वृन्दावन के) घने वृक्षों की छाया कब मेरी आंखों को ढक लेगी ?

२. कब . पाय—कब मेरे चरण वृन्दावन की (पुण्य) भूमि पर पड़ेंगे ? कब मैं वहां की धूल कुछ सिर पर धारण करके और कुछ मुख से छुवा कर, उसमें लोट-पोट हो जाऊँगा ?

३. पिक पसार—पिक=कोयल। केकी=मोर। जिन (वृन्दावन के वृक्षों) पर कोयलें और मोर कूक रहे हों तथा वानरों के समूह बैठे हों,

उनको कब अपने पास देख कर भुजाएँ फैला कर मिलूँगा ?

४ जमुना ..चाय--सुभग=सुन्दर । पुलिन=रेतीला किनारा। कब चांदनी रात में यमुना के तट पर रेतीले मैदान मे मैं अकेला होऊँगा, मेरा मन चाव से भर जायगा, तथा वाणी शान्त हो जायगी ?

पृष्ठ ७६, दोहा ५ सिर ..जूटि--मंजुल=सुन्दर। लिलाट=मस्तक। उभै=दोनों । जूटि=घनापन । (श्रीकृष्ण के) सिर पर सुन्दर मुकुट शोभायमान है, केश कमर तक लटक रहे हैं और दोनों घनी भवें सुन्दर मस्तक पर विराज रही हैं ।

६. कुडल . कांत—जिनके गालों पर कुण्डलों की झलक अनेक प्रकार से शोभा दे रही है, उन (श्रीकृष्ण) के मुख-रूपी चन्द्रमा की छटा इन आंखों से कब देखूँगा ?

७. ता ..चैन--सैन (शयन)=सोना । (जिस दिन कृष्ण-प्रेम की वेदना असह्य हो जायगी) उसी दिन से खाना-पीना और सोना छूट जायगा। तब दुर्बल शरीर लिए तथा फटे-पुराने वस्त्र पहने घूमने लगूंगा और मन मे शान्ति न रहेगी।

८. चरन . माहिं—भटू=सखी । पाँव काँटो से छिद रहे होंगे, लहू वह रहा होगा, परन्तु मुझे इन बातों का पता ही न होगा। हे सखी, मैं वन में पंछियों, पक्षियों तथा वृक्षों से (श्रीकृष्ण का पता) पूछता फिरूँगा।

९ कबै...रसाल—हे मेरे प्यारे, मेरी ये अभिलाषाएं कब पूर्ण होंगी ? भक्ति रस में मग्न भक्त लोग तुम्हे सत्संगति से सुलभ समझते हैं।

१०. जो . श्रीकृस्न—बाँचै=पढ़ता है। जो भक्त (श्रीमद्भागवत को) पढ़ता है, सीखता है, सुनता है और फिर मुग्ध हो कर प्रश्न पूछता है, उसी की संगति में रहिये उसे ही मेरा 'जय श्रीकृष्ण' (प्रणाम) पहुँचे।

भगवत रसिक

ये वृन्दावन के वासी थे । जन्म-मरण काल तो अनिश्चित है परन्तु कविता-काल सँवत् १६२७ है। ये स्वामी हरिदास के शिष्य थे।

इनकी कविता साधारण कोटि की है। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की'—(१) अनन्य निश्चयात्मक, (२) श्री नित्य बिहारी युगुल-ध्यान, (३) अनन्य रसिकाभरण, (४) निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्द्ध, (५) निर्बोध मन रजन। प्रस्तुत दोहे प्राय: श्रीराधा-कृष्ण की भक्ति के विषय के हैं।

पृष्ठ ७६, दोहा १ काया स्याम—भगवत रसिक कहते है कि मेरा शरीर कुज के समान है, मन तदन्तवर्ती स्थान के तुल्य है और नेत्र सुंदर दरवाजे की नाई हैं। मेरे चित्त-रूपी कमल मे श्री राधा-कृष्ण आनद पूर्वक विराजमान हैं।

२. जप ..सगार—भगवत रसिक कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना ही भजन, तपस्या तीर्थाटन, दान, व्रत, योग, यज्ञ तथा सदाचार के नियमों का पालन कर ले, तो भी जब तक एक-निष्ठ भक्ति न होगी, वह आवागवन के चक्र मे घूमता रहेगा।

३ वेदनि खिलाप--('भूखे' के स्थान पर भूख पाठ कर ले)। वेदनि=वेदना, रोग। खिलाप (खिलाफ)=विरुद्ध, व्यर्थ। भगवत रसिक कहते हैं—वैद्य वही है जो रोग नष्ट कर दे। गुरु वही है जो भगवान् से मिला दे, भोजन वही है जिस से भूख मिट जाय। उक्त गुणों से शून्य वैद्य वैद्य नहीं, गुरु गुरु नही, और भोजन भोजन नहीं।

४. भगवत सग—चग=पतग, गुड्डी। गुन (गुण)=(१) डोर (२) सत्त्व, रजस् तथा तमोगुण। भगवत रसिक कहते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र नहीं है किन्तु पतग के समान परतत्र है। जैसे पतग को गुण (डोर) दें (बढ़ाए) तो वह गगन मे उडने लगती है और गुण (डोर) खींचे तो वह (हमारे) पास आ जाती है, वैसे ही भगवान् मनुष्य को जब सत्त्वादि गुणों से युक्त शरीर देते हैं तब वह ससार मे घूमता है और जब वह गुणमय शरीर वापस ले लेते हैं तो वह उनके साथ जा मिलता है। (भाव यह है कि मनुष्य का बँधन तथा मोक्ष भगवान् के हाथ मे है, मनुष्य के अपने हाथ नहीं)।

५. नहिं मूरि—निरगुन (निर्गुण)=रग, रूप, आकार आदि से रहित प्रभु (शुद्ध ब्रह्म)। सरगुन (सगुण)=रग-रूप आदि से युक्त प्रभु (अवतारादि रूप ब्रह्म)। नेरे=समीप। जीवन-मूरि=मृतकों को जिलाने

वालो विशेष जड़ी। भगवत रसिक कहते हैं—वह प्रभु न निर्गुण है न सगुण, अर्थात् अवर्णनीय है, न समीप है न दूर अर्थात् सर्वत्र ओत-प्रोत है। वह अपने एक-निष्ठ भक्त को अमर जीवन देने वाली विचित्र जड़ी-बूटी है।

६ जनम दोइ—(मुक्त आत्मा तथा परमात्मा का वर्णन है)। जहां जन्म-मृत्यु, माया-ममता तथा रात-दिन (के बधन) नहीं होते, वहीं सच्चिदानंद, (नित्य, ज्ञानस्वरूप तथा आनंदमय) विकारहीन और अतुल रूप वाले (परमात्मा तथा आत्मा) दोनों रहते हैं। (भाव यह है कि मुक्ति दशा मे आत्मा भी परमात्मा में मिल कर उसी के से गुणो वाला हो जाता है)।

पृष्ठ ८०, दोहा ७. निसि .ब्यौहार—भाव = हृदय की भावना। ससार के जितने तहवार या पर्व, रात, दिन, तिथि, मास और मौसिमो मे आते हैं उन सब का वास्तविक महत्त्व हृदय की भावना मे ही समझो और (उस से संबन्ध रखने वाले) लौकिक आडंबरों को छोड दो।

——:o·——

ललितकिशोरी

ये लखनऊ निवासी वैश्य थे। इनका कविता-काल सवत् १९१३ से १९३० तक है। ये विरक्त हो कर वृन्दावन मे रहने लग पडे थे। प्राय. ये अपने भाई ललित माधुरी के साथ मिल कर ही रचनाए किया करते थे। इन का गृहस्थाश्रम का नाम साह कुन्दनलाल था। ये सच्चे भक्त थे और इसी लिए इनकी कविताओं मे भक्त हृदय की कोमलता तथा आर्द्रता सर्वत्र दीख पडती है। इनकी कविता का विषय कृष्ण-चन्द्र थे और वे भी गोपी-प्रिय कृष्ण ही। व्रजभाषा पर इन्हे अच्छा अधिकार प्राप्त था और वह मधुर तथा प्रवाहयुक्त होती थी।

पृ० ८०, दोहा १. कदम ब्रारि—ललितकिशोरी पूछते हैं—मै श्री वृन्दावन मे वह कदम्ब का कुज कब बनूँगा जिसकी छाया मे लाडले (श्रीकृष्ण) विहार करेगे ?

२ कब लाल—तमाल = आबनूस का श्यामवर्ण पेड। विरमैंहै = आराम करेगे। लडैती लाल = प्यारा दुलारा (श्रीकृष्ण)। सेवाकुञ्ज

=वृन्दावन का एक विशेष कुञ्ज जिसमे श्रीकृष्ण ने विहार किया था।

मैं (वृन्दावन के) सेवा-कुञ्ज का वह सांवला आबनूस का पेड कब बनूँगा जिसपर चढी हुई बेल को हाथ मे पकड कर सुन्दर प्यारे-दुलारे श्रीकृष्ण विश्राम किया करेंगे।

३ सुमन दुकूल—सुमन=फूल। वाटिका=बाडी। विपिन= जंगल, बाग़। भावते=प्यारे। बीनि=चुनकर। दुकूल=महीन चादर। मैं फूलों के बाग़-बगीचे मे वह फूल कब बनूँगा जिसे प्यारे श्रीकृष्ण अपने दोनों कोमल हाथो से तोड कर चादर पर रख लेंगे!

४ कव .चीर—कालीदह=यमुना का वह गम्भीर भाग जहाँ श्रीकृष्ण ने कालिया नाग का दमन किया था। त्रिविधि समीर=शीतल, मंद तथा सुगन्धित वायु। कब मैं कालीदाह के तट की शीतल, मन्द तथा सुगन्धित वायु बनकर राधा-कृष्ण के प्रत्येक अङ्ग से ऐसे लगूँगा जिससे उनके नये वस्त्र लहराने लगेंगे।

५. मिलिहैं मूरि—श्रीवन=वृन्दावन। बीथिन=गली कूचे। जीवन-मूरि=परम प्रिय वस्तु। कब मेरे अवयव भस्म बनकर वृन्दावन की गलियों की धूल मे मिलेगे और उन पर मेरे परम प्रिय राधा-कृष्ण के चरण-कमल पडेगे?

केशव

ये ओडछा-निवासी सनाढ्य ब्राह्मण काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१२ मे तथा मृत्यु १६७४ मे हुई। ये ओडछा-नरेश के भाई इन्द्रजीत के आश्रित थे। इन्ह उनकी ओर से २२ ग्रामो की जागीर मिली हुई थी। ये सस्कृत के प्रगाढ़ पडित और काव्य-कला के आचार्य थे। महाराजा बीरबल ने इन्हे एक छद पर छ लाख रुपया पारितोशिक दिया था। अकबर ने इन्द्रजीत पर एक करोड रुपया दण्ड लगाया था। वह उन्होंने बीरबल द्वारा क्षमा करवा दिया था।

इनके रचे हुए ये आठ ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमे से पहले चार अति प्रसिद्ध हैं—रसिक प्रिया, कवि प्रिया, रामचद्रिका, विज्ञान-गीता, वीरसिंह देव चरित्र, जहांगीर चन्द्रिका, नखशिख, रत्न बावनी। रसिकप्रिया शृङ्गार प्रधान ग्रन्थ है। इस मे रस-निरूपण तथा नायिकाभेद का वर्णन है। कवि

प्रिया अलंकार-प्रधान ग्रंथ और कवि-शिक्षा के लिए अत्युपयोगी है। रामचन्द्रिका एक प्रबन्ध-काव्य है और तुलसीदास जी की प्रेरणा से लिखा गया था। विज्ञान गीता एक आध्यात्मिक ग्रंथ है और साधारण कोटि का है।

केशव की सारी ही कविता दुरूह है। पर्याप्त विचार करने पर ही उस का भाव-गाभीर्य तथा माधुर्य समझ मे आता है। इनकी कविता ब्रजभाषा मे है परन्तु उसमे संस्कृत तथा बुन्देलखण्डी बोली की पर्याप्त मात्रा है।

केशवदास रीति ग्रंथ लिखने की शैली के प्रवर्तक थे। इन्होंने रस तथा ध्वनि को प्रधानता न देकर अलंकारों को ही प्रधानता दी है। हिन्दी काव्य-जगत् मे तुलसीदास तथा सूरदास के बाद केशव ही का स्थान माना जाता है।

पृष्ठ ८०, दोहा १. मूषक मूल—मूषक वाहन=चूहे की सवारी करने वाले। गज बदन=हाथी के मुख वाले। एक रदन=एक दांत वाले। मुद मूल=आनन्द के स्रोत। गणनायक=गणों अर्थात अपने विशेष सेवकों के नेता (गणेश)। [उपर्युक्त सभी शब्द गणेश के विशेषण हैं]। मैं चूहे की सवारी करने वाले, हाथी के मुख वाले, एक दांत वाले, आनन्द के स्रोत गणेश जी के उन चरणों को नमस्कार करता हूँ जिन की शरण लेना सुखों का कारण है।

२ राजा लोग—जो राजा (शत्रु के) सामने लड़ता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह स्वर्ग-सुख भोगता है। ससार मे उसका यश फैलता है और ससार के मनुष्य उसकी हसी नहीं उड़ाते।

[टिप्पणी—इस का एक अर्थ यों भी हो सकता है—जो क्षत्रिय अपने शरणदाता राजा के सामने उसके शत्रु से लड़ता हुआ प्राण देता है वह स्वर्ग इत्यादि पूर्ववत्।

३. सहसा गारि—बटि=घाटा। गारि=गाली। एकाएक युद्ध में नहीं करना चाहिए, सब काम विचार पूर्वक करने चाहिएँ। जो किसी काम को एक दम कर डालता है वह हानि उठाता है और ससार की गालियां खाता है।

४ जदपि.. मित्र—सुजाति=(१)उत्तम कुल की अथवा उत्तम

प्रकार की पद्मिनी आदि। (२) उत्तम कोटि की, ध्वनि आदि से युक्त। सुलच्छनी=(१) सुंदर लक्षणों वाली (२) उत्तम लक्षणावृत्ति से युक्त। सरस=(१) प्रेमयुक्त (२) शृंगारादि रसों से युक्त। सुवरण= (१) सुंदर रंग वाली, वरवर्णिनी (२) मधुर अक्षरों से युक्त। सुवृत्त=(१) सदाचारिणी (२) उत्तम छन्दों से युक्त। भूषन=(१) गहने, (२) उपमा आदि साहित्यिक अलंकार। (श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग के कारण इस दोहे के दो अर्थ बनते हैं जो क्रमशः नीचे दिये जाते हैं)

प्रथमार्थ—(नारी-पक्ष में) हे मित्र, नारी चाहे अच्छे कुल की (या उत्तम जाति की). पद्मिनी आदि) हो, सुन्दर लक्षणों (नख-शिख) वाली हो, प्रेममयी हो, सुन्दर रंग वाली हो और सदाचारिणी भी हो तो भी वह गहनों के बिना (यथेष्ठ) शोभा नहीं देती।

दूसरा अर्थ—(कविता पक्ष में) हे मित्र, कविता चाहे ध्वनि आदि से युक्त हो, सुन्दर लक्षणाओं से पूर्ण हो, शृंगारादि रसों से भरी हो, अक्षरों तथा छन्दों में लिखी हुई हो, तो भी वह भावानुकूल उपमादि अलंकारों के बिना (यथेष्ठ) शोभा नहीं देती।

सारे दोहे का भाव यह है कि नारी गहनों के बिना और कविता अलंकारों के बिना यथेष्ट शोभा नहीं देती।

५. विप्र कवित्त—नेगी=जायदादादि का प्रबंधक। ब्राह्मण को जायदाद आदि का प्रबंधक न बनाना चाहिए। मूर्ख को मित्र न बनाना चाहिए। अकृतवेदी (कर्म क्रिया न जानने वाले) स्वामी की सेवा न करनी चाहिए। (अश्लीलता आदि) दोषों से युक्त कविता न लिखनी चाहिए।

भूषण

संवत् (१६७०-१७७२)

ये तिकवापुर (त्रिविक्रमपुर, जिला कानपुर) के वासी थे। चिन्तामनि, मतिराम तथा नीलकंठ के भाई थे। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। चारों भाई अच्छे कवि थे। चित्रकूट के राजा से इन्हें कवि भूषण की उपाधि मिली और इसी नाम से प्रख्यात हुए। पहले तो यह निठल्ले ही घूमते थे परन्तु पीछे भावज के उपालंभ से प्रेरणा पा कर

परिश्रमी बने और खूब विद्याध्ययन किया। ये कई राज-दरबारों में गए परन्तु जो चित्त की प्रसन्नता इन्हे शिवाजी तथा छत्रसाल के यहा उपलब्ध हुई वह अन्यत्र नहीं।

इनके तीन ग्रँथ प्रसिद्ध हैं:-शिवराज भूषण, शिवाबावनी तथा छत्रसालदशक। भूषण-उल्लास, दूषण-उल्लास तथा भूषण हज़ारा भी इन्हीं के रचे हुए कहे जाते हैं। भूषण बडे प्रतिभावशाली तथा वीर-रस के कवि थे। ये हिन्दुओ के जातीय कवि थे। हिन्दु जाति को फिर से उन्नत तथा समृद्ध देखने की इन्हे प्रबल उत्कंठा थी। वीर काव्य में इनकी तुलना करने वाला दूसरा कवि हिन्दी मे कोई नहीं हुआ।

इनकी कविता की विशेषताएं ये हैं:—

इन्होने वीर रस की कविता की है और शिवाजी मे चारों प्रकार की वीरता दिखाई है। इनकी कविता मे ओज-गुण का प्राधान्य है उसमें संयुक्त अक्षरो तथा टवर्ग का बाहुल्य है। इन्होंने काव्य के साथ इतिहास का भी अच्छा निर्वाह किया है। इनके अलंकारो के लक्षण कुछ अस्पष्ट तथा कुछ दूषित से हैं। इनकी भाषा मे फ़ारसी-अरबी के शब्द पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। इन्होंने अपनी कविता से सब कवियो से अधिक धन कमाया।

पृष्ठ ८१, दोहा १ दसरथ भुवाल—भे=हुए। भुवाल (भूपाल) राजा। (जो विष्णु जी) दशरथ जी के हां राम रूप मे तथा वसुदेव जी के हां श्रीकृष्ण रूप मे अवतीर्ण हुए वही शाहजी के हां श्री शिवाजी महाराज के रूप मे प्रकट हुए।

२ गरब खुमान—इती=इतनी। समाज=लोक, प्रजा। खुमान (आयुष्मान)=चिरजीवी। हे हीरे तथा दूध की नाई (उज्ज्वल) चाँदनी, तू (अपनी उज्ज्वलता तथा फैलाव का) अभिमान क्यों करती है? (देख तू अनुपम तो नहीं है) चिरजीवी शिवाजी का यश भी प्रजाजनों मे वैसे ही विस्तृत हो रहा है।

* ३ तिमिर.. मोर— तिमिर-बंस-हर=(१)तमूरलिंग के वश का ध्वंसक। (२)अन्धकार पुँजनाशक। अरुन-कर=(१)रुधिर रंजित हाथों वाला। (२)लाल किरणों वाला। सरजा (सरजाह)=उपाधि विशेष (यहां, वीरवर)। (एक सखी कहती है) हे सखी, प्रात: काल तिमिरबंस विध्वंसक

[(१) तैमूर के कुल का उच्छेदक (२) अन्धकार पुंज नाशक] तथा अरुणाकर (१. रुधिर-रंजित हाथों वाला २ लाल किरणों वाला) आया। (दूसरी पूछती है) क्या वीरवर शिवाजी? (पहली मुकर कर कहती है) ऐ सखी, चुप रह, (शिवाजी नहीं, अपितु) सूर्य-वश का शिरोमुकुट (सूर्य देवता) आया।

[टिप्पणी—बडी सुन्दर 'कह मुकरी' है।]

४. और भाव—गढोई=किलेदार। दरयाव=सागर। और किलेदार छोटी बडी नदियों की नाई हैं। गढपाल शिवाजी सागर के सदृश हैं। इसी विचार से (वे छोटे किलेदार) दौड-दौड कर इस के साथ आ मिलते हैं।

५ आयो गाव—अरि=शत्रु। हे वीर श्रेष्ठ शिवा जी, '(शिवाजी) आया-आया' इस प्रकार तुम्हारा नाम सुनते ही शत्रुओ की स्त्रियो के नयन-नीर (आँसुओं) से शत्रुओ के गाँव डूब जाते हैं।

❀६ कवि फूल—रस=जल। शिवाजी के सुकीर्ति-रूपी जल ने कवि-रूपी वृक्ष की जडो को क्या आश्चर्य-रूप से सींचा, क्योंकि वह पहले तो सुन्दर फलों (संपत्ति) से युक्त होता है और पीछे उस पर (प्रसन्नता रूपी) फूल निकलते हैं।

[व्याख्या—प्राकृतिक नियम यह है कि वृक्षों पर पहले फूल लगते हैं पीछे फल। परन्तु शिवाजी की अपार दान-शीलता से कविरूपी वृक्षों पर पहले फल (सपत्ति) लगते हैं पीछे फूल (हर्ष)। भाव यह है कि शिवा जी कवियों को भरपूर दान देकर प्रसन्न कर देते है।]

७ सिव . नाग—भुजन=बाँहो से। भरु=भार। सभाग=सौभाग्यवान्। वीरश्रेष्ठ, सौभाग्यशाली शिवाजी ने अपनी बलशाली बाँहों से भूमि का भार उठा लिया है। भूषण कहता है—इसीलिए शेष-नाग (अनंत नामकफणिराज) और दिशाओं के हाथी चिंता-रहित हो गए हैं।

[टिप्पणी—हिन्दुओं का विश्वास है कि पृथ्वी को शेषनाग तथा दिशाओ के हाथियों ने थामा हुआ है।]

८ सिव दान—दान-जल=दान के समय पढे हुए संकल्प-मन्त्र के साथ गिराया हुआ पानी। गज-दान=हाथियो का मद। हे वीरवर शिवाजी, तुम्हारे दान की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है! तुम्हारे दान देते समय संकल्प के जल से नदियो में बाढ आ जाती है और

जाने की अभिलाषा नहीं। (हे प्रभो) मुझे तुम्हारी सौगन्द है कि मैं केवल तुम्हारे चरण-कमलों को चित्त में धारण करना चाहती हूं।

५. साधु खोय—कमलख (कल्मष) = पाप। यदि कोई संतों का संग करना जाने तो उस में भारी सुख है। सत्संगति यदि आधा क्षण भी की जाय तो वह पाप नष्ट कर डालती है।

—:०:—

राम सहाय

ये श्री भवानी दास जी के पुत्र थे। इनके जन्म-मरण का समय ठीक विदित नही है। इन्होने अपने विषय मे निज पिता के नाम के सिवा कुछ भी नहीं लिखा। इनका विख्यात ग्रंथ शृङ्गार सतसई है जिसे राम सत सई भी कहते हैं। इस के अतिरिक्त वृत्ततरंगिनी, ककहरा, रामसप्त सतिका और वाणीभूषण नामक ग्रथ भी इन्हीं के रचे हुए कहे जाते हैं। शृंगार-सतसई शृंगार-विषयक एक उत्तम मुक्तक काव्य है। इस मे बिहारी सतसई की टक्कर के सात सौ दोहे हैं और उन्हीं को दृष्टि मे रख कर बनाए हुए प्रतीत होते हैं।

पृष्ठ ८४, * दोहा १ श्री ..धाम—श्री स्यामा = राधिका जी। अहिप-तिघर = जिनका घर (निवासस्थान) शेषनाग है, वह विष्णु। राम सहाय उन श्रीराधिकाजी को नमस्कार करते हैं जिन्होंने शेषनाग पर रहने वाले (विष्णु अर्थात् कृष्ण जी) के घर को सदा आनंदमय कर रखा है।

[टिप्पणी—पाठ 'अहिपतिधर' (शेषनाग को धारण करने वाला अर्थात् क्षीरसागर) भी मिलता है। उस दशा में उत्तरार्द्ध का अर्थ यों ही जाएगा—जिन्होने (अपनी उपस्थिति से) क्षीर सागर को भी (विष्णु, कृष्ण का) निरन्तर आनदयुक्त घर बना दिया है।]

२ अरुण ..आगु— यह दोहा स्वत. पूर्ण नहीं है। इसका सम्बन्ध आगमी दोहे से है जो इस प्रकार है.—

अवलि अली लै बृजगली रली करीजे आय।
ते राधा माधव हरैं बाधा राम-सहाय॥

अरुन अयन = लाल स्थान (यहाँ, अनुराग के भंडार)। (यदि पाठ 'अरुन नयन' हो तो अर्थ राग युक्त नयनो वाले' होगा)। नगधर =

गिरधारी । कमला सकत = लक्ष्मी मे अनुरक्त । विपुंगवासन (वि = पक्षी पुंगव = श्रेष्ठ + आसन = वाहन) = पक्षि-राज अर्थात् गरुड़ की सवारी करने वाले । आसु (आशु) = शीघ्र । अनुराग के भंडार, सगीत (गाना, बजाना तथा नाचना) के अवतार, वृन्दावन के प्रेमी, गोवर्धनधारी, लक्ष्मी के अनुरागी, गरुडवाहन, श्रेष्ठ (श्रीकृष्ण) राधा जी के समेत, रामसहाय की बाधा को शीघ्र दूर करे ।

३. मृदु बात—धुनि = ध्वनि । पगी = प्रेम-मग्न । खगी = लगी । अली = सखी । हे सखी, इस बाँसुरी की कामना भली भांति पूर्ण हो गई है । यह श्री कृष्ण के प्रेम मे मग्न होकर, मधुर गीत गाती है और उनके शरीर से लिपटी रहती है ।

४. धन मोल—चय = उच्च आसन, पदवी । खैहे कै = राख के । सपत्ति, तरुणाई, पदवी, चतुराई, सौन्दर्य, मधुर-वाणी ये सब वस्तुएं श्री कृष्ण के प्रेम के बिना राख के समान मूल्य-हीन हैं ।

५. हारी मँडराहिं—माधव = कृष्ण । माधव = मधु अर्थात् वसन्त से प्रेम करने वाला भँवरा । हे सखी, मै असख्य यत्न करके हार गई परन्तु मेरे ये नयन नहीं मानते (वश मे नही रहते) । ये श्री कृष्ण के सौन्दर्य को देख कर उस पर भँवरे के समान मँडराते रहते हैं ।

६ आप होइ—मसलो (मसल) = लोकोक्ति, कहावत । जुझ = जानो, समझो । गोई = सहचर, साथी । हे साथी, इस लोकोक्ति को समझ लो कि जो स्वय भला है, उसके लिए ससार भला है । यदि तुम प्रभु से प्रेम कर के उसे चित्त मे धारण करलो तो तुम्हे कोई भी दुःख न होगा

७ ताको सोर—सुचित = प्रसन्नतापूर्वक । द्विजगन = पक्षी-समूह । उस वृक्ष के नीचे देखो, मोर प्रसन्नतापूर्वक नाच रहा है । दूसरे पक्षियो के समूह भी उतर कर प्रसन्न मन से मधुर कलरव कर रहे हैं ।

*८ तारे...जोइ— तरनि = सूर्य । दुरे भए = छिप गए । मुकुलित = अर्द्धविकसित । सरसिज = कमल तथा कुमुद । तम-तोम = अन्धकार-पुंज । सोम = चाद । जोइ = देखो । नक्षत्र तथा सूर्य छिपे हुए है । कमल और कुमुद दोनों ही अधखिले हैं । हे सखी, प्रभात के अन्धकार-पुंज मे (अस्तोन्मुख) सुहावने चाँद को देखो ।

[व्याख्या—इस दोहे मे कवि प्रभात का वर्णन करता है । तारे छिप

चुके हैं। चाँद छिपने को है, इस लिए कुमुद बंद होने को हैं। सूर्य उदित होने को है, अतएव कमल खिलने को हैं। अर्थात् कुमुद तथा कमल दोनों ही अधखिले हैं। ऐसे झुटपुटे समय में छिपता हुआ चाद बहुत सुन्दर प्रतीत होता है।]

६ श्री माह—हे श्री राधाकृष्ण हमे नित्य अपनी शरण में रखो। मेरा मन तुम में रहे और तुम मेरे मन मे बसो।

रघुराज

(सवत् १८८०-१९३६)

रघुराज सिंह रींवा के महाराज थे। इनके पिता तथा पितामह भी सत्कवि तथा कवियों के आश्रयदाता थे। रघुराज हिंदी तथा संस्कृत दोनों के विद्वान और कवि थे। जहा यह दानी तथा भक्त थे वहां सिंहादि शिकार मे भी बडे निपुण थे। इनके आश्रम मे अनेक सत्कवि रहा करते थे जिनमे से कुछ ये हैं—रसिक नारायण, रसिक बिहारी, श्री गोविंद, वाल गोविंद इत्यादि इन्होने लगभग तीस ग्रथो की रचना की जिन में से कुछ ये हैं—रुक्मिणी परिणय, रघुराज-विलास, सुन्दर शतक, भक्ति विलास, विनयपत्रिका, आनदाम्बुनिधि, रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल, राम स्वयंवर, यदुराज विलास, विनयमाला, गद्य शतक इत्यादि। कहीं-कहीं इनकी कविता अति मनोहर हुई है। ये राम के भक्त थे और उन्हें दास भाव से भजते थे। प्रस्तुत दोहे श्रीकृष्ण-विषयक हैं और काव्यत्वपूर्ण हैं।

पृष्ठ ८५, दोहा १ कल . जाय—कल किशलय = सुन्दर कोंपलें। यक = एक। पियरात = पीले पड जाते हैं। सुन्दर कोंपले तथा कोमल कमल (श्री कृष्ण के) तलवों की तुलना नहीं कर सकते। एक (कोंपलें) तो नित्य इसी शोक से पीले पड जाते हैं और एक (कमल) शरमा कर झड जाते हैं।

२ विलसति जाति—नखनि-तति = नाखुनों की पंक्ति। उडुपति = चद्रमा। उडु-अवलि = तारों की पक्ति। श्री कृष्ण के (चरणों के) चमकते हुए नाखुनों की पक्ति अतुल छटा दिखाती है। उसे देख कर तारों का कतार चाँद सहित शरमा-शरमा कर छिप जाती है। (भाव यह है कि श्री कृष्ण के नाखुन चाँद तथा तारा से भी अधिक सुंदर हैं)।

३ सविता ...होति—सविता-दुहिता = भानु-तनया, यमुना । सुर-सरिता = गंगा । भारती = सरस्वती (नदी) । त्रिवेणी = प्रयाग में गंगा यमुना तथा सरस्वती का संगम ।

व्याख्या—कवि इस दोहे में श्री कृष्ण के चरणों का त्रिवेणी के रूप में वर्णन करता है । वह कहता है:—उन चरणों का साँवलापन ही यमुना है क्यों कि यमुना का रंग श्याम होता है; नाखूनों की शुभ्र छटा ही गंगा है क्यों कि गंगा का रंग श्वेत होता है और सुन्दर तलवों की लाली ही सरस्वती है क्योंकि सरस्वती का रंग लाल होता है । इसलिए चरण-श्यामता-रूपी यमुना, नख-ज्योति-रूपी गंगा और पग-तल-लालिमा रूपी सरस्वती में संगम-स्थल श्री कृष्ण के चरण पुण्य त्रिवेणी बन जाते हैं ।

४ चारु ...लजाइ—पेखत = देखती हुई । (श्रीकृष्ण के) सुन्दर चरणों की उन उँगलियों के वर्णन में मैं असमर्थ हूँ जिन्हें देख कर अवि-कसित कमल की पखड़ियां शरमा जाती हैं ।

५ पद्मनाभ ...भुलाय—पद्मनाभ = विष्णु, कृष्ण । सुखमा = (सुषमा) शोभा । सुठि = अतिशय । भानुजा = यमुना । भँवर = पानी का चक्कर, जलावर्त । श्रीकृष्ण जी की नाभि की छटा अत्यधिक विराज रही है । ऐसे प्रतीत होता है मानो यमुना की धारा को देखकर भँवर भूल कर चक्कर खा रहा हो ।

[टिप्पणी—श्री कृष्ण की साँवली काया को यमुना की धारा तथा उन की चक्करदार नाभि को भँवर मान कर दोहे की रचना हुई है ।]

———o———

गिरिधर

(संवत् १८९०-१९१७)

गिरिधर कविराय जिन्होंने मनोहर कुंडलिया छन्दों में रचना की, दूसरे थे । 'गिरिधरदास' भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता का उपनाम था । उन का वास्तविक नाम बाबू गोपालचंद्र था । कुल २६ वर्ष की आयु में इन्होंने ४० ग्रंथों की रचना की जिनमें से जरासंध-वध विशेष प्रशंसनीय है । इन के अधिकतर ग्रंथ अप्रकाशित हैं । इन की रचनाओं में श्लेष तथा यमक की अच्छी छटा दृष्टिगत होती है । इन की नीति-सबंधी तथा शान्त-

रम की कविता सरल-सुबोध भाषा में की गई है। प्रस्तुत दोहे नीति-विषयक हैं और लेखक की अनुभविता पर प्रकाश डालते हैं।

पृष्ठ ८५, दोहा १. तिय=स्त्री । गिरिधरदास कहते हैं—सकटमय समय के लिए धन बचाना चाहिए, धन का त्याग कर के भी पत्नी की रक्षा करना चाहिए, और अपने भले के लिए तो धन तथा पत्नी दोनों को छोड़ देना चाहिए।

२. लोभ संसार—लालच कभी न करना चाहिए। इस से घोर आपदा आ पडती है। जगत् में लालची मनुष्य का कोई भी विश्वास नहीं करता।

३. लोभ आन—आन (अन्य)=दूसरा। लालच जैसा कोई दोष नहीं, सच जैसा कोई तप नहीं, चित्त की निर्मलता जैसा कोई पुण्य-क्षेत्र नहीं, और विद्या जैसी कोई संपत्ति नहीं।

४. सकल दाम—वखत=अवसर, समय। सभी पदार्थों का सचय करना चाहिए। वे किसी न किसी दिन काम आ ही जाते हैं। समय पडने पर पैसे खरचने पर भी मिट्टी तक नहीं मिलती।

५ कारज . कोय—काम सोच-विचार कर ही करना चाहिए, चाहे होता तो वही है जो भाग्य मे लिखा होता है। विचार पूर्वक करने के पीछे न अपने आप को पश्चात्ताप करना पडता है, न कोई दूसरा निन्दा करता है।

६ पुन्य .दास—गिरिधरदास कहते हैं:—किए हुए पुण्य को तो नहीं कहना चाहिए किन्तु पाप को प्रकट कर देना चाहिए। बता देने से पुण्य तथा पाप दोनों ही कम हो जाते हैं।

७ पावक जाहिं—सेसहु=शेष, बाकी। अग्नि, शत्रु, व्याधि तथा कर्जा—इन्हें जरा भी शेष न रहने देना चाहिए। ये तनिक भी रह जायँ तो फिर वढ जाते हैं और बड़े परिश्रम मे दूर होते हैं।

८ जनक नाहिं—जनक=पिता। निदरत=निरादर करता है। जो पुत्र पिता के वचनों की निर्भय होकर अवहेलना करता है तथा दुष्टों की संगति मे रहता है, वह मूर्ख और नीच होता है। उस के जन्म लेने से (माता पिता को) सुख नहीं मिलता।

* पृष्ठ ८६, दोहा ६. सुरा...टंग—निग्रह = लड़ाई । गिरिधरदास कहते हैं, अच्छे प्रकार का मित्र उसे ही कहना चाहिए जो सुख दुख, युद्ध तथा संकट के समय साथ नहीं छोडता।

१०. सुख सोय—जो सुख मे तो साथ मिल कर सुख लूटता है परन्तु दुःख मे पीछे हट जाता है उस की मैत्री अपने मतलब का है, ऐसा मित्र अति नीच होता है।

—:o:—

विविध

पृष्ठ ८६, दोहा १ सरस मौन—('ये' के स्थान पर 'के' कर ले)। समझवार = समझ वाला, चतुर। (प्रश्न) वह कौन है जो रसिक कवियो के मन को बींध देता है? (उत्तर) मूर्खों द्वारा की हुई श्लाघा और बुद्धिमानो द्वारा धारण किया हुआ मौन।

२ पिता अविचार—यार = सखा। अलि = भँवरा। जिस कमल को उस का पिता-पानी-भी नहीं छूता, जिस से उस का सखा सूर्य भी परे ही रहता है, उसी कमल से मूर्ख भँवरा बिना विचार किए प्रेम करने लग पडता है। (भाव यह है कि जो पिता तथा सखा से स्नेह नहीं कर सकता उस से प्रेम करना मूर्खता है)।

३ वह...नाहिं—कदंब के कुंजो की छाया से युक्त वृन्दावन आनंद का भवन है। यह सोने की द्वारका-पुरी उस की धूल के समान भी नहीं।

४. जस होय—(एक बार केशव कवि बीरबल के दर्शनार्थ गए परन्तु उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया। तब केशव ने यह दोहा लिख भेजा। परिणाम यह हुआ कि बीरबल उन्हे मिले भी तथा पुरस्कृत भी किया)। तोय = तुझे। सुधि = स्वास्थ्य। संसार मे तुम्हारी कीर्ति फैल रही है इसी लिए तुम्हें अपच (बदहजमी) हो रहा है अर्थात् तुम घमंडी हो गए हो। यदि तुम्हें अपकीर्ति की एक गोली दे दू तो तुम इसी क्षण स्वस्थ हो जाओ अर्थात् तुम्हारा घमंड चूर हो जाय।

५ जो . कन्त—केहरिया = शेर। छिपकन्त = छिप जाय। कन्त = प्यारे प्रभो। जो मेढ़ा पीछे हटे, जो सिंह छिप जाय और जो दुष्ट हँस कर मिले, तो हे प्रभो, तब तुम ही रक्षा करना।

[टिप्पणी—प्रबल टक्कर मारने से पहले मेंढा पीछे हटता है, शेर छिप कर अचानक टूट पडता है और दुर्जन हँस कर—विश्वास उत्पन्न करके, प्रहार करता है, अतः इन से बचाने की प्रार्थना की है।]

६ दगाबाज़ जात—धोखेबाज का प्रेम ऐसा होता है कि वह बातें तो मुसकराते हुए करता है (पर मन मे चोट रखता है)। जैसे मेंहदी के पत्ते ऊपर से हरे-भरे होते हैं परन्तु उनके अन्दर की लाली देखी नहीं जाती।

७ निकट कोय—सम्मन कवि कहते हैं—समीप रहने पर सम्मान कम हो जाता है, दूर रहने पर क्लेश होता है, इसलिए जगत् मे किसी से प्रेम न करना चाहिये।

❀ ८ दरिया सोय—दरिया कवि कहते हैं—सारा ससार (मोह-माया की नींद में) सो रहा है परन्तु इस भेद को कोई नहीं जानता। वस्तुत. उसी को जागा हुआ कहना चाहिये जो एक तो साधारण नींद में और दूसरे मोह-माया की नीद मे मग्न नहीं है।

❀ ९. बुल्ला आख—चल्ल = चल। दे = के हाँ। आख = कह। ज़ित्थे (यत्र) = जहां। बुल्ला फकीर कहता है—तुम उस सुनार (परमात्मा) के हा चलो जहा लाखों गहने (जीव) बनाये जाते हैं। चाहे उन सब गहनों (जीवों) का आकार-प्रकार पृथक्-पृथक् होता है परन्तु तुम यही कहो (समझो) कि वे सब एक ही के अनेक रूप है अर्थात् जैसे विविध गहनों में सोना एक ही होता है वैसे ही सब एक ही परमात्मा के अंश हैं।

१० धन परबेस—परबेस (प्रवेश) = आना। वह माता धन्य है जो साधु को जन्म देती है। वह पृथ्वी, नर तथा देश धन्य है जहा साधु जाता है। वह कर्म धन्य है जिससे साधु का जन्म मिलता है। और वह परिवार धन्य है जिस मे सतजन प्रवेश करते हैं।

११. भीखा ..मत—किरतिम = कृत्रिम, बनावटी। भीखा साहब कहते हैं कि वास्तविक तत्व तो केवल एक ही है, हाँ उसके बनावटी रूपों का कोई अन्त नहीं। एक ही आत्मा (परमात्मा) सब स्थानों में रम रही है। इस रहस्य को सन्तजन ही जानते हैं। (भाव यह है कि सब जड-चेतन पदार्थ एक ब्रह्म के ही रूपान्तर हैं)।

पृष्ठ ८७, दोहा १२ जो गजराज—शरणागत-रक्षक लोग शरणागतों की प्रतिष्ठा की रक्षा का अवश्य ध्यान रखते हैं। देखिए, मछली तो धारा के विपरीत दिशा मे तैर जाती है परन्तु प्रौढ हाथी उस धारा मे नीचे को ही बह जाता है। (भाव यह है कि शरणागत रक्षक जल शरणागत निर्बल मछली का मान बचा लेता है, परन्तु बली हाथी की परवाह नही करता)।

१३. पात जाय—झरते=झडते। तरवर—पेड। झडते हुए पत्ते यों कहते हैं:—हे बन के अधीश्वर वृक्ष, सुनो, हम अब दूर जा गिरेंगे, अब ऐसे बिछुडेंगे कि फिर मेल न होगा।

१४. सारग. .जाय—सारंग=मोर। सारग=सर्प। सारंग=बादल। सारंग=वह ध्वनि जो मोर बादल को देख कर निकालता है। मोर ने सांप को पकड लिया। (उसी समय) बादल आ कर गरजने लगा। अब यदि मोर (उल्लास से) बोलने लगे तो वह सांप उसके मुँह से निकल जाता है।

[टिप्पणी—सारंग शब्द के लगभग ७० अर्थ होते है। उनमे से यहां सिंह-मृग, सर्प-मेढक आदि अर्थ लग सकते हैं। इस प्रकार इस दोहे के अनेक अर्थ किये जा सकते हैं, पर सच तो यह है कि यमक से युक्त इस दोहे मे काव्यत्व की मात्र नाम मात्रा भी नही है।]

१५. पान चारि—पुराना पान, ताजा घी, कुलीन स्त्री तथा चौथी घोडे की सवारी स्वर्ग के ये चार ही चिह्न हैं।

१६. सम्मन धूर—सम्मन कहते हैं कि मधुर वचनो से सभी सुख प्राप्त हो जाते हैं। जिसने मीठा बोलना नहीं सीखा, उसकी सब शिक्षा धूल के तुल्य है।

१७ स्वर्ग ढूँढ—खालिक=सिरजनहार, स्रष्टा। हे अज्ञानी मन तू आकाश पर, सात स्वर्गों मे, व्यर्थ घूमता है। वह सिरजनहार कहीं गुम नहीं हो गया है, उसे हृदय-रूपी महल ही में खोज।

द्वितीय सोपान

—— :o: ——

हरिश्चन्द्र (० १९०७-१९४१)

ये बंगाल के प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वंशज थे। इनके पिता का नाम बाबू गोपालचंद था और वे भी कवि थे। भारतेन्दु ने शिक्षा घर ही में प्राप्त की। बचपन से ही ये बड़े प्रतिभाशाली थे। इन्होंने कुल ३४ वर्ष की आयु मे छोटे-बड़े १७५ ग्रंथो की रचना की। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने नाटक, आख्यायिका, उपन्यास, काव्य, स्तोत्र, अनुवाद, परिहास, धर्म, इतिहास, माहात्म्य, राजभक्ति तथा फुटकर विषयों पर अनेक छोटे ग्रंथ लिखे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे वर्तमान युग के प्रवर्तक यही माने जाते हैं।

इन्होंने हिन्दी के प्रचार के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। अनेक सभा-समाजों की स्थापना की और कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मेगजीन, बालबोधिनी आदि अनेक पत्रिकाओं को निकाला। ये हिन्दी के उदीयमान लेखकों तथा कवियों को खूब पारितोषिक आदि देते थे। अपनी सीमाधिक उदारता तथा विलासमय जीवन के कारण ये अन्तिम दिनों मे ऋणग्रस्त हो गए और क्षय-रोग से चल बसे। जनता ने इनकी अपूर्व हिन्दी-सेवा को देख कर 'भारतेन्दु' की उपाधि से सम्मानित किया था।

जहां इन्होंने हिन्दी-गद्य को उर्दू-मय तथा संस्कृतमय होने से बचाया वहां कविता मे भी युगान्तर उपस्थित कर दिया। चाहे इन्होंने समग्र कविता व्रजभाषा मे ही की तो भी देश-प्रेम, समाज-सुधार, भाषा-प्रेम आदि नवीन विषयों पर कविता करके इन्हों ने कविता का समाज से संबन्ध स्थापित कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा, १८५७ के विद्रोह आदि के कारण लोगों के विचार तो आगे बढ़ रहे थे परन्तु साहित्य पिछड़ा हुआ था। भारतेन्दु ने अपने युग के भावों को अपने साहित्य मे भर कर उसे आगे ला खड़ा किया। यदि इन्हों ने हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान

का मंत्र फूंका तो भी इनकी जातीयता संकुचित न थी। इनके देश-प्रेम में राज-भक्ति का मिश्रण था क्योंकि देश मे सुव्यवस्था उसी के कारण थी। भारतेन्दु प्रेम के कवि थे। प्रेम की भावना ही कहीं देश प्रेम और कहीं कृष्ण-प्रेम, कहीं भाषा-प्रेम, कहीं समाज-प्रेम में परिणत हो गई। प्रस्तुत दोहों में से इन का देश प्रेम तथा भाषा-प्रेम प्रस्फुटित हो रहा है।

भारतेन्दु जी की कुछ रचनाएं ये हैं :—

काव्य—प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी, गीत गोविन्दानंद, प्रेम मालिका, प्रेमप्रलाप प्रेमतरंग इत्यादि।

नाटक—सत्यहरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, विद्यासुन्दर, चन्द्रावली, कर्पूरमंजरी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा, अन्धेर नगरी, इत्यादि।

उपन्यास-आख्यायिका :—रामलीला, सुलोचना, शीलवती, सावित्री चरित्र, आदि।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ

पृष्ठ ३, दोहा १। डरै...सोय। जो प्रेम करके प्रियतम से सदा डरता है, प्रत्युपकार मे कुछ नहीं चाहता, जो आ पड़ती है उसे (सहर्ष) सह लेता है, जिसका प्रेम एक-समान रहता है, उसी (प्रेमी के) प्रेम को सच्चा कहना चाहिए।

२. निज सूल। अपनी भाषा की उन्नति ही सब उन्नतियों की जड़ है। जब तक अपनी भाषा का ज्ञान नहीं होता तब तक हृदय की वेदना दूर नहीं होती।

३ गुरु ज्ञान। सरिस=समान। चाहे गुरु अनेक प्रकार से बच्चों को विद्या पढ़ाता है तो भी उन को उस से ऐसा ज्ञान नहीं होता जैसा माता के द्वारा सिखाने से होता है।

४ पढो ..अनुसार। सोधिहौ=विचार करोगे। चाहे कोई लाख प्रकार से अनेक भाषाओ को पढ़े-लिखे, तो भी जब कुछ मन में विचारेगा तो अपनी भाषा के द्वारा ही।

५. करहु...मूल। अरे भाइयो, अब (और) देर न करो, उठो (और सब) कष्टों को दूर करो। अपनी भाषा की उन्नति करो जो कि

सब उन्नतियों का मूल कारण है।

६. क्यों...सरसात। आज जीवन-हीन भारतवर्ष क्यों जीवन-युक्त दिखाई देता है? आज श्मशान-भूमि रंगभूमि बन कर क्यों सुशोभित हो रही है?

७. जो...लेस। जो भारतवर्ष कभी सब संसार भर में सर्वोत्कृष्ट देश था, उसी में अब नाम-मात्र भी सुख नहीं रहा।

८. कोटि...धूर। यहां (भारत) की मिट्टी में करोड़ों पुण्यात्मा ऋषि-मुनि, करोड़ों शूरवीर, राजे-महाराजे तथा करोड़ों विद्वान् मधुवर्षी कवि मिले हुए हैं। (इस लिए भारतभूमि की धूल शिरोधार्य है)।

❀ ९. भरित...मोर। भरित=पूर्ण, भरा हुआ। अथोर=अत्यधिक। घन=(१) मेघ (२) घनश्याम। उस अनुपम घनश्याम रूपी घन (बादल) की जय हो जो प्रेम-रूपी स्वच्छ जल से सदा भरा रहता है, सुन्दर प्रेम-जल को खूब बरसाता है और जिसे देख करके मेरा मन-रूपी मोर नाचने लगता है।

१०. चद...नेम। चाहे चांद और सूर्य नष्ट हो जायँ, चाहे संसार के नियम लुप्त हो जायँ, तो भी (प्रतिज्ञा के) पक्के श्री हरिश्चन्द्र का अटल प्रेम नष्ट नहीं हो सकता।

[टिप्पणी—दोहे का अन्तिम शब्द 'प्रेम' है, 'नेम' नहीं।]

❀ ११. तम..प्रकास। ('जलद' के स्थान पर 'जलज' पाठ चाहिए)। जन-मन-जलज=मानव-हृदय-रूपी कमल।

उस (हरिनाम-रूपी) दिव्य सूर्य की जय हो, जो पाखंड-रूपी अंधकार को भगा देता है, मनुष्यों के मन-रूपी कमलों को विकसित कर देता है और वेद रूपी मार्ग को प्रकाशित कर देता है।

१२. बंदौं..काम। पारद=पार पहुँचाने वाले, मुक्तिप्रद। विशारद=पंडित। गतकाम=इच्छा रहित। जो नारद श्रीकृष्ण की महिमा के गीत गाने में अत्यन्त प्रवीण हैं और जो सदा निष्काम रहते हैं, मैं उन्हीं के सुंदर, मोक्षदायक चरणों को नमस्कार करता हूँ।

पृष्ठ ४, दोहा १३ पुनि...दीन। फिर मैं श्री व्यासदेव जी के चरणों में नमस्कार करता हूँ जिन्होंने वेदों के विभाग किए और श्री कृष्णतत्त्व अर्थात् परमात्मा के स्वरूप का सब ज्ञान (वेदान्त दर्शन

स्वयं उसको आ मिलता है अर्थात् वह स्वयं चिरस्थायी यश का भागी बन जाता है।]

३. अमल...कलाप। सुधा-सित=अमृत तथा चंद्रिका। कीर्ति-कलाप=यश पुंज। कवि-समुदाय का यश-पुंज अमृत तथा चादनी के सुन्दर मिश्रण के समान स्वच्छ, शुभ्र तथा आनन्दप्रद है और चाँद की नांई सुन्दर है।

४. गौरव...निकेत। केतन=ध्वजा। लसित=सुशोभित। अमर-निकेतन=देवलोक, स्वर्ग। कीर्ति-निकेत=यशोभवन। महिमा-रूपी ध्वजा से सुशोभित तथा अतुल्य कविता-रूपी रत्नो से जड़ा हुआ कवि-समुदाय का यश-रूपी भवन स्वर्ग के समान है।

५. मानस...पुंज। मानस-अभिनंदन=चित्त को प्रसन्न करने वाला। प्रतिपत्तिमय=गौरव युक्त। श्रेष्ठ कवियों का मन को प्रसन्न करने वाला, सदा स्थायी, पवित्र और गौरवयुक्त कीर्ति-कलाप (देवताओं के मन को आह्लादित करने वाले) इन्द्र के बाग क सुन्दर कुंज के तुल्य है।

६. वरस...न्यास। सरसता-प्यास=काव्य-रस-पिपासा। असरस=शुष्क, अरसिक। कवियों की रसमयी पदयोजना मधुर रस को नित्य बरसा कर काव्य-रस की प्यास को शान्त करे और अरसिक हृदयों को भी अतिरसिक बना दे।

*७ मिले ..काल। स्वर=ध्वनि। स्वर=अच् वर्ण, अ, इ आदि। व्यंजन=क् ख् आदि हल् वर्ण। व्यंजना=शब्दों की विशेष वृत्ति। (कवियों की कविता में) सारे स्वरवर्ण रस से पूर्ण तथा दिव्य मधुर ध्वनियो से युक्त हों और व्यंजन वर्णों मे सुन्दर व्यंजनाएं सदा झलकें।

८. उक्ति...आलोक। ओक=पद, स्थान। आलोक=प्रकाश। कवि की कविता लोकोत्तर उक्तियों से युक्त हो। अलंकारों के प्रकाश से चमकती हुई उच्च पद को प्राप्त करे।

९. कलित...कान्त। कलित=मनोरम। वलित=युक्त। कान्त=सुन्दर। कविता-दयिता-कान्त=कविता रूपी कामिनी का पति (कवि)। कविता-रूपी सुन्दरी का पति (कवि) सुन्दर भावों से युक्त होकर तथा अत्यन्त मनोहर रुचि से पूर्ण होकर कमनीय कविता की रचना करे।

१०. मागे...रूप। मानस=मन, सकल्प। राजा बलि से विष्णु

ने बौना बन कर ही (तीन पग भूमि का दान) मांगा था। (ठीक है उन्हें अपने) संकल्प के अनुसार ही मांगते समय छोटा बनना पड़ा। (भाव यह है कि मांगते समय मनुष्य के अपने मन में भी हीनता का भाव उत्पन्न होता है और दूसरों की दृष्टि में भी हीन होना पड़ता है, जैसे कि वामनावतार के दृष्टांत से सिद्ध है)।

११. क्यों...बलिदान। मनुष्य का मन पृथिवी पर दान को क्यों महान समझे? देखिए दैव के अधीन होकर बलि राजा (दान देने ही के कारण) बंधन में पड़ गया।

१२. बात...कौन। जो गप्पें मारने में चतुर हों और व्यर्थ बातें कर-करके (थक कर) चुप हो जायँ, वे ही यदि साधु-जन हैं तो असाधु जन फिर कौन है!

पृष्ठ ७, दोहा १३। अपने ..पौर। पौर=ड्योढ़ी। हम अपने पांव पर आप खड़े हो कर दूसरों की ड्योढ़ी छोड़ दें और अपने ही भुज-बल के भरोसे पर बलवानों के सरदार बन जायँ।

१४. कौन - आस। पास=संमान। पास=आत्म संमान। पूजी=पूर्ण हुई। जिन्हें स्वयं आत्म-संमान का ध्यान नहीं, उनका संमान दूसरा कौन करेगा? दूसरों के चरण चूम कर किसकी आशा पूर्ण हुई है? (भाव यह है कि प्रत्येक को आत्मसंमानी तथा स्वावलंबी बनना चाहिए)।

१५. चाकर...विलोक। चकोर क्या और चकेव क्या, सब अपने मन (स्वभाव) के दास हैं। देखिए, चकवे तथा कमल तो सूर्य को देखकर खिल उठते हैं और चकोर तथा कुमुद चांद को देख कर।

१६. अपने...भोलानाथ। प्रत्येक व्यक्ति के भाव पृथक्-पृथक् होते हैं। देखिए सरल स्वभाव शिवजी महाराज आक के फूल से ही प्रसन्न हो जाते हैं (और भक्तों को निहाल कर देते हैं)।

१७. विकसित . अरविंद। विकच-वदन=प्रसन्नमुख। बुध-वृन्द=विद्वद्गण। प्रफुल्ल-मुख विद्वानों के समूह किसे आह्लादित नहीं करते! खिले हुए कमल भंवरों से कब हिले-मिले हुए नहीं रहते।

१८ विधि . तुषार। विधि=ब्रह्मा। सरसिज=कमल। तुषार=पाला, हिम। ब्रह्मा-सा पुत्र, सूर्य-सा मित्र तथा विष्णु-सा आश्रय

पा कर भी, कमल पाला पड़ने पर क्षीण होने लग पड़ा। (भाव यह है कि जो स्वयं निःसत्त्व है, प्रबल बंधु उसे नहीं बचा सकते)।

[टिप्पणी—ब्रह्मा विष्णु के नाभि के कमल से उत्पन्न हुए, इस लिए ब्रह्मा को कमल का पुत्र तथा विष्णु को कमल का आश्रय कहा है।

१६. काल. संसार। (ऐ पाले), तू कमल के लिए मृत्यु बन गया। तू उसे प्यार क्यों न कर पाया ? इस तत्त्व को तू समझ ले कि सारा संसार ही नश्वर है (तेरा भी अन्त हो जायगा)।

२० भले...सुवास। लोग सज्जनों से उपकार की तथा दुर्जनों से अपकार की ही आशा करते हैं। देखिए, फूल तो सुगध देते हैं और कांटे शरीर को बींध डालते हैं।

२१ खोजे.. है न। जिस ने प्रभु को ढूंढा, उसने उसे पा लिया। इस मे हिन्दू और जैन आदि संप्रदायों का कोई भेद नहीं। क्या प्रत्येक पत्ता उस प्रभु की ओर संकेत नहीं कर रहा है ?

२२ रँगे...फूल। जब हम उसी प्रभु के रंग में रँगे हुए हैं तो उसकी महिमा को कैसे भूल सकते हैं। उसी की छबि देख कर फूल झूम रहे हैं।

२३ क्या...जोत। सोत = स्रोत (यहां, छवि-धारा)। क्या आंखों में दिखाई देने वाली छवि-धारा उसी प्रभु की नहीं है ? क्या जगत में प्रकाशमान (देदीप्यमान) ज्योति उसी की नहीं है ? (क्या आखों में, क्या जगत् मे उसी का प्रकाश है)।

२४. पूजन...आस। पूजे = पूर्ण हो। माननीय लोग जिसके विषय में यह कहते हैं कि वह ऐसा पूजनीय है जैसा सेवक से स्वामी, उस की पूजा जो नहीं करते, उनकी आशा पूरी नहीं होती।

२५ आव...भाव। सचाव = उत्कंठा से युक्त होकर। जिस मनुष्य ने अपने भाव भी ऊँचे रखे और (क्रियात्मक रूप से भी) सब से श्रेष्ठ बन कर रहा, सांसारिक लोग उस का आदर-सत्कार करते हैं और उसके चरणों को उत्कठा-पूर्वक पूजते हैं।

२६. बिना...खेल। क्या बीज के बिना बेल उग सकती है ? क्या तिलों के बिना तेल निकल सकता है ? (कभी नहीं)। इसी प्रकार यह संसार-रूपी खेल भी किसी खिलाड़ी के बिना नहीं हो

सकता। (भाव यह है कि जगत् का कारण ईश्वर अवश्य मान्य है)।

पृष्ठ ८, दोहा २७। क्या...गान। क्या वह परमात्मा निर्गुण है? अरे भाई, निर्गुण का ज्ञान किसे है? हां गुण वाले (मनुष्य) यदि कर सकें तो सगुण परमात्मा के गुणों का गान कर लें।

* २८. चित...निकेत। कला = छवि का अंश। कला-निकेत = कलाओं का भंडार, प्रभु। कलाओं (अद्भुत गुणों) का भंडार वह प्रभु अपनी ज्योति को बाहिर नहीं दिखाता (वह मन में साक्षात् की जाती है)। परन्तु यदि हमारा चित्त सावधान रहे अर्थात् तर्क-वितर्क आदि में तत्पर हो तो वह चित्त के अंदर भी प्रकाशित नहीं होता। (भाव यह है कि मन में भी उसका साक्षात्कार तभी संभव है जब हम अपनी सुध-बुध भूल कर तन्मय हो जायँ)।

२६. जोत...खोल। लाखों बार टटोलने पर भी वह (प्रभु की) ज्योति अंधकार में (अज्ञान से मन ढँपे होने के कारण) नहीं मिली। जब तक हम ज्ञान-चक्षु न खोल सकेंगे तब तक उस प्रभु का भेद हम पर प्रकट न होगा।

सत्यनारायण

(सन् १८८४—१९१८)

ये अलीगढ़ के सनाढ्य ब्राह्मण थे। बचपन में मातृ-पितृ-हीन हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण मौसी द्वारा हुआ, परन्तु वह भी शीघ्र ही चल बसीं और तब इन्हें धांधूपुर (आगरा) के रघुनाथ जी के मंदिर के पुजारी बाबा रघुनाथ दास जी ने पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। इन्होंने बी. ए. तक शिक्षा पाई थी। परन्तु उत्तीर्ण न हो पाए थे।

कविता में इन की रुचि बाल्यकाल से ही थी। आगरे में प्रत्येक-सभा-में ये कविताएं सुनाया करते थे। चौबे न होकर भी आप 'चतुर्वेदी' का संपादन अवैतनिक रूप से किया करते थे। इन का वेष अत्यन्त सीधा-सादा रहता और अभिमान इन्हें छू तक न गया था। इनका कविता सुनाने का ढंग बड़ा हृदय-द्रावक था। इन्हों ने छोटी-बड़ी अनेक

पुस्तकें लिखीं पर देश भक्त होरेशस, उत्तरराम-चरित तथा मालती-माधव विशेष महत्त्व की हैं। भ्रमर-दूत, हंस-दूत आदि कुछ ग्रंथ अप्रकाशित पड़े हैं। सत्यनारायण व्रजभाषा के ऊँचे दर्जे के कवि थे। परन्तु खड़ी बोली में भी कविता किया करते थे। अनेक राजाओं ने इन्हें संमानित किया था। ये श्रीकृष्ण के परम भक्त थे और इनकी कविता कृष्ण-प्रेम से पूर्ण है तथा अतिसरस है। भाव-सौकुमार्य के साथ साथ इनकी कविता मे अलंकारों की छटा भी खूब मनोमोहिनी है। प्रस्तुत दोहे श्रीकृष्ण-प्रेम विषयक ही हैं।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ

पृष्ठ १०, वह...हिलोर। (श्रीकृष्ण के) ओठों पर की वह (मधुर) बांसुरी, (तिरछी) चितवन का वह (मनोहारी) कोना, घने कुंज की वह (अद्भुत) शोभा और यमुना जी की वह (उल्लासदायिनी) तरंग (मेरे मन मे बसे)।

२. पीत...घनस्याम। हे प्रभु के सगुण रूप श्रीकृष्ण, पीतांबर पहने हुए, सुन्दर छड़ी लिए हुए, धीरे-धीरे मुसकराते हुए, मेरे हृदय में निवास करो।

३ करम सार। तार=विधान। धर्म, कर्म और नैत्यिक नियमों के विधानों को सब प्रकार से देख डाला (और इस परिणाम पर पहुँचा) कि इस झूठे जगत् में प्रेम ही एक सच्चा तत्त्व है।

४ चित प्रेम। अपनी चिन्ताओं को छोडकर तथा सासारिक नियमों के बोझ को फेंक कर, हे मन, प्रेमपूर्वक श्री राधा-कृष्ण की शरण मे आओ।

५. श्रीराधा...पीर। हे श्रीराधा जी के पति माधव, हे श्रीसीता जी के धैर्यवान् पति रामचन्द्र, हे मच्छादि के अवतारो, मैं तुम्हें सदा प्रणाम करता हूं। मेरी सांसारिक पीड़ा को दूर कीजिए।

६. रेवति.. धाम। रेवती=बलराम की पत्नी। मूसलहली=मूसल तथा हल को शस्त्ररूप मे रखने वाले। कृष्णाग्रज=कृष्ण के बड़े भाई। मैं रेवती के प्यारे, मूसल तथा हल को धारण करने वाले, ..वान, समस्त संसार में व्यापक, आनंद सदन, श्रीकृष्ण के बड़े

भाई, श्री बलराम जी को नमस्कार करता हूँ।

७. भंव...हीय। दरि=दलन करके। हे जगत् की दुस्तर विपत्तियों के दूर करने वाले राधा-कृष्ण, दुःखों तथा निधनता को नष्ट करके मेरे मन में कल्याण का प्रसार करो।

८. श्री...भक्ति। हे वृषभानु की पुत्री, श्रीकृष्ण की प्यारी, तथा उन्हें शक्ति देने वाली श्रीराधा जी, मुझे अपने चरनों की परम पवित्रतादायक अटल भक्ति दीजिए।

९. मकराकृत...गोपीस। ('बरन' के स्थान पर 'बरुन' पाठ चाहिए)। कानों मे मगरमच्छ के आकार के कुडल तथा शरीर पर पीतांबर धारण करने वाले भगवान् गोपीनाथ (श्रीकृष्ण), आप मेरे मन मे श्रीराधा जी के साथ निवास कीजिए।

१०. क्यों...अघाय। पियूष (पीयूष)=अमृत। बिहाय=छोड़कर। अघाय=तृप्ति-पर्यन्त। 'मुनि-जन अमृत को छोड़ कर मेरे चरणों से छुए हुए जल को क्यों पीते हैं', यही जानने के लिए शिशु श्रीकृष्ण अपने पांव (के अँगूठे) को जी भर कर चूस रहे हैं।

११. चन्द्र...लखात। हेत=प्रेम। चांद तथा कमल का वैर है, संसार की यह कहावत उचित नहीं। इसी कारण श्रीकृष्ण जी अपने चरण-कमल से मुख-चन्द्र का प्रेम दिखा रहे हैं।

[टिप्पणी—श्रीकृष्ण शैशव मे पाँव के अँगूठे को मुख मे डाल लिया करते थे। उसी पर यह सुन्दर कल्पना की गई है।]

१२. करौं...देह। यद्यपि हरि का वास्तविक स्वरूप निर्गुण ही है तो भी वह सगुण शरीर को मानो यही विचार कर धारण करते हैं कि इस से समस्त संसार को पवित्र कर दूँ।

पृष्ठ ११, दोहा १३ जदपि...सदाप। समल=पाप-युक्त। यमलारजुन= यमल और अर्जुन। सुरगर्दि=स्वर्ग को। सदाप (सदर्प)=गौरव युक्त होकर। चाहे पापी यमल तथा अर्जुन को नारद मुनि का सराप लगा हुआ था तो भी ऊखल से बँधे हुए श्रीकृष्ण को छूकर वे अभिमान पूर्वक स्वर्ग को चले गए।

[टिप्पणी—कुबेर के दो पुत्र थे, यमल और अर्जुन। उन्हें पाप मे प्रवृत्त देख कर नारद जी ने शाप से वृक्ष बना डाला। श्रीकृष्ण के

स्पर्श से नारद के शाप का प्रभाव नष्ट हो गया और उन्होंने स्वर्ग-लाभ किया ।]

१४. अरे.. भात । (यशोदा ने पूछा) हे प्यारे कृष्ण, दही बिलोने की हांडी में हाथ क्यों डाल रहे हो? (कन्हैया बोले)—मैया, जो चींटियां इस में गिर गई हैं, उन्हें निकालने के लिए ही तो ।

१५ पीत...उदोत । श्रीकृष्ण के (सांवले) शरीर पर पीला वस्त्र यों शोभा देता है मानो घने नीले मेघ मे बिजली के चमकने का प्रकाश हो।

१६, मृगमद ..तात । मृगमद = कस्तूरी । गरवहु = गर्व करो । जनि = मत । किरात=व्याध । हे कस्तूरी, यह जान कर मत अभिमान करो कि तुम्हारी सुगंध खूब शोभा दे रही है क्योंकि तुम ने ही व्याध के बाण से अपने पिता की हत्या भी तो करवाई है ।

वियोगी हरि

इनका पहिला नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था। बुन्देलखण्ड के छत्रपुर राज्य में संवत् १९५३ में कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० बलदेव प्रसाद जी के हां इनका जन्म हुआ । अभी छः मास के ही थे कि पिता चल बसे इसलिए इनका पालन-पोषण ननिहाल मे हुआ । सात वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक कुडलिया बनाई थी । इन्होंने अंग्रेज़ी, संस्कृत तथा दर्शन-शास्त्र का भी विशेष अध्ययन किया । लगभग १८ वर्ष की आयु मे इन्होंने प्रेम शतक, प्रेम-पथिक, प्रेमांजलि तथा प्रेम-परिषद् नामक पुस्तकें प्रेमधर्म पर लिख कर अपने प्रेमी स्वभाव का प्रचुर परिचय दिया। घर वालों ने इन्हें विवाह करने के लिए बहुतेरा विवश किया परन्तु इन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का दृढ़ संकल्प किया। छत्रपुर नरेश की धर्मपत्नी श्रीमती कमलकुमारी देवी इन्हें पुत्रवत् प्यार करती थीं और उनके साथ इन्होंने भारत के सभी तीर्थों की कई बार यात्रा की । इन्होंने सम्मेलन-पत्रिका तथा संक्षिप्त सूरसागर का संपादन किया। इन्होंने 'तरंगिणी' नामक सुन्दर गद्यकाव्य और 'शुकदेव' नामक खंड-काव्य खड़ी बोली मे लिखा । पश्चात्, इन्होंने संन्यास ले लिया और तब इनका नाम श्री हरितीर्थ हुआ। उपर्युक्त महारानी की मृत्यु संवत् १९७८

में हुई और तब से इन्होंने अपना नाम वियोगी हरि रख लिया। तत्पश्चात इनकी चार पुस्तकें और प्रकाशित हुईं—श्री छद्मयोगिनी (नाटिका), साहित्य-विहार, कविकीर्तन और अनुरागवाटिका। कविकीर्तन मे हिन्दी के १०० कवियों का पद्यात्मक परिचय हैं, अनुरागवाटिका मे प्रेमभक्ति पर ब्रजभाषा के १०० पद्य हैं। इन्होंने ब्रजमाधुरी सार नामक एक सरस ग्रंथ का संपादन किया है जो ब्रजभापा की भक्ति विषयक कविता का अपूर्व संग्रह है। इन्होंने विनयपत्रिका की टीका हरितोषिणी की है। इनकी वाल-रचनाओं मे वीर हरदौल (नाटक) तथा मेवाड़-केशरी (काव्य) अत्युत्तम थे। इन्होंने ७०० उर्दू शेरों की एक प्रेम-गजरा नामक पुस्तक लिखी परन्तु लापरवाही के कारण खो गई।

कुछ वर्षों से इन्होंने आ-जीवन फलाहारी रहने का व्रत लिया हुआ है।

इन की अधिकतर कविता ब्रजभापा मे ही है, खड़ी बोली मे बहुत कम। ब्रजभाषा पर इन्हें अच्छा अधिकार प्राप्त है। इनकी रचनाएं प्रेम, भक्ति तथा विरह से पूर्ण होती है।

इन की राष्ट्रीय पुस्तकों के नाम ये हैं:—चरखा-स्तोत्र (सस्कृत पद्य), महात्मा गांधी का आदर्श, वढते ही चलो (गद्य), चरखे की गूँज, वकील की राम कहानी, असहयोग-वीणा, वीर-वाणी (पद्य, श्री गुरु पुष्पाजलि। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक ग्रथों का संपादन भी किया है।

प्रस्तुत दोहे इन की प्रसिद्ध 'वीर-सतसई' से लिए गए हैं जो ब्रजभाषा मे लिखी गई हैं।

वीर रस के वर्तमान काल के इस अपूर्व ग्रंथ पर इन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। इसमे राम, लक्ष्मण, अभिमन्यु आदि प्राचीन तथा गाधी, तिलक, दास आदि अर्वाचीन वीरों, देशभक्तों, अस्त्र-शस्त्रों, वीर-भूमियों आदि का वडा ओजस्वी तथा रोमांचकारी वर्णन मिलता है। सारा ग्रथ विभिन्न अलकारों से भूषित है और कवि की काव्यमर्मज्ञता का अच्छा परिचायक है।

पृष्ठ १३ दोहा १। जयतु...कृपाल। कंस-करि-केहरो = कंस रूपी हाथी के लिए सिंह-रूप। मधुरिपु = मधु नामक राक्षस के शत्रु। केशी-

काल=केशी नामक राक्षस के लिए मृत्यु-रूप। कालिय-मद-मदन= कालिया नाग के घमड को कुचलने वाले। हे कंस-रूपी हाथी के लिए सिंह-रूप, मधु राक्षस के शत्रु, केशी राक्षस के मारने वाले, काली नाग के घमंड को चूर करने वाले. हरि, केशव, कृपालु कृष्ण, आप की जय हो।

२. छाडि जहान। ध्यावत=देखता है। सावन आंधरो=सावन का अन्धा (उसे सब कुछ हरा ही दिखाई देता है)। वीर रस के सिवा अब हमें और कोई रस अच्छा नहीं लगता। जैसे, सावन के अंधे को सारा ससार ही हरा दिखाई देता है।

३. खंड...मेड़। पेंड़=पांव। खेत=युद्धक्षेत्र। मेड़=हद, सीमा। लड़ता हुआ शूरवीर भले ही टुकड़े-टुकड़े हो जाय परन्तु पग पीछे नहीं हटाता। वह मर जाता है पर युद्धभूमि की सीमा नहीं छोड़ता।

४. सहज...उमाह। सहज सूर=स्वभाव से सूरमा। रण-चूर= युद्ध के नशे मे मस्त। हारिल=पक्षी विशेष जो निरन्तर उड़ता ही रहता है, पृथिवी पर पग नहीं रखता। उमाह=उत्साह। जो स्वभाविक सूरमा युद्ध के नशे मे चूर है, उसके मन में पपीहे का प्रेम, हारिल पक्षी का हठ और सती स्त्री का-सा उत्साह चाहिए। (भाव यह है कि युद्ध-प्रेमी वीर में प्रेम, हठ और उत्साह अवश्य चाहिए)।

५. खल...एक। खल-खंडन=दुष्ट-नाशक। मण्डन-सुजन= सज्जन-रक्षक। सुहृद=प्रेमभाव युक्त। दुष्टों का नाशक, सज्जनों का नाशक, प्रेमभाव-युक्त, विवेकशील, गुणवान्, युद्ध-शूर व्यक्ति लाख मे एकाध ही मिलता है।

६. कहत...सूर। चाटुकार=खुशामदी। मतिकूर=मन्दबुद्धि। मन्दबुद्धि चापलूस लोग उन कंजूस रण-सूरमाओं को महान् दानी कहते है जो (युद्ध मे) पीठ का दान भी नहीं देते।

[टिप्पणी—कवि ने युद्ध-वीर की निन्दात्मक वचनों से वस्तुतः स्तुति ही की है]।

७ दया.. वार। बलि=राजा बलि। हे राजा शिवि, तूने दया-रूपी धर्म को सब धर्मों का सार समझ लिया था। तेरे (अनुपम) दान पर राजा बलि भी सौ बार बलिहार जाता है।

८. रण-थल.. राय। गीधनु=गिद्धों को। हे संयमराय, तुम

धन्य हो। तुम ने गिद्धों को अपने शरीर का मांस देकर युद्ध-क्षेत्र में अचेत पड़े हुए अपने स्वामी (पृथिवीराज) के प्राण बचा लिए।

[टिप्पणी—संयमराय महाराज पृथिवीराज का एक वीर सरदार था। एक बार पिथौरा रण-क्षेत्र में मूर्छित होकर गिर पड़े। उन्हें मृत समझ कर गिद्ध उन पर मँडराने लगे और कुछ एक ने तो चोंच भी मार दी। संयमराय पास ही घायल पड़ा था। घावों के कारण वह उठ तो न सका परन्तु स्वामी की शरीर-रक्षा के लिए उसने तन से बोटियाँ काट गिद्धों को खिलानी आरंभ कर दीं। पृथिवीराज तो बच गए परन्तु संयमराय मर कर स्वामि-भक्ति का अनुपम उदाहरण छोड़ गए]।

९. मृत...चन्द। रोहित=राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र। अमंद=भली भांति। जिन्होंने मरे हुए (पुत्र) रोहिताव के वस्त्र (कफ़न) का दान लेकर अपने धर्म का भली भांति पालन किया, वे तलवार की धार के समान तीव्र व्रत पालने मे धैर्यवान् सत्यवीर राजा हरिश्चन्द्र धन्य हैं।

१०. इत...याहि। चाहि=चाव से। इधर से गांधी जी और उधर से सचाई, दोनों आपस मे बड़े चाव से मिले। जैसे गांधी जी सत्य नहीं छोड़ते वैसे ही सचाई गांधी जी को भी नहीं छोड़ती।

*११. क्षात्र...प्रयाग। यसकौमुदी=कीर्ति-चन्द्रिका। कृष्ण-रूप रुचि-राग=श्रीकृष्ण के रूप और कान्ति का प्रेम। हे भगवन्, क्षात्र धर्म, कीर्ति-रूपी चांदनी तथा श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य के प्रेम का सदा सगम होवे। यही सौभाग्यशाली (तीर्थराज) प्रयाग है।

[व्याख्या—तीर्थराज प्रयाग मे तीन पवित्र नदियो का संगम होता है। उन में से गंगा का रंग सफेद, यमुना का श्याम तथा सरस्वती का लाल होता है। कवि कहता है, हम तो एक और ही प्रयाग की सृष्टि करना चाहते हैं जिस मे क्षात्रधर्म (जिसका रंग काला माना जाता है) की यमुना हो, कीर्ति-चंद्रिका (कीर्ति यश का रंग श्वेत माना जाता है) की गंगा हो और कृष्ण-प्रेम (अनुराग का रंग लाल माना जाता है) की सरस्वती हो। भाव यह है कि लोगों मे क्षात्रधर्म का प्रचार हो, यश का प्रसार हो और श्रीकृष्ण भक्ति का विस्तार हो। इन तीनों का मेल प्रयाग-सम पवित्र होगा]।

२१. रण . रुण्ड—वै = वे। सुभट्ट = निपुण योद्धा। भुट्ट = भुट्टा। अग्नि = खडग। कबंध = सीस-रहित धड़। लुट्टत = लोटते हैं। रिपुरुण्ड = शत्रुओ के धड। वे युद्ध-वीर खड्ग धारण करके भुट्टों के सामान (प्रति-पत्तियो क) सिर काट देते हैं। कहीं पर सीस-हीन धड ही लडने लग पडते हैं और कही पर शत्रुओं के कबंध ही लोटने लग पडते हैं।

२२. अरे धूरि—भूरि = अनेक। अजौं = अभी भी। अरे पागल, अनेक तीर्थों पर क्यों भटकता फिरता है ? अभी भी तू उन लोगों की चरण धूल को मस्तक पर क्यों नहीं लगाता जो स्वभावत: सूरमा हैं।

२३ बसत बरजोर—बिरुझि = भिड या उलझ कर। जहा पर बलिष्ठ बाके वीर आपस मे उलझ कर लडते मरते हैं, उस भूमि पर सदा लाख-करोड तीर्थ निवास करते हैं। (भाव यह है कि युद्ध-क्षेत्र की महिमा असंख्य तीर्थों से बढ कर होती है)।

२४. दियौ छीर ?—ऐसे व्रती वीर बहुत नहीं हुए जिन्होंने अपने सिर का दान दिया हो। बताओ तो, उनकी सख्या कितनी है जो शेरनी के दूध को (उसके स्तनों से) मुँह लगा कर पीते हैं।

२५ मौलि क्रान्त—मौलि = सीस। प्रसेद (प्रस्वेद) = पसीना। श्रान्त = थके हुए। विजय राघव = विजयी श्री राम। रण-क्रान्त = युद्ध में मग्न। सिर पर जटा बाँधे, हाथ मे धनुष-बाण लिए, पसीने से तर मुख वाले, थके हुए अंगो वाले, युद्ध-मग्नता के रूप को धारण किए, हे विजयी राम, मेरे मन मे निवास करो।

२६. रहौ टंकार—श्रवननि = कानों को। बंक-लक-धर-शंक-कर = मायावी लकेश्वर (रावण) को भयभीत करने वाली। युगल = राम-लक्ष्मण की जोडी। तीनो भुवनो को कँपाने वाली तथा मायावी लकेश को भयभीत करने वाली राम-लक्ष्मण के धनुषों की टंकार सदा मेरे कानो में गूँजती रहे।

२७. हिन्दू चन्द—हिंदु कवि, हिंदूओं के कवि, हिन्दी के कवि, रस के भण्डार, सुन्दर कवि, महाकवि, पूर्ण कवि चन्द धन्य हैं।

२८. सिवा...धन्य—सरसिज = कमल। सुरस = मकरंद। अनन्य = अनुपम। रस-भूषण-भूषण = रसों और अलंकारों के आभूषण स्वरूप। शिवाजी के सुकीर्ति-रूपी कमल के मधुर मकरद के मस्त और

अनुपम भँवरे, रसो और अलंकारो के प्रयोग में प्रवीण, उत्तम कवियों के सरदार, भूषण कवि धन्य हैं ।

पृष्ठ १५, दोहा २६. एकछत्र अभिषेक—अधिप=शासक, राजा। पंचानन=सिंह। शोणित=लहू। केवल सिंह ही जंगल का एक छत्र राजा है। उस ने हाथी के लहू से अपना राज्याभिषेक अपने आप ही कर लिया है।

३०. छिन्न .वीर—भीर=समूह। दार्यौ=फाडा है। कुम्भ-करीन्द्र=गजराज की कनपटी का उभरा हुआ स्थान। (हाथी का) मद पीने वाले भवरों का समूह बिखर कर क्यो उड रहा है? (प्रतीत होता है) कहीं न कहीं वीर केसरी ने गजराज के कुंभों को फाड़ डाला है।

३१ खल दंड—अरि-बिहंड=शत्रु नाशक। बरिबंड=बलवान। सिंधुर=हाथी। वीर योधाओ के, दुष्टो के नाशक, सज्जनों के आह्लादक, शत्रुओ के उच्छेदक, बल से युक्त, भयकर, बाहुदड, हाथी के सूण्ड के समान शोभा देते हैं।

३२ होति...राख—अनलबर्न=आग के रंग वाली। दहि=जला कर। दुवन-दीह-दल=भागी शत्रु सेना। वह आग के रंग वाली (वीर पुरुष की लाल) आंख, लाख मे कहीं एक ही होती है, जो शत्रुओं की भारी सेना को देखते ही जलाकर भस्म कर देती है। .

३३. चूमत फेर—लवा=बटेरे जैसा पक्षी। ओह! समय के फेर से हाथियों के गर्व को कुचलने वाला सिंह गीदड के पांव पड रहा है और लवा पक्षी बाजों पर झपटे मार रहा है।

३४. देखतही. .लहरात—अथिर (अस्थिर)=चंचल। थिरात=स्थिर हो जाते हैं। टेढे (अर्थात् चिल्ला चढे हुए) धनुष को देख कर टेढे (दुष्ट) लोग सीधे (भले) बन जाते हैं। ज्योंही विकट वाण लहराते हैं त्योंही उछलते-कूदते शत्रु निश्चल हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं।

३५ वह ..मोय—खेलिवे=खेलने को। वह शकुन्तला का लाडला (भरत) कब से रो-रो कर मांग रहा है कि मुझे खड्ग-रूपी खिलोना अभी ला कर दो।

३६. दे तौ .निछान—नैक=ज़रा। मेलो=मेरा। गिलाउँगो=गिराऊँगा। मालि=मार कर। निछान=निशाना। (शिशु भरत

गोविंसिंहद जी का यह (अद्भुत) चरित्र संगठन शक्ति के व्रत का सखा है, या (जेठ मे) वृष राशि मे पहुँचा हुआ क्रांतिकारी सूर्य है या पवित्र बलिदानों का चित्रपट है।

*४६. रमा...देस—कलोल = क्रीडा। असेस = अनेक। जहा पर लक्ष्मी, सरस्वती तथा काली देवी अनेक क्रीडाएँ करती हैं, जहा लक्ष्मी विराजती है, सरस्वती ज्ञान-प्रदान करती है और काली (दुष्टों का) संहार करती है, वही मेरा देश (भारतवर्ष है)। (भाव यह है कि भारतवर्ष में सदा संपदा, ज्ञान और वीरता का प्रचार रहा है)।

५०. जनि दाप—जनि = उत्पन्न करके। दुवन-दल दाप = शत्रु-वृन्द का गर्व। हे वीर माता चित्तौड की भूमि, तूने बापा रावल, महाराणा संग्रामसिंह, राणा कुभा तथा प्रताप नामक सुवीर पुत्रो को जन्म देकर शत्रुओं की सेनाओं के अभिमान को चूर्ण कर दिया।

५१ सौर्य टेस—सौर्य (शौर्य) = वीरता। जूझन-खेत = युद्ध-क्षेत्र। जहां के युद्ध-क्षेत्र सदा ही वीरता-रूपी नदी से सींचे रहते हैं, उस मारवाड देश को मूर्ख लोग ही रेगिस्तान कहते हैं।

५२ अहो बाट--सोनित सन्यो = खून से लिथडा हुआ। जोहत = देखता है। अहो, उत्तम वीरों के रुधिर से सींचा हुआ, व्रत का पक्का हल्दीघाट, आज भी खड़ा होकर हठी प्रताप की राह देख रहा है।

५३. याही.. केल—बांधव दुर्ग = रीवां रियासत का बांधवगढ नामक क़िला। बिरुझे = लड़े। बाघ बघेल = व्याघ्र-सदृश वीर बघेले। रण-केल = युद्ध-क्रीड़ा। व्याघ्र-सदृश वीर बघेले इसी बांधव-गढ के क़िले पर लड़े थे। रण-चडी ने गरजते हुए और किलकारियां मारते हुए यहीं पर युद्ध-क्रीडा की थी।

५४. एह...पछारि—दुजह = (दुर्जय) कठिनता से जीतने योग्य। दीह (दीर्घ) = महान्। यही वह भरतपुर का कठिनता से जीतने योग्य, महान और भयकर क़िला है जहॉ पर जाटों के बच्चो ने बड़े-बडे वीरो को हरा दिया था।

[टिप्पणी—यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है— आठ फिरगी, नौ गोरा, लडे जाट के दो छोरा।]

५५ यह विहार—लहू से सींची हुई यह सुन्दर भूमि, यह पर्वत

और यह नदियां हम बुन्देलखंड-वासियों के लिए यहीं स्वर्ग के सुख उपस्थित कर देती हैं।

५६ निज...भाल—असन-बसन = भोजन-वस्त्र। हे विधाता, मेरे ललाट (भाग्य) मे यह लिखना कि मै परायापन त्याग कर अपनापन धारण करूँ अर्थात् अपने ही देश की भाषा, भाव, भोजन, वस्त्र तथा चाल-ढाल को अपनाऊँ।

पृष्ठ १७, दोहा ५७ पराधान हेतु—[पहले जनु के बाद अर्ध विराम (,) का चिन्ह चाहिए।] परतंत्र मनुष्यों के लिए स्वर्ग स्वर्ग नहीं किन्तु नरक हुआ करता है। जो परतत्र नहीं होते उन के लिए नरक भी स्वर्ग होता है।

५८. कनक...लूम—कनक-कोट-कंगूर = सोने के किले के शिखर। धौरहर = अट्टालिका, अटारी। आरति = क्लेश। मारुति-लामी-लूम = हनुमान की लम्बी पूँछ। जिसने (लंका के) सोने के क़िले के कंगूरों को धूएँ की अटारियो से बदल दिया, हनुमान की वह लम्बी पूँछ भारत के क्लेशो को नष्ट करे।

५६. धन्य चन्द—उत्तरा = अभिमन्यु की पत्नी। उरधनी = हृदयेश्वर, पति। भारत-भट-अग्रनी = भारत के सिपाहियो का शिरोमणी। पार्थ-पयोनिधि = अर्जुन रूपी सागर। उत्तरा के पति, सुभद्रा के पुत्र, भारतीय योद्धाओ के सिरताज अर्जुन-रूपी सागर के चांद, हे अभिमन्यो, तुम धन्य हो।

६० धर्म भीम—जगत् मे चाहे धर्मवीर तथा बलशाली युद्धवीर अगणित होते रहें परन्तु द्रौपदी के अपमान को हरने वाला, भयंकर कर्म करने वाला तो एक भीमसेन ही हुआ है।

६१. दियो चाणक्य—हे चाणक्य, तुम ने (अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार) नन्द-साम्राज्य को नष्ट करते हुए असंभव काम को भी संभव कर दिया। नीति-वीरता मे तुम्हारे जैसी निपुणता किसी मे नहीं देखी।

६२ जासु सम्राट—जिसकी युद्ध गरजना से ब्रह्मांड कांपता है, उस सेल्यूकस-रूपी हाथी के लिए सिंह-समान गुप्त-सम्राट् (चन्द्रगुप्त) मौर्य की जय हो।

[टिप्पणी—सेल्यूकस सिकन्दर आजम का सेनापति था। इमे चन्द्र

है ,जो क्रूर राक्षसों का नाशक है, वह (दुर्गा का बाहन) सिंह हमारे पापों को नष्ट कर दे।

६३ चूर आज—(माता पुत्र को उपदेश दे रही है)। हे पुत्र, टुकड़े-टुकड़े हो कर भी मृत्यु-पर्यन्त कुल की लाज बचाना। आज तुम्हारी माता के दूध और पिता की तलवार की परीक्षा है।

६४ पाठ काल—उछंग (उत्संग)=गोद। माता अपने शिशु को गोद मे बैठा कर नित्य यह पाठ पढाती है कि हे लाड़िले पुत्र, वीर-व्रत का पालन करना और यमराज को भी पटक कर पछाड़ देना।

६५. लोटि लाज—धूरि धूसरित=मिट्टी से मिटियाले। हे बच्चे, आज जिस पर लोट-पोट होते हुए तुम धूल से मटियाले हो जाते हो. (बड़े होने पर) उसी भूमि की मर्यादा तुम्हे ही बचानी होगी।

दुलारेलाल

ये लखनऊ निवासी श्री प्यारेलाल जी भार्गव के ज्येष्ठ पुत्र है। ये उन लोगो में से हैं जिन्होंने वर्तमान काल मे भी व्रज भाषा की सेवा करने का बीडा उठाया हुआ है। ये लखनऊ की गगा-पुस्तक-माला के संस्थापक तथा 'सुधा' के सपादक हैं। इनके यहां से हिन्दी की ४०० के लगभग पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

दुलारे-दोहावली लिखकर इन्होने अपने सुकवित्व तथा व्रजभाषा-पांडित्य का अच्छा परिचय दिया है। अनेक विद्वानो का यह मत है कि इनकी 'दोहावली' वर्तमान काल का व्रजभाषा का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। आप को इसी ग्रंथ पर सर्वप्रथम देव पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। इनके अनेक दोहे प्राचीन कवियों की कल्पना के आधार पर रचे गए हैं। अपनी रचना मे यह अनुप्रसादि अलंकारो का प्रचुर प्रयोग करते हैं और रूपक-रचना मे विषेश चातुर्य दिखाते हैं। आप की दोहावली में अनेक अश्रुतपूर्व उपमा आदि दिखाई देती हैं जो इनकी निराली सूझ की परिचायक है। इनके दोहे जहां श्री राधा-कृष्ण आदि के सबध मे हैं वहां वर्तमान विपयो—अछूतोद्धार, हरिजन सुधार, सांप्रदायिक संगठन, गाधी, स्वदेश-प्रेम तथा [illegible] प्रेम आदि पर भी हैं।

दोहों के शब्दार्थ तथा सरलार्थ।

पृष्ठ २१, दोहा १. सुमिरो तोम—बिघनेस=विघ्न-विनाशक, गणेश। सदन=घर। सोम=चांद। रदन-दुति-किरन=दान्त के प्रकाश की किरण। विघन-तम-तोम=विघ्न रूपी अन्धकार के समूह को। विघ्न विनाशक (गणेश) जी के उस तेजके भण्डार मुख-रूपी चन्द्रमा का स्मरण करो जिसके दान्त की कान्ति की एक किरण ही विघ्न-रूपी घने अन्धेरे को दूर कर देती है।

२. वंदि. जाहिं—विनायक=गणेश। समुहाहि=सामने आते। इंगित=इशारा। विघ्नो के शत्रु गण-नायक को प्रणाम करने से विघ्न क्षण भर भी सामने नहीं ठहर सकते। उनके कर (हाथ या सूँड) का संकेत पाते ही वे विघ्न लाजवन्ती के समान मुरझा जाते हैं।

३ श्रीराधा नाथ—बाधा=कठिनाई। नेह अगाधा=अपार प्यार करने वाली। निहचल=स्थिर। हे स्वामी (श्रीकृष्ण), विघ्नों को दूर करने वाली तथा अथाह प्यार करने वाली श्रीराधिका जी के साथ तुम मेरे नेत्र-रूपी कुञ्ज मे धैर्यपूर्वक सदा निवास करो।

४. अनु...निवास—अनु-अनु=कण-कण मे। रमा-निवास=लक्ष्मी के पति। हे लक्ष्मी के पति (श्री विष्णु), आप प्रत्येक अणु-परमाणु को प्रकाशित कर रहे हैं तो भी आप स्वय अन्धेरे में अर्थात् अप्रकट रूप मे रहते हैं। (यदि अन्धेरे मे रहना ही पसन्द है तो) घने अन्धकार से युक्त मेरे मन-रूपी कुञ्ज मे रहिए।

५. कंचन रंग—आग की संगत प्राप्त करके सोना उत्तरोत्तर शुद्धतर होता जाता है। इसी प्रकार सचाई से भले मनुष्यो पर चौगुना रंग चढता जाता है।

❀ ६. नीरस जाय—नीरस=भावुकताहीन रस-शून्य। तम कूप =अन्धा (जलहीन) कूआँ। दोष-तिमिर=काव्य के अश्लीलतादि दोषों का अन्धेरा। भारति=सरस्वती। हे सरस्वती देवी, मेरे भावुकता रूपी जल से शून्य, हृदय-रूपी अन्धे कूएँ के अश्लीलता आदि दोषों के अन्धेरे को नष्ट करके उसे साहित्यिक रसो और गुणों के प्रकाश से भर दो ताकि मेरा प्यासा मन तृप्त हो जाय।

[व्याख्या—इस दोहे मे कवि ने अपने हृदय का अन्धे कूएँ के रूप मे वर्णन किया है। अन्धे कूएँ मे जल तो नहीं होता किन्तु अन्धकार खूब होता है ! इसी प्रकार कवि के हृदय मे रस रूपी जल तो नहीं है परन्तु दोष-रूपी अन्धेरा बहुत है। इसीलिए कवि अपने हृदय मे रसो तथा गुणों के उत्पादन की प्रार्थना करता है।]

७ नन्द आनन्द—दण्ड = कष्ट, क्लेश। छल-छन्द = कपटाचार। सुख के स्रोत नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण) का मुख-चन्द्रमा धीरे-धीरे उदित होता है। उससे सांसारिक क्लेश और कपटाचार रूपी अन्धकार का नाश हो जाता है और जगत् मे आनन्द उत्पन्न हो जाता है।

*= तेह चाप—तेह-मेह = क्रोध रूपी बादल। सुरचाप = इन्द्रधनुष। (पति-पत्नी एकान्त मे बैठे प्रेमपूर्वक वार्तालाप कर रहे थे। एकाएक पति के मुख से पराई स्त्री का नाम सुनकर पत्नी क्रोध से भर गई। उसकी भँवे टेढ़ी हो गई, आँसू बरसने लगे और हँसी उड गई। इसी बात का वर्णन इस दोहे में रूपक द्वारा किया गया है।)

(पत्नी के) मुख-रूपी आकाश पर क्रोध-रूपी बादल छा गये। उसका भौंह-रूपी इन्द्रधनुष चढ गया, आँसू-रूपी बूँदे बरसने लगीं और हँसी-रूपी हंस चुप-चाप छिप गया।

(हँसी का रंग श्वेत कहा जाता है और हंस बरसात से दूर उड जाते हैं, इसीलिये हँसी का हस-रूप से वर्णन किया गया है)।

* ९ कवि जाय—सुरवैद्यन = देवताओ के वैद्य, दो अश्विनी-कुमार। साहित-सर = साहित्य का सरोवर। जठर = वृद्ध। च्यवन = एक परम तपस्वी ऋषि, उन्हें अश्विनी कुमारो ने बुढ़ापे में फिर अनेक औषध-रसो से भरे हुये सरोवर में स्नानादि कराके फिर से जवान बना दिया था।

कवि-रूपी देवताओं के वैद्य वीररस-रूपी औषध-रसों के द्वारा साहित्य-रूपी सरोवर को खूब भर दें। भारत-रूपी बूढा च्यवन ऋषि उसमे स्नान करके शीघ्र ही युवक बन जाय। (भाव यह है कि कवि लोग ऐसी वीर-रसमयी कवितायें लिखें कि उत्साह-हीन भारतीय उत्साहपूर्ण हो जाए)।

१०. झर सुजान—झर-सम = मेघ की झड़ी के समान। चरसा = चमड़े का डोल। हे बुद्धिमानो, देश के लिये बादल की झड़ी के समान

निरन्तर जीवन-दान देते चलो। चरसे के समान रुक-रुक कर बलिदान देना उपयोगी नहीं। (भाव यह है कि देशहितार्थ बलिदान निरन्तर होते रहने चाहिएं)।

११. चहूँ पास—पास ' पार्श्व)=तरफ़। परिश्रमपूर्वक घूमते हुए चारो तरफ किसे खोजते फिरते हो ? जिसके मन मे सच्चा प्रेम है, प्रीतम तो उसके पास ही है।

१२ हिममय .लहरात—('प्रमात' के स्थान पर 'प्रभात' कर लें)। प्रातःकाल सूर्य का प्रकाश बर्फ से ढके हुए पर्वत पर पडता है। (तब ऐसे प्रतीत होता है मानो) प्रकृति-रूपी परी के वक्षःस्थान पर सोने का हार लहरा रहा हो।

१३ संतत सुबानि—सतत = निरन्तर। सुधा-सरस = मधुर अमृत। सज्जन अपने सहज स्वभाव के कारण सबका निरन्तर सम्मान करके अपनी प्रेम-पगी मधुरवाणी द्वारा लोगों के कानो को मधुर अमृत से सींच देते हैं।

❀ १४ भाव...सॅवारि—कर = किरण। नवरस = (१) शृङ्गारादि नौ रस, (२) ताजा जल। कवि-रूपी सूर्य अपनी कल्पना-रूपी किरणो को मन-रूपी सागर मे फैलाकर, भाव-रूपी भाप को भर कर, मुख-रूपी बादल से सारे ससार को नव-रस-रूपी ताजे जल से सींच देता है।

पृष्ठ २२, दोहा १५ ❀ इडा तरग—इड़ा, पिंगला तथा सुखमन (सुषुम्णा)=शरीर की विशेष नाड़ियां। सबद (शब्द)=अनहद नाद। इडा-रूपी गङ्गा तथा पिंगला-रूपी यमुना के सुषुम्णा-रूपी सरस्वती के साथ मिलने पर अनेक (गूढ) अर्थों से पूर्ण, अतुल, अनाहद-शब्द-रूपी तरगें उठती हैं। (भाव यह है कि जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती के मिलने पर तरंगे उठती हैं, उसी प्रकार इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना के सम्मिलन से योगियों के मन मे अनाहद शब्द की सुखद लहरे उठती है))।

१६ विषय आइ—बात (वात)=वायु। पोत = जहाज। विषय रूपी वायु मन-रूपी जहाज को ससार-रूपी नदी मे बहा ले जाती है। प्रभु-नाम का पात्रपाल दृढ़ता से पकड़ो तभी वह जहाज किनारे लगेगा, अन्यथा मँझधार मे डूबेगा।

१७. कब...अपार—ठीकरो=भिक्षा का बरतन। द्युति-कन=प्रकाश का अणु। मति-तम-तोम=दुर्मति-रूपी घनाधकार।

हे प्रभो, मन-रूपी भिक्षा-भाजन को लेकर यह भिखारी कब से द्वार पर खड़ा है। अपने दर्शन के प्रकाश का एक कण दान देकर इसके दुर्मति-रूपी घने अन्धेरे को दूर कर दो।

१८ लखि मँडराइ - नेक=जरा भी। पतियाइ=विश्वास करता। अमल=स्वच्छ। अनेक सुन्दर फूलों को देखकर भी भँवरे के मन में विश्वास नहीं होता (कि मैं इनसे यथेष्ट प्रसन्नता लाभ कर सकूँगा)। इस लिये वह अनेक बार इधर-उधर घूम फिर कर स्वच्छ कमल पर मँडराने लगता है। (भाव यह है कि भक्त का सच्चे आनन्द की उपलब्धि परमात्मा के अतिरिक्त और कहीं से भी नहीं होती)।

* १९. लखिक जगाइ—हतप्रभ=प्रकाश-हीन। गन्धी=गान्धी रूपी गधी। नवजीवन=(१) नया उत्साह (२) नवजीवन पत्र। भारतवर्ष-रूपी दीपक को सहायक-हीन तथा प्रकाश-हीन सा देख कर महात्मा गाधी रूपी गन्धी ने अपना नवोत्साह-रूपी (अथवा नवजीवन-पत्रिका-रूपी) तेल देकर फिर से जला दिया।

२०. वीर...जात—झर=झडी, बौछाड। कटक=सेना। धैर्यवान सूरमा तीरों की झडी सहते हुए, शत्रु सेना को चीरते हुए ऐसे निकल जाते हैं, जैसे मेघमालाओं के तावड़-तोड़ बरसते हुए भी हवाई जहाज पार निकल ही जाता है।

२१. रही छवि—तिय=स्त्री। छुआछूत-रूपी नारी अछूतोद्धार रूपी महानदी मे डूब रही है। वह क्रान्ति-रूपी भँवर से विह्वल होकर शास्त्र-रूपी तिनके को पकडती है।

[व्याख्या—लोक में कहावत प्रसिद्ध है, डूबते को तिनके का सहारा, अर्थात् डूबने वाला मनुष्य निर्बल चीज को भी हाथ डाल कर बचना चाहता है। इसी प्रकार छुआछूत का विचार वर्तमान क्रांति-युग में नष्ट हो रहा है परन्तु फिर भी शास्त्रों की दुहाई दे कर जीवित रहना चाहता है।]

२२. नखत जाय—नखत-मुकत=नक्षत्र-रूपी मोती। बाल हंस=बाल-रवि रूपी हंस। प्रकृति-रूपी सुंदरी आकाश-रूपी आगन में नक्षत्र रूपी मोती बिखेर देती है। बाल-सूर्य-रूपी हंस अपनी दीप्ति रूपी चोंच

द्वारा उन्हें चटपट चुपचाप चुग जाता है। (भाव यह है कि सूर्योदय होने पर तारे ओझल हो जाते हैं।)

२३. सबै यहै—सोत (स्रोत)=मूल कारण। जलधि=समुद्र। परमारथ-पथ-रथ=परोपकार के मार्ग का रथ। शरीर का निरन्तर स्वस्थ रहना ही सभी सुखो का मूल कारण है। ससार-रूपी सागर के पार उतरने का जहाज तथा मोक्ष-रूपी मार्ग का रथ यही है। (भाव यह है कि स्वस्थ शरीर के बिना ऐहिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति असम्भव है)।

२४ कला आप—आन=दूसरा। गेह=गृह, घर। कला तो वही होती है जो दूसरो (के मन) पर अपनी छाप छोड जाती है। जैसे अत्तार के घर में (दूसरो को भी) सुगन्ध अपने आप ही मिल जाती है।

* २५ जाति काहिं—भीति=भित्ती, दीवार। स्नेह-सदन मे जात-पात की दीवारें नहीं होती। वहां तो सभी को समता रूपी छत की एक सी छाया मिलती है।

[व्याख्या—प्राय: घरो मे दीवारों से पृथक्-पृथक् किए हुए अनेक कमरे होत हैं। उनमे से कोई छोटे कोई बड़े होते हैं परन्तु प्रेम के भवन मे तो छत ही छत है, छोटे बड़े कमरे नहीं इसलिए उसकी छाया में रहने वालों में कमरो की छोटाई-बडाई के कारण होने वाला ऊँच-नीच का भाव भी उत्पन्न नहीं होता और वे सभी समान-भाव से रहते हैं। भाव यह है कि विशुद्ध प्रेम में जात-पात बाधक नहीं हो सकती।]

२६. जग पार—(हे मनुष्य) तेरी काया-रूपी नौका संसार-रूपी महानदी के मध्य में पड़ी हुई है। यदि तू मन-रूपी नाविक को वश में कर ले तो यह निसन्देह पार पहुँच सकती है।

२७ सिव जाल—शिवा जी तथा गांधी जी, ये दोनो ही भारत माता के वीर पुत्र हुए हैं। शिवा जी ने हिन्दुओ के दुःख नष्ट किये और गांधी जी ने जगत् की मानसिक आंखों के घने अन्धकार का नाश किया।

२८ दुष्ट अवतार—('औ' के स्थान पर 'कौ' कर ले।) दनुज =राक्षस। दुष्ट राक्षसों (मुगलो) के समूह को चीरने के लिए तेज तलवार को धारण करने वाली दुर्गावती, देश की शक्ति तथा देवी दुर्गा की साक्षात् मूर्ति थी।

पृष्ठ २३, दोहा २६. हरिजन. कबूल—हरिजन = भंगी आदि अछूत जातियाँ। भजन = भागना। जन = सेवक। कबूल = स्वीकार। यदि तुम हरिजनो से भागना चाहते हो तो परमात्मा का भजन निष्फल है, क्योंकि राजा लोग सेवकों द्वारा ही (दर्शनार्थियो) से मिलना स्वीकार करते हैं (सीधे नहीं)। (भाव यह है कि हरि भी इसी प्रकार हरिजनो द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं)।

३०. ग्राह...काज—ग्राह = मगर। गहत = गृहीत, पकडे हुए। गहत = सुनते ही। गरीब निवाज = दीनबन्धु, दरिद्र पोषक। मगरमच्छ से पकडे हुए हाथी की पुकार सुनते ही श्री कृष्ण अपने 'गरीब निवाज' नाम की लाज रखने के लिए (उसे छुडाने को) भाग पडे।

३१ कलिजुग .गात—पतित-पावन = पतितों को पवित्र करने वाले। मैंने यह अत्यन्त आश्चर्यजनक बात कलियुग मे ही देखी है कि जब पतितों द्वारा शरीर छुए जाने से पतित-पावन भगवान् स्वय पतित हो जाते हैं।

[व्याख्या—कट्टरपंथी यह मानते हैं कि यदि हरिजन मन्दिरों में भगवान् की मूर्ति के चरण छूएंगे तो भगवान् भ्रष्ट हो जायँगे। कवि कहता है, इससे बढ कर आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है कि पतितोद्धारक स्वयं ही पतित हो जायँ।]

३२. होत...सुवास—गुणी के पास रहने से गुणहीन भी गुणवान बन जाता है। जैसे, जल से भिगोई हुई खस की टट्टी लुओं को भी ठंडा, सुखदायक और सुगंधित बना देती है।

३३ बिना करवार—क्या ज्ञान के बिना अकेला कर्म मनुष्य को संसार से पार कर सकता है? क्या बिना धार की तलवार से काट हो सकती है? (कभी नहीं)

३४ अगम प्रकास—जैसे अथाह सागर मे सीपी के हृदय (मध्य) मे मोती रहता है, वैसे ही हे मन के स्वामी परमात्मन्, घने अज्ञान-रूपी अन्धकार से युक्त मेरे मन मे रह कर ज्ञान का प्रकाश कीजिए।

३५ सगत जाइ—साभर = एक झील। सब का स्वभाव सगति के अनुसार बन जाता है। जैसे सांभर नामक झील में जो पडता है, निमक बन जाता है।

३६. बसि ..मांहि—कुट=(१) वृक्ष (२) घर । द्वैक=दो एक। सुमन=(१) फूल (२) सज्जन। (श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग के कारण दोहे से दो अर्थ निकलते हैं। एक फूल की तरफ. दूसरा सज्जन की तरफ। दोनों क्रमशः नीचे दिए जाते हैं)। प्रथमार्थ—हे फूल, ऊँचे पेड पर रह कर मन ने इस प्रकार गर्व नहीं करना चाहिए। यह विकास एक-दो दिन ही ठहरेगा, फिर तू मिट्टी में मिल जायगा।

द्वितीयार्थ—हे सज्जन, ऊँचे भवन मे रह कर इस प्रकार मत इतराओ। यह उन्नति अचिरस्थायिनी है। फिर तेरी अवनति अवश्यभावी है।

*३७ जनम...हार—करियन-जुरि=कड़ियो से जुड़ी हुई। लरी=लडी। नियति=भाग्य। लसि रहि=शोभायमान हो रही। भाग्य-रूपी नदी जन्म-मरण की कडियों से-जुडी हुई अपार जीवन की लडी को कस कर शोभायमान हो रही है और रिझाने योग्य प्रभु को प्रसन्न कर रही है।

३८ पट . लाल—हे नंद के लाड़ले बेटे (श्री कृष्ण), तुम कमर में पीताबर, हाथ में बाँसुरी, छाती पर माला और सीस पर मुकुट धारण करके मंद-मद मुस्कराते हुए मेरे मन मे निवास करो।

३९ पुरखन .साह—पुरखन (पुरुषो)=पूर्वजो। निसेनी=सीढी। हे भामाशाह, तुमने देश-प्रेम के मार्ग पर अपने पूर्वजो का अपार धन दे दिया। तुम त्याग की सीढ़ी पर चढ़कर प्रत्येक मनुष्य के मन मे जा बसे। (भाव यह है कि अपने अपूर्व त्याग द्वारा तुम सर्व-प्रिय हो गए।)

[टिप्पणी - भामाशाह ने राणा प्रताप की आर्थिक आवश्यकता को देखते हुए लाखों की संपत्ति उनको भेंट कर दी थी।]

*४० करी प्रान—करी=की। करन=दानवीर कर्ण। अकरन=अकरणीय, अतिदुष्कर। करनि=काम। करि=करके। निज करनि=अपने हाथो से। कर्ण ने युद्ध के अवसर पर अपना जिरहबक्तर दान देकर अति दुष्कर काम कर दिखाया। उसने शत्रुओ के प्राणों को तो नहीं हरा, हां अपने हाथो से अपने ही प्राण दे दिए।

[टिप्पणी—दानवीर कर्ण किसी याचक के आगे 'न' न करते थे। उनके पास दिव्य मुकुट, कवच और कुडल थे जिनके रहते कोई उन्हे मार न सकता था। श्री कृष्ण इस बात को जानते थे। इसलिए उन्होंने इन्द्र को ब्राह्मण के वेष में भेज कर उक्त वस्तुएं मंगवा लीं। इस प्रकार

हो जाए। (भाव यह है कि यदि तुम खेती न करो तो सभी भूखे मर जाय)।

३६ कृषक वार—त्राता=रक्षक। किसान ही (सच्चा) सम्बन्धी है, किसान ही रक्षक, शान्त-स्वरूप मित्र तथा पालन-पोषणकर्ता है। उसे ही अन्नदाता पिता मान कर मैं अनेक वार नमस्कार करता हूँ।

४०. लज्जा...जात—गात=अंग। उमरि=आयु। अकारथ=व्यर्थ। (वेकार व्यक्ति के सम्बन्ध मे कवि कहता है)। वेकार व्यक्ति किसी काम के करने मे लज्जा तथा सङ्कोच नहीं करता, उसका शरीर भी पुरुषार्थ रहित नहीं रहना चाहता तो भी (सामाजिक परिस्थिति देखिये कि) उसे करने योग्य कोई काम ही नहीं मिलता और उसका जीवन व्यर्थ वीतता जाता है।

४१ कर्म...जहान—कर्म चतुष्टय=चार प्रकार क काम खेती, व्यापार, नौकरी तथा भीख। चक्रित=चकित। खेती, व्यापार, नौकरी तथा भीख—इन चारो कामों में से सब से श्रेष्ठ तथा गौरवयुक्त खेती को कहा गया है, यह बात देखकर ससार आश्चर्य म पड गया।

[टिप्पणी—कृषि की सर्व-श्रेष्ठता क सम्बन्ध मे लोकोक्ति भी है—उत्तम खेती, मध्यम वान, नीच चाकरी, भीख निदान।

४२ जिन ककाल- विभव=ऐश्वर्य। जिन दिनो मे किसान अपूर्व वैभव से युक्त थे वे सुन्दर दिन, वह सुन्दर समय बीत गया। अब तो किसान मरघट के जीते हुए हड्डियो के ढाचे-मात्र रह गए हैं। (भाव यह है कि किसान भूख से सूख कर पिंजर-मात्र रह गए हैं)।

❀ पृष्ठ ३०, दोहा ४३ याहू हाय—हाय. क्या कहीं ब्रह्माण्ड में इससे भी बडा अन्याय होगा कि जो अनाज को उत्पन्न करे वही अनाज को न पाने से भूखो मरे !

४४ दिग् उपास—दिग् परिधान=दिशाए ही वस्त्र हैं अर्थात नग्न शरीर। आन=शोभा। पर्ण-निकेत=पत्तों का घर। उपास=उपवास। वे (किसान) नंगे रहते हैं, उनके शरीर शोभा हीन है, वे पर्ण-कुटियो मे बसते हैं और सदा फाके करते हैं, प्रतीत होता है किसान योगी बन गए हैं। (योगियों की दशा भी ऐसी ही होती है)।

४५. पर .संतान—दूसरों के नीचे रहकर दूसरों के सेवक बनकर

हम कितने अपमान सहते हैं, तो भी हम (बड़े गौरव के साथ) कहते हैं—ओह, हम ऋषियों की सतान हैं।

४६. भूखन प्रान—भूखन-भार = भूख का भार। कृशित = क्षीण-काय, दुर्बल। जिन बेचारो के प्राण अब गले मे आ पहुंचे हैं, वे सूखे हुए शरीरों वाले किसान भूख के बोझ कैसे सह सकेंगे।

४७. होहिं.. दास—कृपायतन = दयानिधान। चाहे संसार मे (हमे) घोर दुःख मिले, चाहे (मरने के बाद) नरक ही मे डालिए, परन्तु हे दया के भडार, हमे कभी दूसरों के अधीन तथा दूसरों के दास न बनाइए।

४८ वहु . ढार—बटाढार = विनाश। एक अकेली दासता अनेक गुणों, विज्ञानो, संपत्तियों तथा आध्यात्मिक विचारों को नष्ट कर देती है।

४६ एकन हाय—धाय = धात्री, दूध पिलाने वाली। कैसे दुःख की बात है कि कइयो (अर्थात् धनियों के) पुत्रो को तो अनेको धाइयां नित्य दूध पिलाती हैं और कइयो (अर्थात् निर्धनों के) पुत्र दूध के बिना सदा सूखते जाते हैं।

५०. हल दड—हल करै = उत्तर निकाले। बरिवंड = विकट, कठिन। जो हल के द्वारा पेट के विकट प्रश्नों का उत्तर दे देता है (अर्थात हल चला, अन्न उपजा, भूख निवारण करता है) उस किसान की बाहो पर मै योद्धाओ के बलशाली बाहुओ को निछावर कर देता हू। (भाव यह है कि यदि किसान हल द्वारा अन्न उत्पन्न न करे तो योद्धाओं की बाहे बलहीन हो जाए)।

५१ होत तुषार—अवर्षा = अनावृष्टि, मेह का बिलकुल ना बरसना। (बेचारे किसानो को विधाता से) कभी अनावृष्टि की, तो कभी अतिवृष्टि की, मार पड़ जाती है और कभी उनके हरे-भरे खेतो को पाला नष्ट कर देता है। (भाव यह है कि आगे ही वे पर्याप्त दुखी हैं उसपर भी ये दैवी विपत्तियाँ और कुचल डालती हैं)।

५२. एकन.. रिरिआहीं—कइयों के तो कुत्ते भी प्रतिदिन दूध और जलेबिया खाते हैं और कइयो के पुत्र भी अनाज न होने के कारण 'हा रोटी, हा रोटी' चिल्लाते रहते हैं।

५३. नहिं . भूक—कहीं पपीहे की 'पिउ, पिउ' की रट नहीं सुनाई देती, कहीं कोयल की 'कू-कू' की ध्वनि कानो मे नहीं पड़ती। चारों तरफ़

'हाय भूख, हाय भोजन' का हाहाकार मचा हुआ है ।

५४ कृषक...परिधान—वधूटिन = स्त्रियां। किसानों की उन पत्नियो की दशा का वर्णन कौन कर सकता है जिन्हे लाज ढांपने के लिए भी वस्त्र नहीं मिलता।

५५. नहिं त्रान—सुपास = सुख, आराम। त्रास = भय। त्रान = रक्षा। जिन के पास सुख-सामाग्री, अच्छा' निवास-स्थान तथा भोजन और वस्त्र तक भी नहीं, उन किसानो की व्यर्थ आशाओं को देख कर मानो भय भी रक्षा की प्रार्थना करता हैं। (भाव यह है कि किसानो की दशा इतनी भयंकर है कि उसे देख कर डर भी डर जाता है।)

५६ करत श्रमकार—कलित = सुंदर। 'सुधी = चतुर। वे चतुर मज़दूर धन्य हैं जो सदा अपने परिश्रम और शक्ति के द्वारा सुन्दर कलाओ की उन्नति करके जगत् मे अनेक भले भाव भरते हैं।

पृष्ठ ३१, दोहा ५७. रहें हीन—चिरतन लौं = चिरकाल तक। (ये किसान तथा मज़दूर) चिरकाल तक क्यो पराश्रित, दरिद्र और दास न बने रहे। इन मे से एक (अर्थात् मज़दूर) तो व्यवसाय-रहित हैं अर्थात् इन्हे करने योग्य काम नहीं मिलता और दूसरे (अर्थात् किसान) कृषि को उन्नत करने के साधनो से ही रहित हैं।

५८. कहा .कान—श्रमिक = मजदूर। संसार मे दया, धर्म, दीन, ईमान कहां रह गया है ? मज़दूर तो सदा कष्ट सहते रहते हैं और कोई उन की पुकार सुनता ही नहीं। (यदि धर्म-ईमान होता तो सहानुभूति यों लुप्त न होती)।

५६ टेढि लात—असाँचि = झूठी। यह कहावत झूठी नहीं है कि सब को टेढे (चतुर चालाक) मनुष्यो से ही डर लगता है, सीधे-सादों से नही। हम सीधे अर्थात् भोले बन गए, इसीलिए हम दिन-रात गालियां और लातें खाते रहते हैं।

६० काहि समान—हे ब्राह्मण देवता, यह व्रतों और उपवासों के उपदेश किन्हें देते हो ? हमारे लिए तो मास के तीसों दिन ही एकादशी के तुल्य हैं। (भाव यह है कि हमे तो सारा मास ही भूखे रहना पडता है)।

[टिप्पणी—हिन्दू लोग एकादशी के दिन अनाहार व्रत रखा करते

हैं। इसीलिए यह भाव दिया गया है ।]

६१. सब. .आन—अनल=आग। होमत=हवन करते हैं। मज़-दूर तथा किसान लोग यह सबसे बड़ा यज्ञ करते हैं जो भूख-रूपी अग्नि मे प्रतिदिन अपने प्राणो की हवि डालते रहते हैं।

६२. एक...पुकार—कुछ एक की तो बस अपनी ही जान है, उस पर भी हजारो-लाखो रुपए भूमि आदि मे दबाए बैठे हैं। और कुछ एक ऐसे हैं जिनके पारिवारिक जन अनाज के लिए चिल्लाते हुये इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं ।

६३. एक ..कोय—मन्दागि (मन्दाग्नि)=अपच, अजीर्ण, बद्-हज़मी। जड=तीव्र, विकट। एक मन्द-भाग्य मनुष्य तो अत्यधिक अजीर्ण से रोता हुआ मरता है (क्योकि उसे खाया हुआ पचता ही नही), और एक (दरिद्री को) भूख की तीव्र ज्वाला को शान्त करने की कोई दवाई नहीं मिलती अर्थात् खाने को अन्न नहीं मिलता।

६४ करि . टपकाय—प्रासाद=महल। विद्युद्दीप=बिजली के लैंप। छानी=छप्पर। एक तो महल मे रहकर बिजली क लैंप जलाते हैं और दूसरों के छप्पर (मेंह बरसने पर) अत्यधिक टपकने लगते हैं ।

६५ इक ..नाहिं - एक तो पान और सिगार मे नित्य बहुत सा धन नष्ट कर देते हैं और दूसरे कठिन परिश्रम करने पर भी रोटी-मात्र भी नहीं प्राप्त करते।

६६. बाल प्रान—अंक=गोद। झकै=कुढ़ता है। सातक=सात एक। उधर तो धनी अपनी गोद शिशु-रहित देखकर खीझता कुढ़ता है और इधर निर्धनो के छ-छ: सात-सात बच्चे अन्न के बिना प्राण त्याग देते हैं ।

६७ इक देत—एक तो मनोविनोद के लिए शतरज आदि खेलने मे मग्न रहता है और दूसरे को विकट परिश्रम तनिक भी विश्राम नहीं लेने देता।

६८ फिरत अछूत—अकूत=अपार, अत्यधिक। एक तो अति अधिक कुकर्मों को करते हुए भी निर्भयतापूर्वक दनदनाते फिरते हैं और दूसरे सदा सेवा करते हुए भी अछूत समझे जाते हैं।

६९. इक ..एक—उघारी=नंगी। एक तो नई नई साड़ियां ट्रंको

में भर-भर कर रखती जाती हैं और दूसरी सदा नंगी घूमती हैं, एक भी वस्त्र नहीं ले सकतीं।

७०. एकहिं .दीन—वारि=पानी। कुछ एक को तो प्रतिदिन साबुन की नई टिकिया और क्रीम की नई शीशी चाहिये और कुछ एक निर्धनो को शरीर धोने को पानी भी नहीं मिलना।

पृष्ठ ३२, दोहा ७१. एकन .भेंट—वसाधिक्य=वसा (चरबी) की बहुतायत। क्षयादिक=तपेदिक आदि। कुछ एक का पेट तो चरबी बढ जाने से भारी हो गया है अर्थात् तोंदे निकल आई हैं और कुछ एक पुष्टि-दायक भोजन न मिलने से क्षय आदि रोगो का शिकार बन जाते हैं।

७२. पढत एक—शुल्क=फ़ीस। कइयो के पुत्र तो बहुत यत्न करने पर भी नही पढते और कइयों के भाग्य-हीन पुत्र फ़ीस न दे सकने के कारण मूर्ख ही बने रहते हैं।

७३. होत...अकाल—पुष्टई=पौष्टिक पदार्थ, रसायन, टानिक। चिकित्सा-हीन=इलाज के बिना। एक तो प्रतिवर्ष (जाड़े में) पौष्टिक पदार्थों के प्रयोग से खूब हट्टे-कट्टे बनते जाते है और एक रोग के कारण असमय में ही मर जाते हैं।

७४ वायू अनन्द—एक तो हवाई तथा सामुद्रिक जहाजों आदि पर स्वेच्छापूर्वक घूमते हैं और एक निश्चिन्तता-पूर्वक छकडों की सवारी का भी आनन्द नहीं ले सकते।

७५ करहिं पाय—सुचिक्कन=चिकना। नेह=तेल। एक तो तेल फुलेल लगा कर केशों को अति चिकने करती हैं और एक जरा तेल न मिलने के कारण एक ही चोटी कर लेती हैं अर्थात् जैसे तैसे बालों को समेट लेती हैं।

७६. अर्थकरी ग्राम—बागहिं=डोलते फिरते हैं। एक तो धन दायिनी विद्या (अंग्रेजी आदि) पढ कर अपने सब काम सिद्ध कर लेते हैं और दूसरे एक पत्र पढ़ाने के लिये ही अनेक गांवो में डोलते फिरते हैं।

दिनेश

आपका पूरा नाम श्री तुलसी राम जी दिनेश है। मासिक पत्र 'कल्याण' में आपकी हृदय स्पर्शी कविताएं और शिक्षाप्रद लेख निकला करते हैं। आपने निम्नलिखित पुस्तकें रची हैं—भक्त भारती, मतवाली मीरा, श्याम सतसई। प्रस्तुत दोहे श्याम सतसई से लिये गये हैं। जिनसे आपके भक्तिपूर्ण हृदय का परिचय मिलता है।

पृष्ठ ३८, दोहा १ भाषे.. गान—हे भाषा, हे कविता, हे कल्पना, ध्यानपूर्वक सुनो। तुम श्री कृष्णचन्द्र के गुणों को एक-स्वर से अर्थात् मिलकर गाओ।

*२. मिलो...संसार—तुम तीनों, अर्थात् भाषा, कविता तथा कल्पना, त्रिवेणी के तुल्य मिलकर वापस हरिद्वार अर्थात् श्री कृष्ण के चरणों मे चलो। तुम मेरे चित्त-रूपी जगत् को भी साथ ही बहा लेती चलो अर्थात् भगवान् के चरणों मे पहुँचा दो।

३ चन्द्र श्याम—यह चाद नहीं है अपितु श्री राधाजी का स्वभावत सुन्दर और आनन्ददायक मुख है। और (इस के मध्य मे) यह काला धब्बा नहीं है अपितु राधाजी की दृष्टि में झूमते हुए सांवरिया (श्री कृष्ण) ही है।

४. मुझ गोपाल—यदि मुझ से पूछो कि नेत्र किसके बडे हैं तो मैं यही उत्तर दूँगा कि राधा जी के नयन सब से बडे हैं जिन मे (सबसे बड़े) श्री कृष्ण विराजमान हैं।

५ माधव नाथ—यद्यपि श्रीकृष्ण के (विशाल) हृदय मे दरिद्र और निराश्रय जन रहते हैं तो भी राधा जी के हृदय (की विशालता) को देखिए कि उस मे दीनानाथ (निर्धनों के आश्रयदाता श्री कृष्ण) स्वयं रहते हैं। (भाव यह है कि राधा जी का हृदय श्री कृष्ण के हृदय से भी अधिक विशाल है)।

*६. पडा अमरत्व—अमरत्व = देवत्व। उपनिषदों का सार तथा ब्रह्माड का साकार देवत्व नन्द के घर मे पगूडे मे पडा रो रहा है। (भाव यह है कि समस्त उपनिषदें जिसके स्वरूप का प्रतिपादन करती हैं और अखिल ब्रह्मांड जिस निराकार देव का साकार रूप है, वही शुद्ध चेतन

करोगे, तभी मैं तुम्हें वली समझूँगा अन्यथा नहीं।

[टिप्पणी—यमुनावर्ती कालिया नामक महाविषधारी नाग को श्री कृष्ण ने वश मे किया था। उसी के साथ पापी मन को उपमा दी है।]

१६ जिस .जागीर—हे यदुवंश के वीर (श्रीकृष्ण), जिस पर तुम मुग्ध हो जाते हो उसे रोने, धोने, सिसकने और आहों की जागीर के सिवा और क्या देते हो ? (भाव यह है कि तुम से प्रेम करना हर घडी कलपना है, तुम झटपट मिल कर हृदय की व्यथा शान्त करदो तब तो बात भी है।)

२० जिस जंजीर—सारादिक=काम, क्रोधादि। हे यदुवीर, जिस पर तुम क्रुद्ध होते हो उस से यह व्यवहार करते हो कि उसे सोने की जंजीरो से बाध कर कामादि से पीटते हो। (भाव यह है कि तुम्हारे अप्रसन्न होने पर मनुष्य माया की जजीरो मे वध कर काम क्रोधादि के वश मे हो कर नष्ट हो जाता है।)

२१ पात वाट—वाट=रास्ता। पत्ते पत्ते की रचना करने वाले, हे सब से प्यारे राजेश्वर, मैं पापी आपके कृपा-कटाक्ष की प्रतीक्षा मे सामने खड़ा हूँ।

२२. मुझ ..परमानन्द—हे मन मोहन, जब तुम मुझे ठुकरा देते हो अर्थात् मेरी उपेक्षा कर देते हो तब मुझको तुम से भी अधिक आनन्द प्राप्त होता है। तुम्हारी ठोकर मे भी कोई अद्वितीय आनन्द भरा हुआ है।

[टिप्पणी—यही प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है। प्रेम-पात्र का क्रोध भी प्रेमी को प्यारा और आनन्द-दायक प्रतीत हो रहा है।]

२३ खाजूँ चोर—ठोर=जगह। हे अत्यत सियाने, चित्त को चुराने वाले, तू तो मेरे रोंए-रोए मे समाया हुआ है। फिर बता, इस देह में तुझे किस स्थान पर ढूँढूँ।

२४ तू लीन—(हे भगवान), तू तीनो गुणों (सत्व, रज, तम) से परे है और मैं सब प्रकार के गुणों से रहित हूं। सो हम दोनों ही गुण रहित हैं (और इस लिए तुल्य हैं)। फिर भी मैं तुम मे एक-रूप क्यो न हो सका ? (क्यों कि तुल्य पदार्थ तो एक-रूप हो जाते हैं, दूध मे दूध और पानी मे पानी मिल जाता है)।

२५ इस...पार—जो इस (संसार-रूपी) समुद्र मे डूबता है वह

बीच मे ही रह जाता है, अर्थात् आवागमन के चक्कर में घूमता रहता है। जो उस-प्रभु-प्रेम-रूपी सागर में डूबता है, वह पार पहुँच जाता है, अर्थात् मुक्ति पा लेता है।

२६ तन खेल—वृत्तिका (वर्तिका) = बत्ती। (मानव जीवन का सुन्दर रूपक द्वारा वर्णन किया गया है)। यह काया दिए के समान है, बुद्धि बत्ती के सदृश है और सदा चलने वाले प्राण तेल के तुल्य हैं। इस के अन्दर आत्मा-रूपी ज्योति जल रही है, यह सब उसी का खेल है। (भाव यह है कि जैसे दिए बत्ती और तेल के होते हुए भी उसे दियासलाई न दिखाई जायगी तब तक वह न जलेगा, वैसे ही शरीर, बुद्धि और प्राणों के रहते हुए भी आत्मा के अभाव में जीवन नही ठहर सकता। वह आत्मा ही जीवन के खेल को खेलने वाला है)।

२७. चित्रकार चित्र—इस संसार रूपी चित्र का चितेरा इतना आश्चर्य-मय है कि वह इस चित्र को खींचते-खीचते स्वय ही चित्र बन जाता है। (भाव यह है कि यह जगत् ब्रह्म की मूर्ति ही है)।

२८. तुम्ह ..सद्म—सरवर = तालाब। पद्म = कमल। सद्म = घर, भवन। हे परमात्मन्, तू तालाब के तुल्य है। चित्त रूपी अनेक कमल तुम्ह में ही खिले हुए हैं। सब का निवास-स्थान तू ही है और सब ही तेरे निवास स्थान हैं।

पृष्ठ ३६, दोहा २६. सत्ता तमाम—अखिलेश = सब का स्वामी। सब के स्वामी परमात्मा की शक्ति से ही प्रकृति काम कर रही है। जैसे मशीन बिजली की शक्ति से ही सारे काम करती है।

३० जल ..प्यार—उपल = ओले। हे बादल, पानी चाहे न बरसाओ, दो-चार ओले तो बरसा दे। अरे, उन मे भी तेरे प्यार का कुछ अश तो आ ही जायगा। (भाव यह है कि प्रीतम के क्रोध मे भी प्रेमियो को कुछ-न-कुछ आनन्द ही आता है)।

३१. कुतब...ओर—कुतुबनुमा = दिग्दर्शक यंत्र, कंपास। कुतुब = ध्रुव तारा। मन-रूपी दिग्दर्शक यंत्र की सुई अत्यन्त चंचल है। पर अन्ततः वह श्री कृष्ण-रूपी ध्रुव तारे की तरफ ही आ कर टिकती है। (भाव यह है कि स्वभावतः चंचल मन को श्रीकृष्ण के सिवा और कहीं शान्ति नहीं मिलती)।

दोनों निचान की ओर जाते हैं। अर्थात् जल निम्न भूमि की ओर और भगवान् नम्रता-युक्त व्यक्ति की ओर। इसलिए सब से उत्तम उपाय यही है कि नम्र होकर प्रभु-प्राप्ति करनी चाहिए।

४८. रे .कोप—गुनता है=विचारता है। हे मन, तू संसार के गुण-दोषो की आलोचना क्यो करता रहता है ? तू स्वयं त्रुटियों का भडार है, फिर तू संसार को क्यों कोसता रहता है ?

४६ अग्नि .धर्म—दहन=जलाना। जैसे जलाना आग का धर्म है और ठडक पहुँचाना पानी का। वैसे ही परोपकार के लिए जीना या मरना मनुष्य का पवित्र धर्म है।

५०. ढाई .दूर—अरे मनुष्य, तू अत्यल्प काल तक परमात्मा का भजन करके अपने आप को भारी भक्त समझ बैठा है। तुझे अभी यह ज्ञात नहीं है कि दिल्ली अभी वहुत दूर है अर्थात् प्रभु-प्राप्ति के लिए अभी पर्याप्त प्रयत्न करना होगा।

५१. जल . रेत—उपरी=वंजर भूमि की। वे संपदा तथा मकान जल जाये जो परोपकार के काम नहीं आते। उस सपत्ति से तो वंजर भूमि की रेत कही अच्छी होती है।

५२ दुखिया आप—(हे मनुष्य) दुखियों के आसू तभी तुम्हारे पापों का नाश करेंगे जब तुम अपनी आखो में आंसू भर कर उनके आँसुओ का पोछोगे। (भाव यह है कि निज-पाप-नाश का साधन पर-दु.ख निवारण ही हे)।

५३. जिस अताप—पूत=पवित्र। अकूत=अत्यंत। अताप=क्लेश-रहित। जिस मनुष्य का मन पक्षपात-रूपी पाप से रहित है, वही भगवान् का अत्यन्त पवित्र क्लेशरहित तथा प्यारा दूत है।

५४. अन्य लोग—शेष सव व्याधियां तो साधारण हैं किन्तु अभिमान-रूपी व्याधि सब से भयावनी है। इस रोग से पीडित व्यक्ति की ससार हसी उडाता है और यह रोग रोगी को रुलाता हुआ साथ जाता है अर्थात मरणासन्न मनुष्य अपने दर्प पर वहुत पश्चात्ताप करता है।

५५ जिसने...अपमान—जिसने आये हुये पाहुने का स्वागत-सत्कार नहीं किया, वस यही समझिए कि उसने भगवान का भारी निरादर किया।

५६. निन्दक रंग—निन्दक व्यक्ति आइने के समान होता है।

वह हमारे दोष-रूपी रंग को साफ-साफ मुँह पर कह देता है। इसलिए उसे (आत्म सुधार की इच्छा से) प्रतिक्षण अपने साथ ही रखना चाहिए।

पृष्ठ ३८, दोहा ५७. अजो विधान—माधव-रचित निदान=आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान श्री माधव द्वारा रचा हुआ निदान (रोग की पहिचान) का विख्यात ग्रंथ। हे वैद्य महाशय, तुमने 'माधव निदान नामक तो पढ़ा ग्रंथ हुआ है (परन्तु यह तो बताइये कि) जहां माधव (श्री कृष्ण) स्वयं ही रोग हो अर्थात् उनका प्रेम ही पीड़ा का कारण हो, वहां उनका उपाय क्या होगा।

५८ अजर विधान—अक्षर-दर्शन=अविनाशी परमात्मा का दर्शन। उपनयन-विधान=यज्ञोपवीत संस्कार की विधि। अक्षर=अ, आ आदि वर्ण। उपनयन उपनेत्र, ऐनक। प्राचीन काल मे उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) अविनाशी ब्रह्म के दर्शनार्थ किया जाता था। परंतु अब उपनयन लेकर (ऐनकों को पहन कर) अक्षर (अ आ इ इत्यादि) पढते हैं।

५६. समाचार भक्त—समाचार-रत=खबरे जानने में मग्न। जन-रक्त=लोक-सेवा में लीन। भाव=(१)निर्ख, दर, (२) स्थायी, सचारी आदि भाव, (३) प्रेम, श्रद्धा, भक्ति आदि। खबरे जानने में मग्न व्यापारी निर्ख या दर पर, मननशील कवि रसों के स्थायी तथा सचारी आदि भावो पर तथा लोक-सेवा मे लीन भक्त लोग प्रेम सेवा-आदि के भावों पर मरते-जीते हैं। (भाव यह कि इन तीनो वर्गों का उत्कर्षापकर्ष भाव पर ही अवलम्बित है)।

६० इस तमाम—इस वैज्ञानिक-रूपी भरत ने (श्री राम के अनुज) भरत-सा काम कर दिखाया है। इसने सम्पूर्ण भारत मे जड को चेतन के समान तथा चेतन को जड के समान बना डाला है।

[व्याख्या—इस दोहे की रचना तुलसीदास जी के निम्नलिखित दोहे के आधार पर की गई है.—

जो न जनम होत भरत को। अचर सचर, चर अचर, करत को॥

तात्पर्य यह है कि जैसे भरत ने अपने दिव्य चरित्र से जड को चेतन सा तथा चेतन को जड़-सा बना डाला था, वैसे ही वैज्ञानिकों ने रेल आदि अचेतन वस्तुओं को चेतन-सा, तथा चेतन मनुष्य आदियों को जड़

त्यों ही वह प्यारे श्री कृष्ण में जा मिली।

७३. ढाई—कबीर—टेक-वीर=प्रण का पक्का। ढाई अक्षर=‘प्रेम’ के ढाई अक्षर। छन्दःशास्त्र की दृष्टि से ‘प्रेम’ में ढाई अक्षर कहे जा सकते हैं, क्योंकि प् स्वर रहित होने से आधा तथा ‘रे’ और ‘म’ सस्वर होने से पूरे-पूरे अक्षर गिने जायँगे।

कबीर साहब ही अभी ऐसे उत्तम कवि हुए हैं जिन्होंने प्रेम के ढाई अक्षर पढे थे, जो सागर के समान गभीर, प्रतिज्ञा-पालकों में अद्वितीय तथा निर्मल बुद्धि से युक्त थे।

[टिप्पणी—कबीर साहब पठित न थे। उन्हें ज्ञान की प्राप्ति सत-सगति तथा आत्मा की निर्मलता से ही हुई थी। उनकी दृष्टि में ‘प्रेम’ का पाठ ही सर्वोत्तम तथा पांडित्य के लिए अनिवार्य था। उन्होंने स्वयं कहा भी था:—

पोथी पढ पढ जग मुआ, पडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम के, पढ़ै तो पंडित होय॥

इसी दोहे के आधार पर दिनेश जी ने अपना दोहा लिखा है।]

७४. जगत . चैतन्य—अत्यन्त माननीय चैतन्य महाप्रभु प्रेम के अवतार थे। उन्हों ने ससार की सुधि से रहित अपने मन द्वारा ससार के लोगों को चेतन कर दिया अर्थात् जनता को आध्यात्मिक मार्ग पर डाल दिया।

७५ शोभित...हाथ—(गौतम बुद्ध की शात-मुद्रा की मूर्ति देखकर कवि कहता है—) हाथ पर हाथ रखे हुये गौतम बुद्ध ऐसे विराज रहे हैं, मानो अपने सब कर्तव्यों को समाप्त करके अब निश्चिंत हो गए हों।

७६. सहज...पूर्ति—प० मदन मोहन जी मालवीय सहज सत्वगुण, शान्ति तथा श्रद्धा की सुंदर प्रतिमा हैं। ऐसे प्रतीत होता है मानो पूर्ण मनुष्यता ने मालवीय जी का रूप धारण किया हुआ है।

७७ सेवा मतिमान—यति=जितेन्द्रिय। सेवा-रूप महाव्रत को धारण करने वाले, सत्यस्वभाव, धैर्यशाली, आत्म-धन के धनी, बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय महात्मा गान्धी धन्य हैं।

७८ खींचा ..स्तूप—स्तूप=स्तभ। हे सरस्वती के तिलक, बाल-गंगाधर तिलक, तुमने (गीता रहस्य लिखकर) भगवद्गीता के मस्तक

पर अनुपम सुन्दर तिलक लगा दिया । तुम स्वराज्य के स्तभ हो। तुम्हारा जन्म धन्य है।

७६. कविता...चिरकाल । कविता काँसे के थाल के समान होनी चाहिए। जैसे ज़रा सी चोट से काँसे का थाल मधुर और चिरस्थायी गूँज उत्पन्न करता है वैसे ही कविता भी पढ़ने में मधुर तथा स्थायी प्रभाव से युक्त होनी चाहिए। -

८०. उत्तम अनुकार। अनुकार=नक़ल । उत्तम लेखक ग्रंथ में अपनी आत्मा का विकास कर देता है, अर्थात् मौलिक भावों का उल्लेख करता है । मध्यम लेखक के ग्रथ मे भाव तो मौलिक नहीं होते तो भी उन का ग्रंथन भली भाँति किया हुआ होता है। सब से छोटे दर्जे का लेखक निरी नक़ल करता है, अर्थात् न उसके भाव ही अपने होते हैं और न ही शैली।

८१ समझा .काम। चाहे हल जोतने का काम हीन समझा जाने लगा है तो भी सारी कठिनाइयों का समाधान करने वाला यह तथा-कथित हल का काम ही है।

८२ हल.. व्यापार। यदि हल चलना बंद हो जाय तो जगत् मे हलचल मच जाय। धनिकों की अट्टालिकाएं हल अर्थात् कृषि के आधार पर खड़ी हैं। खेती के बिना वाणिज्य भी नष्ट हो जायगा।

८३. पर धाम। हे तोते, तू ने दूसरों की बोली की नकल करने का फल देख लिया है न ? तेरी वह स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और तुझे पिंजरे में रहना पड़ा।

८४ जाय...प्रणाम। ललाम=सुंदर, श्रेष्ठ। हे भारत-माता, तुमने तुलसीदास तथा सूरदास जैसे दो श्रेष्ठ भक्तों को जन्म देकर हिन्दी को दो सुंदर आँखें दे दी हैं। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

पृष्ठ ४०, दोहा ८५। भव.. प्रणाम। दूषणाहरण—(१) पाप-मोचक (२) दूषण राक्षस को मारने वाला।

हे भारत-माता, जगत् के अलंकार-भूत, पाप नाशक (तथा दूषण राक्षस के घातक) तथा नर-श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र तेरी ही गोद में खेले। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

८६. सत्य .प्रणाम। सत्यसंध=दृढ़प्रतिज्ञ, बात का धनी है।

भारत-माता, वह बात का धनी, परम दानी तथा स्वार्थ-हीन राजा हरिश्चन्द्र भी तुम्हारा ही पुत्र था। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

८७. उपजा...प्रणाम। कुक्षि=गर्भ। हे भारत-माता, संसार भर को शांति देने वाला, गीता-रूपी गीत को गाने वाला, अमर तथा श्रेष्ठ श्रीकृष्ण तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

८८ भीम प्रणाम। हे भारत-माता, तुम युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन को उत्पन्न करने वाली हो। तुम सुखो का भंडार हो। तुम्हारी चरण-धूलि परम पवित्र है। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

८९ गोतम प्रणाम। हे भारत-माता, गोतम, व्यास तथा कणाद ने यहीं पर निरन्तर उन दर्शन-शास्त्रो की रचना की जो संसार के सुंदर आदर्श हैं। तुम्हें हमारा नमस्कार हो।

९० प्रण प्रणाम। धी धाम=बुद्धि के भंडार। पय=दूध। हे भारत-माता, भक्त प्रह्लाद जैसे प्रतिज्ञा के धनी तथा ध्रुवभक्त जैसे अटल निश्चय वालो ने तेरा दूध पिया है। तुम्हे हमारा नमस्कार हो।

९१. महावीर...प्रणाम—अजिर=आंगन। महावीर=जैन धर्म के प्रवर्तक। हे भारत-माता, महावीर और बुद्ध सरीखे आत्म-ज्ञानी तथा निस्पृह व्यक्ति तेरे ही आगन मे खेले थे। तुम्हे हमारा नमस्कार हो।

कुछ अन्य कवियों के दोहे

प्रताप नारायण मिश्र (सं० १९१३—१९५१)

इन के पिता का नाम पंडित संकटाप्रसाद ज्योतिषी था। वे बैजे गाँव (जि० उन्नाव) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। मिश्र जी ने स्कूल तक शिक्षा पाई परन्तु बाद मे अपने परिश्रम से उर्दू, फारसी तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। ये कानपुर मे रहा करते थे और 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला करते थे। यह पत्र लगभग १० वर्ष चलता रहा और मिश्र जी उस मे हास्य तथा व्यंग के शिक्षाप्रद लेख लिखा करते थे। ये पूरे मसखरे और दिल्लगीबाज थे। वे हिन्दी, हिन्दू, हिंदुस्थान के परम भक्त, सुकवि और लेखक थे। इन्होंने २० पुस्तकें लिखीं और १२ का अनुवाद किया। इनके मौलिक कुछ ग्रंथ ये हैं—कलि-कौतुक रूपक, कलिप्रभाव नाटक, गोसंकट नाटक, मन की लहर, इ०।

इनकी अधिकतर कविता ब्रजभाषा मे है परन्तु कुछ खड़ी बोली में भी है।

पृष्ठ ४०, दोहा १ चार देव। ब्राह्मण=एक समाचर पत्र का नाम जिसके संपादक प्रताप नारायण मिश्र थे। चार मास बीत चुके हैं, अब तो 'ब्राह्मण' की ओर ध्यान दीजिए। गंगा माता तुम्हें विजयी बनाएं, हमें दक्षिणा (चंदा) भेज दीजिए।

[टिप्पनी —जब ग्राहक लोग चदा भेजने में विलंब किया करते थे तब विनोदप्रिय प्रताप नारायण इसी प्रकार दोहों से चदा देने की प्रेरणा किया करते थे।]

२. जो सौगंद—सौगद=शपथ, कसम। यदि आप बिन माँगे (चंदा) दे दें तो दोनों ओर आनन्द हो जायगा। उधर आप चिन्ता-हीन हो जायँगे, इधर हम शपथ ले लेगे कि हम नहीं माँगेंगे।

३ तुर्त जजमान—हे यजमान. यदि आप दान (चदा) देने में विलंब न करेंगे तो आप का बडा भारी कल्याण होगा। मुझे अधिक बुलवाने से आपको क्या लाभ पहुँचेगा। इसलिए, (संकेतमात्र से ही) समझ जाइए।

४. रूप जजमान—रूप-राज=रुप्पे का बना राजा, अर्थात् रुपया। कगर=किनारा। हे यजमान, जितने चिह्न रुपये के किनारे पर होते हैं उतने ही वर्ष सुखी तथा यशस्वी हो कर जीते रहो।

सुधाकर द्विवेदी

(सं० १६१७—१६६७)

महामहोपाध्याय जी प० कृपालदत्त के पुत्र थे। इनकी स्मृति अद्भुत थी। एक ही बार पढने से पद्य कंठस्थ कर लेते थे। ये गणित के प्रौढ विद्वान् थे और बनारस के सस्कृत कालिज मे गणित तथा ज्योतिष के प्रोफ़ेसर थे। ये भारतेन्दु के मित्र थे। और इन्होंने हिन्दी में १७ पुस्तकें रचीं। ये रहन-सहन में बड़े सीधे-सादे थे और अनेक वर्षों तक नागरी प्रचारणी सभा के प्रधान रहे। योरोप तक इनकी कीर्ति फैली हुई थी।

ये सरल ब्रजभाषा मे कविता किया करते थे तथा सस्कृत मे भी इनकी प्रायः कविता भक्ति, नीति आदि के विषय मे हैं।

पृष्ठ ४०, दोहा १ राजा...तीन—जामत ही=जन्म लेते ही। राजा तो सुख देना चाहता है परन्तु प्रजा-जन मूर्ख हैं। वे जन्म लेते ही (राजा बलि के समान समस्त) पृथिवी को तीन पगों में ले लेना चाहते हैं। (भाव यह है कि प्रजा-जन मूर्खता के कारण समस्त अधिकार एक ही बार हस्तगत करना चाहते हैं।)

पृष्ठ ४१, दोहा २. बाप जोर—मत=पथ, रीति। गारत किये= नष्ट किये। मतवाले=पथानुयायी। पिता (पूर्वजों) ने एक पथ चलाया तो पुत्रों ने हजारों-करोडों पथ चला दिए। इन प्रबल पथानुयायियों ने भारतवर्ष को तहस-नहस कर डाला। (भाव यह है कि भारतीयों ने सनातन वैदिक धर्म त्याग कर नए-नए पंथ चलाए और उस से विविध कष्ट उठाए)।

३ मत ..करतार—मत=सम्प्रदाय। हरि=सिंह। करि=हाथी। घोर=घोड़ा। साम्प्रदायिक झगडों में मत फँसो। इन में जरा भी तत्व नहीं है। मनुष्य, सिंह, हाथी, गधा तथा सुन्दर घोडा—सभी को भगवान ने बनाया है।

४ सब विवेक—विधिना=विधाता। इस संसार में सभी प्राणियों को एक ही प्रभु ने बनाया है। सभी गुणों तथा दोषों से युक्त हैं। इन में बडे-छोटे का भेद करना उचित नहीं है।

५ काज लोट—भँजावते=तुडवाते हैं। लोट=करंसी नोट। जिन से काम पडे वे सब बड़े होते हैं और जिन से काम न पड़े वे छोटे। (देखिए, काम पड़ने पर) एक पाई के लिए लोग रुपया, पौंड़ या नोट तुडवा डालते हैं।

६ मल हजार—यद्यपि हम गदगी से उत्पन्न हुए, गदगी में ही रहे और व्यवहार में भी गदे ही रहे तो भी हम संत कहलाए। हमारे जैसे नाम के गुरु तो सहस्रों ही होंगे।

७ का .महान—भर=एक नीच अस्पृश्य जाति। क्या ब्राह्मण, क्या डोम, क्या भर, क्या जैन और क्या ईसाई—जो सचाई पर आरूढ है वही संसार में बड़ा है।

८ बाना .ठाम—जो वेष तो महा पुरुषों का धारण करे और

काम नीच जनों जैसे करे, ऐसे कपटी मनुष्य को नरक में भी कहीं स्थान नहीं मिलता।

६. बिन...पाव—गुन=गुण। जड़=मूर्ख (२) अचेतन। गुन=(१) गुण (२) रस्सी। जड (मूर्ख मनुष्य) गुण के बिना भी कुछ न कुछ दे देते हैं। जैसे जड (अचेतन) सर-सरोवर गुणहीन-रस्सी रहित मनुष्य को जल दे देते हैं किन्तु, राजा तथा कूए की नीति समान है; राजा गुण-हीन को जरा भी धन तथा कूआँ गुणहीन (रस्सी-रहित) को बूँद भर जल भी नहीं देता।

१०. बातन...लोग—ये सब सांप्रदायिक लोग पागल हो गए हैं क्योंकि इन्होंने कदाचित् यही समझ रखा है कि सब सफलताएँ तथा सभी योगादि के चमत्कार कोरी बातों द्वारा ही प्राप्त हो जाते हैं।

११ अब...बिचारि—अब आँखें खोल कर देखो, अब कविता का समय जाता रहा। अब तो अपना कल्याण सोच कर मिल-मिल कर कला-कौशल सीखो।

शिव सम्पति

पंडित शिव सम्पति सुजान शर्मा का जन्म सम्वत् १९२० में उदियाँव, जिला आजमगढ में हुआ। हिन्दी तथा फ़ारसी पर इन का अच्छा अधिकार था और संस्कृत ज्ञान साधारण था। ये अध्यापक थे और अपने शिष्यों में सदा उन्नत भाव भरते रहते थे। इन्हो ने कविता की अनेक पुस्तकें लिखीं परन्तु सारी प्रकाशित नहीं हुईं। इनकी पुस्तकों में से कुछ एक ये हैं :—शिवसम्पति शिक्षावली, शिव सम्पति नीति-शतक, नीति-चंद्रिका, आर्य धर्म चंद्रिका, वसन्त चंद्रिका, यौवन चन्द्रिका, संसार स्वप्न। इनकी कविता ब्रजभाषा मे है और प्राय संसार की असारता के संबंध में है।

पृष्ठ ४१, दोहा १. देखत संग—रंगी=विलासपूर्ण। घन=अनेक।

श्री शिवसम्पति कहते हैं—जो विलासपूर्ण प्रासाद तथा अनेक उत्तम हाथी और घोड़े देख रहे हो, उन में से कोई भी (मरते समय) तुम्हारा साथ न देंगे।

२. धर्म...कंध—हे मन, धर्म पर आचरण करो। बताओ, दुर्बुद्धि के फेर मे क्यों पडते हो ? अरे महामूर्ख, जब चार मनुष्यो के कंधे पर सवार होकर चलोगे। अर्थात् जब तुम्हारी अरथी उठाई जायगी, तब तुम क्या करोगे ? (भाव यह है कि अंत-समय मे धर्म ही सहायक होता है, सासारिक वैभव नही)।

३. रे पास—तरुनापन=जवानी। अभिलाख=अभिलाषा। हे मन, यौवन की अभिलाषाए नित्य नही रहेंगी। यौवन चार दिनों की चाँदनी के समान है, उस के पश्चात् बुढापा-रूपी कृष्णापक्ष आयगा ही।

पृष्ठ ४२, दोहा ४ लखो स्वान—न तो सांसारिक सुख ही प्राप्त किए और न हृदय मे भगवान् का स्मरण किया। जैसे धोबी का कुत्ता न घर का रहता है न घाट का, वैसे ही मूढ मनुष्य विषयसुख तथा ब्रह्मानद दोनों ही से हीन रह जाता है।

५. सुबह .राम—प्रातः तथा सायं के चक्कर मे सारी आयु बीत गई। मूढ मनुष्य ने अपने चित्त के डॉवांडोल होने के कारण न ऐश्वर्य ही को प्राप्त किया और न परमात्मा को।

६. पीरी . माहिं—पीरी=वृद्धावस्था। श्री शिवसम्पति कहते हैं—बुढ़ापा आ पहुँचा है, परन्तु अभी तक सन्यास धारण नही किया। (मूढ मनुष्य), संसार में जीवन निष्फल ही बिता रहा है।

बालमुकुंद गुप्त

ये हरियाना प्रान्त रोहतक ज़िले के गुरियानी ग्राम के निवासी थे। ये हिन्दी के अप्रतिम सुलेखक तथा अच्छे समालोचक थे। ये सरल, शुद्ध तथा चटकीली भाषा लिखने मे अद्वितीय थे। इन की कविता भी सुन्दर तथा मर्मस्पर्शी हुआ करती थी। पहले यह उर्दू में लिखा करते थे और उर्दू-पत्रों का सपादन करते थे। फिर ये हिन्दी के 'हिन्दोस्थान, हिन्दी बगवासी' पत्रो मे काम करते रहे। सन् १८९८ से अन्त समय तक भारत-मित्र के सम्पादक रहे और भारतमित्र को तथा अपने को खूब यशस्वी बनाया। इनकी रचित तथा अनूदित अनेक पुस्तकें हैं, जैसे–मडेल भगिनी, हरिदास, रत्नावली नाटिका, शिवसंभु का चिट्ठा, स्फुट कविता, खिलौना,

खेलतमाशा, आदि। इनकी कविताओं में देश-दशा, समाज-पतन आदि का अच्छा चित्रण रहता था।

पृष्ठ ४२. दोहा १. अब राम। हे रघुकुलरत्न श्रीरामचन्द्र, हम ने यह उपदेश सुना है कि बल-हीनों के बल तथा पराजितों के आश्रय तुम्हीं हो। इस लिए अब तुम्हारी ही शरण आए हैं।

२. जप.. राम—दाम=धन। पाहि=रक्षा करो। हे श्रीराम चन्द्र, जगत् में पहला प्रभु-नाम-स्मरण का बल, दूसरा तपस्या का बल, तीसरा क्षात्रबल और चौथा धन का बल होता है। परन्तु हमारे पास तो एक भी बल नहीं। इसलिए रक्षा करो, रक्षा करो।

३. सेल हथियार—सेल=भाला। भाला, बरछा, तीर तथा खड्ग सब शस्त्र दिखाई नहीं देते। अब तो क्षत्रियों के शस्त्र केवल घड़ी, छड़ी और ऐनक ही रह गए हैं।

४ जिनके दर्बान—हे प्रभो, जिन के हाथ से मरते दम तक दृढ़ तलवार न छूटी थी, उन्हीं की सतान केवल उदर-पूर्ति के लिए नौकर तथा चपडासी बनी हुई है। (कितने दुःख की बात है !)।

५ जहाँ लात—जहाँ पुत्र पिता से तथा भाई भाई से लड़ें, वहाँ के वासियों के सिर से पराई लात कैसे दूर हो सकती है, अर्थात् वह देश कैसे स्वतन्त्र हो सकता है।

६ बार. .कराल—मारी=मरी, महामारी, चेचक, हैज़ा, आदि। कराल=भयङ्कर। (इस अभागे देश में) अनेक बार महामारियों से मरते हैं। अनेक बार दुर्भिक्ष पड़ते हैं। मृत्यु अपना भयंकर मुख खोले सदा सिर पर मँडराती रहती है।

७ जहाँ . दिखाय—हे परमात्मन, इन आँखों से एक बार उस देश का दृश्य फिर दिखा दो जहाँ बलवान् निर्बलों को सताते न हों तथा निर्बल 'हाय-हाय' न करते हों।

८. अबलौं...धाम—हे गुणों के भंडार श्रीराम, अब तक तो हम तुम्हारा नाम ले लेकर जीवित रहे परन्तु अब उसे भी भूलने लगे।

९. कर्म...फाग—फाग=होली। कर्म, धर्म, संयम, नियम, जप, तप, योग तथा वैराग्य—इन सभी गुणों की होली खेले अर्थात् इन्हें तलाञ्जलि दिए हमें बहुत समय बीत गया।

१०. जन...हार—तान = विस्तार। मरजाद = नियम, प्रतिष्ठा। जन-संख्या का बल, धन-बल, क्षात्र-बल, बुद्धि, विवेक, विचार, महान् सम्मान तथा वंशादि की रीतियों को मानो हम जूए में हार बैठे हैं, अर्थात् उपर्युक्त वस्तुओं से बिल्कुल कोरे हो गए हैं।

पृष्ठ ४३, दोहा ११ नहीं रेत—न गाँव में हमारी कोई झौंपडी है और न ही जङ्गल मे हमारा कोई खेत है। हम ने घर बैठे ही बैठे अपना सोना रेत बना डाला अर्थात् हम राज से रङ्क हो गए।

१२. दो चोर—पारधी = शिकारी, व्याध। हम दो मुट्ठी अनाज के लिए दूसरे के मुख की तरफ देखते हैं। हम अपने ही घर में व्याध तथा चोर बन गए हैं। (भाव यह है कि हम अपनों को ही मार कर तथा उनका माल चुरा कर जीते हैं)।

१३ तौ सुजान—स्वान = कुत्ता। उपर्युक्त दशा होते हुए भी हम रात-दिन परस्पर कुत्तो की तरह लडते हैं। हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्, न जाने भविष्य मे हमारी दशा कैसी हो जायगी।

१४. घर...जाय—हम घर (स्वदेश) में ही झगडे और द्वेष की आग लगा बैठे हैं और उसी में जल रहे हैं। हमारा जीवन उस अग्नि में जलते-जलते ही व्यतीत हो जाता है।

१५ विप्रन...व्यवहार—वनिकन के = बनियों के। सद्व्यवहार = निश्छल व्यापार। ब्राह्मणों ने हवन तथा तपस्या को, क्षत्रियों ने खड्ग को और बनियो के बेटो ने निश्छल व्यापार को त्याग दिया है। (भाव यह है कि वर्णसङ्करता हो गई है)।

१६ अपनो दास—बरन = जाति। कोई अपना पुरुषार्थ नहीं करता। सब ही पराई आशा लगाए बैठे हैं। अब इस भारत भूमि में सभी वर्ण सेवक (शूद्र) बन गए हैं।

कन्हैयालाल पोद्दार

इन का जन्म मथुरा के प्रख्यात दानवीर सेठ जयनारायण जी के घर सं० १९२८ में हुआ। इन्होने बाल्यकाल मे धार्मिक तथा व्यापारिक शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत के काव्यो, श्रीमद्भागवत तथा राम चरितमानस

के निरन्तर अध्ययन से इनमे कविता करने की रुचि उत्पन्न हुई। आरम्भ मे यह सरस्वती आदि मे फुटकर लेख तथा कविताएं लिखा करते थे। सम्वत् १९५९ में इनका अलङ्कार-विषय का अत्युत्तम ग्रन्थ 'अलङ्कार-प्रकाश' प्रकाशित हुआ। वही ग्रन्थ अपने परिवर्तित रूप मे 'काव्यकल्प-द्रुम' नाम से उपलब्ध होता है और उसमे काव्य के सब मुख्य अङ्गों का वर्णन है। इन के अन्य ग्रन्थ ये हैं:—पंचगीत, गंगा लहरी, हिन्दी मेघ-दूत विमर्श।

पृष्ठ ४३ दोहा १. गुन . सपत्त—गुनचुत (गुणच्युत)=(१) गुण-हीन (२) धनुष की डोरी से फेका हुआ। रु (अरु)=और। विशिख=तीर, बाण। पर-भेदन=(१) दूसरों मे फूट डालना (२) दूसरो को घायल करना। सपत्त=(१) पक्षपाती (२) पंखो से युक्त। दूसरो मे फूट डालने में निपुण, नीच, पापी, पक्षपाती तथा गुण-हीन मनुष्य, और दूसरों को घायल करने मे समर्थ, छोटे, लोहमय पंखों वाले तथा धनुष की डोरी से फेंके हुए बाण, किसको भयभीत नहीं कर डालते ?

[टिप्पणी—बाणों की वेग-वृद्धि के लिये उन के साथ पंख-सा लगाया जाता है।]

२ यूथप.. छाँहि=यूथप=गजसमूह का सरदार, गजराज। निदाघ=ग्रीष्म। हे गजराज, तेरे डील के कोई भी वृक्ष यहां पर दिखाई नहीं देते। तेरे योग्य विस्तृत छाया तो कहीं भी नहीं है, तो भी किसी प्रकार ग्रीष्म के (दुःखदायक) दिन काट ले। (भाव यह है कि अच्छे दिनों में नीचों का आश्रय न लेना चाहिये, हाँ बुरे दिनों में जैसे तैसे समय गुज़ार लेना चाहिए)।

३ यदपि.. विहीन—मलय=चन्दन। चाहे चन्दन के पेड़ को विधाता ने फूलो तथा फलो से युक्त नहीं किया तो भी वह अपना शरीर (लकड़ी) देकर भी दूसरों की गरमी दूर कर देता है।

४. गुरु . हेम—गुञ्जन=हाथी। भारी वस्तु से झुकना, हलकी से ऊपर उठना तथा समान से समान प्रेम करना उचित है। इस उचित नीति को जानती हुई भी तकड़ी न जाने क्यो रत्तियो से सोने को तोलती है ?

५. ऋतु एक—निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। मरुगम=रेगिस्तान भूमि

चलने वाले। गरमियों का मोसिम है, (दोपहर) का कष्टप्रद काल है और मरुभूमि में जाने वाले यात्री बहुत हैं। (अब कहिए), पथ में स्थित यह अकेला वृक्ष कितनों की गरमी दूर कर सकता है।

६. फूल निकाम—सेमल वृक्ष का बढ़ना संसार में बिलकुल किसी काम का नही क्योंकि उसके पुष्प सुगंध हीन है, फल मधुरता-रहित हैं और छाँह उपयोग-शून्य है।

७. रे...रसाल—अलि-कुल-कलित = भँवरो के झुंडों से युक्त।

हे कोयल, जब तक भँवरों के झुण्डो से युक्त यह सुन्दर आम का पेड़ मंजरी से युक्त नहीं होता तब तक तू इस रसहीन भयंकर (पतझड के) समय को जहाँ तहाँ काट ले।

रामचरित उपाध्याय

इन का जन्म सं० १६२६ मे सरयूपारीण ब्राह्मण प० रामप्रपन्न जी के घर गाज़ीपुर मे हुआ था। इन्हों ने संस्कृत का खूब अध्ययन किया है और सस्कृत तथा हिन्दी के अच्छे जानकार हैं। पहले ये होली, कजली आदि पर पुराने ढंग से कविता किया करते थे। पश्चात् खड़ी बोली की ओर झुके। इनकी कविता भावप्रधान, सरस तथा उपदेशप्रद होती है। इन के खड़ी बोली के कुछ ग्रंथ ये हैं:—सूक्ति मुक्तावली, देवदूत, रामचरित चन्द्रिका, रामचरितचिन्तामणि, देवी द्रौपदी, उपदेशरत्नमाला, मेघदूत, विचित्र विवाह, सत्यहरिश्चन्द्र।

पृष्ठ ४४, दोहा १ मानो ..होय—बरुक = भले ही। प्रतिष्ठित पुरुष भले ही प्राण त्याग दें परन्तु दीनता स्वीकार नहीं करते। देखिए, स्वप्न में भी आग बुझे बिना शीतल नहीं होती।

२ अपने विरोध—छुद्र (क्षुद्र) = छोटे। केहरि = शेर। ससक (शशक) = खरगोश। जो अपने से अति छोटे हो उन पर क्रोध न करना चाहिए। देखिए, सिंह और खरगोश का वैर किसी प्रकार भी शोभा नहीं देता।

३ धीरज...सुमीत—धैर्य, पुरुषार्थ, ज्ञान, शारीरिक बल, वीरता, सामर्थ्य, सुन्दर नीति, साध्वी-पत्नी, सुपुत्र तथा सुमित्र ये दस वस्तुएँ सदा सुखदायिनी होती हैं।

४. चिंता एक—चिन्ता की माता कामना है, और वह कामना अज्ञान की पत्नी है। यदि तुम्हें ज्ञान की इच्छा हो तो केवल राम का नाम जपते रहो। भाव यह है कि राम-भजन से ज्ञान, ज्ञान से कामनाओं का नाश तथा कामना-नाश से निश्चिंतता होती है)।

५ जल...मुरारि—शाखचर = बंदर। गरज = प्रयोजन, प्रार्थना।

हे मुरारि (विष्णु के अवतार श्रीराम तथा कृष्ण), आप ने जलचर (ग्राह), भूमिचर (रीछ), वानर, गगनविहारी (जटायु) तथा राक्षसों का उद्धार किया है। यदि आप की कोई हानि न हो तो एक मनुष्य की, अर्थात् मेरी, प्रार्थना भी सुन लीजिए, अर्थात् मुझे भी तार दीजिए।

६. चकई राज—कुलतिय = कुलीन स्त्री। जैसे चकवी की आँखो मे सूर्य रहता है, जैसे कुलीन नारी के नयनो में लज्जा रहती है, वैसे ही, हे श्रीरामचन्द्र, तुम मेरे हृदय में (निरंतर) निवास करो।

सैयद अमीर अली 'मीर'

इनका जन्म मध्यप्रदेश के सागर नगर मे सम्वत् १९३० मे मीर रुस्तम अली के घर हुआ। पिता की शीघ्र मृत्यु होने के कारण देवरीकला में रह कर दुकानदारी करने लगे और कविता भी करने लगे। सन् १८९५ मे देवरी मे इन की प्रेरणा से मीर मंडल कवि समाज की स्थापना हुई और अनेक युवक उत्साही लेखक तथा कवि बन गए। सन् १९०७ की प्लेग मे इन्होने ग्रामवासियो की स्तुत्य सेवा की। पश्चात् ये नौकरी करने लगे और उन्नति करते करते दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट बन गए। आप गौ रक्षा के बहुत पक्षपाती हैं। इन्हे अनेक संस्थाओ से साहित्यरत्न. काव्य रसाल आदि उपाधियां तथा पदक आदि प्राप्त हुए हैं। इनके कुछ ग्रंथ ये हैं.—नीति दर्पण की भाषा टीका, बूढ़े का ब्याह, बच्चे का ब्याह सदाचारी बालक आदि। आप सुकवि हैं और अच्छी कविता करते हैं।

पृष्ठ ४४, दोहा १ सब...साज—कोर = कटाक्ष। फेरबी = फेरना। (हे भगवान्), मै 'मीर' सब से दरिद्र हूँ और आप दरिद्रो के पालक हैं। सो कृपा-दृष्टि द्वारा उन्हीं (सौभाग्यशाली) दिनो तथा सुख के सामानों को मेरी ओर मोड़ दें।

२. जान. .चैन—करुणायतन = दयानिधान । विनवहुँ = विनती करता हूँ । (हे भगवन्), मैं तुम्हें दया का भंडार जानकर, अपनी करुणापूर्ण वाणी से यह विनती करता हूँ कि अब मुझ पर दया करो ताकि मैं सुख प्राप्त करूँ ।

३ दीन लाज—मुहताज = दरिद्र । (हे भगवान्) तुम निस्सहायों के सगे हो और मैं निस्सहाय हूँ और तुम्हारे ही आश्रय पर हूँ । अब अपने 'दीनबन्धु' नाम की ही टेक रखिए ताकि हम दोनो की प्रतिष्ठा बनी रहे ।

४ तुम.. तोहिं—(हे भगवन्), तुम सुबुद्धि देने वाले हो । मुझे भी ऐसी सुबुद्धि दो जिस से मैं परोपकार करता हुआ सदा आप की सेवा करता रहूँ ।

५ जाँचे...करतार—करतार = सृष्टि-कर्ता । (हे भगवन्), यदि तुम माँगे बिना ही फल दे दोगे तब तो तुम विशाल हृदय दानी होओगे । परन्तु यदि कर्मों के अनुसार ही उद्धार करोगे तब तुम कैसे कर्तार कहाओगे । (भाव यह कि दूसरी दशा मे तुम्हारी उदारता दूषित हो जायगी) ।

६ भट्क्यौ...तोर—(हे भगवन्), मैं अब तक मृगतृष्णा मे भटकता रहा अर्थात् सांसारिक भोगों की खोज में व्याकुल फिरता रहा किन्तु अब मेरा अज्ञान दूर हो गया है । अब मैंने निष्फल आशाओं को छोड़ कर आप ही का आश्रय ग्रहण कर लिया है ।

७ जौ ठौर—द्रवहु = पसीजो । ठौर = स्थान । हे स्वामिन्, जब तक तुम दयार्द्र न हो तब तक लोग भी दया नहीं करते । मैं अधिक क्या कहूँ, मुझे तो, खडा होने का भी स्थान नहीं मिलता ।

रामदास गौड़

आपका जन्म सं० १६३८ मे मुन्शी ललिताप्रसाद कायस्थ के घर हुआ । ये आजकल बनारस मे रहते हैं । इन की माता नित्य रामचरित मानस का पाठ किया करती थीं । इन्होंने भी केवल १० वर्ष की आयु मे छः सौ छंदों की संक्षिप्त रामायण लिखी । आपने एम० ए० तक शिक्षा पाई । दर्शन, इतिहास, विज्ञान, साहित्य आदि के अच्छे

जानकार हैं। आप कट्टर देश-भक्त तथा स्वतंत्रा-प्रेमी हैं। आप की रचनाएं देश-भक्ति के भावों से युक्त, सुपाठ्य तथा सुन्दर होती हैं। आप हिन्दी के मर्मज्ञ हैं तथा गद्य और पद्य दोनो अच्छे लिखते हैं। आप के कुछ ग्रंथ ये हैं :—स्वप्नादर्श, राष्ट्रीय शिक्षावली (सात पुस्तकें), हिन्दी के ज्ञान ग्रंथों की सूची (अँगरेज़ी मे), भारी भ्रम (अनुवाद), विज्ञान की हिन्दी-उर्दू रीडरें।

पृष्ठ ४५, दोहा १ चाँद...कपाट—बाट = रास्ता। करन = कान। कपाट = किवाड। चाँद और सूर्य-रूपी खुली हुई आँखें किस का मार्ग देख रही है ? आकाश-रूपी कर्ण-किवाड़ क्या सुनने के लिए खुले हुए हैं।

२. बह्यो...पौन—पावन = पवित्र। धाय रही = दौड रही। पौन (पवन) = हवा। कौन सा मधुर रस चख कर पानी दिशाओं तथा उपदिशाओ (दिक्कोणों) मे बहता चला जाता है ? किसका पवित्र स्पर्श पाने क लिए वायु दौड़ी आ रही है ?

३ सब .भरपूर—सूर = शूरवीर, बहादुर। दृश्य = जो दीख पड़े। (दृगन के स्थान पर दृश्यन करले)। सब ज्योतियों की ज्योति तथा सब सूर्यों का सूर्य वही परमात्मा है, अर्थात् सभी प्रकाशक वस्तुओ का मूल स्रोत वही है। सब दृश्यो मे सर्वोत्तम दृश्य उसी का है। वही वाणी तथा प्राणों मे ओत-प्रोत है।

४. हृदय...साथ—हे स्वामिन्, जब धूल के तुल्य तेरे चरणों की सङ्गत प्राप्त की तब तेरी दया देख कर मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

५ सो...जाउं—अटिजाऊँ = आ जाता हूँ। (प्रथम तथा तृतीय चरण मे 'में' के स्थान पर मैं' कर लें)। मैं धूलि का वह अत्यन्त छोटा ज़र्रा हूँ जो समुद्र में भी नहीं समाता। (परन्तु साथ ही) वह समुद्र भी मैं ही हूँ जो छोटी सी गागर मे भी समा जाता हूँ।

[व्याख्या—कवि रहस्यवाद के इस दोहे में आत्मा की अणुता तथा महत्ता का एक-साथ वर्णन करता है। इसके मतानुसार अणु आत्मा व्यापक परमात्मा का वैसे ही अंश है जैसे तरङ्ग सागर का। जैसे तरङ्ग छोटी दिखाई देती है। परन्तु वस्तुत: वह महान् सागर ही है इसी प्रकार आत्मा शरीर मे सीमित-सी अनुभव होती है तो भी वस्तुत: उसी असीम का रूप है।]

६. दृग ..अर्थात—छवि=रूप। मेरे नेत्रों में वह शक्ति न आई कि वे उस प्रभु का रूप ही बन जाते। वे उस छवि के सागर (अर्थात् परम-सुन्दर परमेश्वर) में सदा डूबे रहते हैं, तो भी तृप्त नहीं होते।

७. आपु संताप—आपु=परमात्मा। आप=आत्मा। वह परमात्मा आत्मा में खोया हुआ है और स्वयं ही अपने आप को ढूँढ रहा है। वह आप ही परम आनन्द-स्वरूप है और आप ही शोक-रूप तथा दु:ख-रूप है। (भाव यह है कि आत्मा परमात्मा से पृथक् नहीं, वह उसी का रूप है। वस्तुत: वह आनन्दमय ही है परन्तु माया वश अपने-आप को शोक-दु:ख-ग्रस्त पाता है।

८ मैं...नाम—रिझवार=प्रेमी। वीचि=तरङ्ग। मै ही सौन्दर्य हूँ और उस पर आसक्त होने वाला भी मै ही हूं। मैं ही राधा (प्रेमपात्र) और मैं ही श्याम (प्रेमी) भी हूं। मै ही शब्द, अर्थ, जल तथा तरङ्ग हूँ। सब रूप तथा सब नाम मेरे ही हैं। (भाव—जब जीव अपने आप को परमेश्वर से अभिन्न समझ लेता है तब सब पदार्थ उसे अपने ही रूप प्रतीत होते हैं।)

पारसनाथ सिंह

पृष्ठ ४५, दोहा १ वह ससार। 'वह अपना है या बेगाना' यह विचार बहुत निम्नकोटि का है। विशाल-हृदय मनुष्य के लिए तो सारा संसार ही उसका परिवार है।

२ किसी.. हीन—प्राचीर=परकोटा, शहरपनाह। किसी टूटे हुए परकोटे मे एक पुराना छेद है। उसी के बीच मे एक फूल खिला हुआ है जिस के नाम तथा जाति का पता नहीं लगता।

[टिप्पनी—यह दोहा आगामी दोहे से सम्बद्ध है।]

३ दृष्टि आज ?—जगत के लोग तो उस पर निगाह नहीं डालते परन्तु सूर्य प्रतिदिन उदित होकर उसे पूछता है—क्यों भाई, आज कुशल तो है ?

———

राजाराम शुक्ल

पृष्ठ ४५, दोहा १ मेरी अभिराम—मनरजन=मन को प्रसन्न करने वाले। भवभजन= पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्त करने वाले, मुक्तिदा-

यक। चित्त को प्रसन्न करने वाले, मंगलकारी गुणों के भंडार, मुक्तिदायक तथा सुन्दर श्रीकृष्ण काजल बन कर मेरे नयनों में विराजमान हैं।

पृष्ठ ४६, २. सम्मुख . संसार—रुख=सामने का भाग, कृपादृष्टि। जब भगवान् की कृपा-दृष्टि सामने की (अर्थात् मेरी) ओर थी तब तक मेरे लिए सर्वथा सुख था। परन्तु, जब उन्होंने कृपा-दृष्टि हटा ली तब सारा जगत् एकाएक बदल गया अर्थात् दुःखदायक बन गया।

३. लोचन...यान—ध्रुव-यन्त्र=दिग्दर्शक यन्त्र, कुतुबनुमा। जल-यान=जहाज़, पोत। दिग्दर्शक यन्त्र की भाँति नेत्र अत्यन्त लाभदायक हैं। वे इस लिए हैं कि लोगों का जीवन-रूपी जहाज़ सन्मार्ग से इधर-उधर न हो जाय।

४. प्राप्त . खोल—(हे मनुष्य) प्रकृति ने तुम्हे ये महामूल्य घड़ियाँ (जीवन का समय) प्रदान की हैं। उठो, प्रमाद को शीघ्र त्यागो तथा इन का सदुपयोग करो।

५. लोचन. .कर्ण—साग=लोहा। कर्ण=कान। कर्ण=दानवीर राजा कर्ण। नयन पारस पत्थर के तुल्य है। इन से कुछ न कुछ लोहे को तो सोना बना लो। ये कर्णों (कानों) की जोड़ी (नाम की समानता से) मानो राजा कर्ण हैं और दान करने की याद दिला रही है।

६ मानव मन्त्र—ज्ञापक=जतलाने वाले। मारन मन्त्र=वे मन्त्र जिनके उच्चारण-मात्र से शत्रु आदि मार दिए जाते हैं (तांत्रिक)। मोहन यन्त्र=वे मन्त्र जिनके उच्चारण-मात्र से किसी व्यक्ति को मूर्छित कर दिया जाता है (तांत्रिक)। ये नेत्र ऐसे यन्त्र हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व को जतला देते हैं। ये मनुष्य के चेहरे पर लिखे हुए वे विशेष तांत्रिक मन्त्र हैं जिनसे किसी को मारा या मूर्छित किया जा सकता है।

७ आँखो.. दोष—हे मित्र, नयनों की परीक्षा करके मत्र करो। प्रत्येक व्यक्ति के गुण-दोषों को इन्हीं कसौटियों पर कस कर देख लो। (भाव यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के गुण-दोषों की पहिचान उसकी आँखों से हो जाती है)।

८. बचो.. दिये—(हे मनुष्यो), भगवान् ने सब को दो दो आँखें इसी लिए प्रदान की हैं कि संसार-रूपी कूएं को देख कर उसमें गिरने से

बच जाये। प्रभु ने यह शीशे इसी लिये दिए हैं कि तुम अपने आपको पहिचान लो।

[टिप्पणी—यह दोहा नहीं, सोरठा है।]

६. फिर.. लगा—(अभी से सावधान हो जाओ), पीछे पश्चात्ताप मत करना, क्योंकि यह आँखें तुम्हें धोखा देंगी। यदि तुम (इन चर्म-चक्षुओं पर) तत्व-ज्ञान की ऐनक लगा लो तो फिर सारा भेद खुल जायगा। (भाव यह है कि आँखें केवल बाह्य माया-मय संसार ही दिखाती है और प्रभु-दर्शन तत्त्वज्ञान से ही होता है)।

शिवदुलारे त्रिपाठी

ये मौरावाँ जिला उन्नाव के निवासी हैं। इनका जन्म-काल सं०१६४६ है और रचना-काल १६८०। इनका उपनाम नूतन है। इनकी रचनाएं निम्न-लिखित हैं:— नूतन विलास, छात्र-शिक्षा, दगाष्टक, रईस-रहस्य, रुक्मिणी-हरण।

ये वीर-काव्य लिखने में कुशल हैं। प्रस्तुत दोहे नीति-विषयक हैं।

पृष्ठ ४६, दोहा १ सहज.. भोग—बहुत नींद, शारीरिक व्याधि, कर्ज़ा, लोभ, शोक, कपट, कोप तथा मादक (नशीली) वस्तुओं का प्रयोग—ये सब मनुष्य के स्वभाविक वैरी हैं।

२. जैसे.. आलस्य—उपल = ओले। विपल = क्षण, पल। सस्य = खेती। जैसे ओले क्षण भर में खेती को नष्ट कर देते हैं वैसे ही आलस्य विद्या तथा बुद्धि का नाश कर देता है।

३ सुगुण... विचार—सौजन्य = सज्जनता, हे मित्र, विचार कर निश्चय कर लो कि भलमानसी जैसा श्रेष्ठ गुण कोई नहीं, सुशील सरीखा सिंगार कोई नहीं और विद्या के समान ऐश्वर्य कोई नहीं।

४ पर .चाह—जो दूसरे की उन्नति चाहता है और (अपनी) कुछ चिंता नहीं करता, उसी भले मनुष्य को सारा संसार सदा प्यार करता है।

५ अगर हुशियार—यदि आप अपना सुधार भली भाँति करना चाहते हैं तो मादक द्रव्यों तथा बुरी संगति से सदा बच कर रहें।

पृष्ठ ४७, दोहा ६ निन्दा...कर्म—('कहीं' के स्थान पर 'नहीं' पाठ चाहिए)। निन्दा की न्याईं कोई पाप नहीं। सचाई के समान कोई धर्म। लाज के तुल्य कोई गहना नहीं। कर्तव्य सरीखा कोई काम नहीं।

७ धन नीति—धन धर्म से सुशोभित होता है। प्यारा प्रेम से सुहाता है। वंश पुत्र से शोभायमान होता है। राजा नीति से अलंकृत होता है।

८ वही संतोष—जो फँसावट और क्रोध से रहित है, जो रूखा-सूखा खा कर भी पूर्णतया प्रसन्न रहता है, उसे ही तपस्वी समझना चाहिए।

रुद्रदत्त मिश्र

(स० १९६३)

ये खैराबाद, कोटा राज्य, के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण प०गोकुल प्रसाद जी मिश्र के सुपुत्र हैं। ये माडल स्कूल कोटा मे सहायक अध्यापक हैं। ये ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों मे कविता करते हैं। और इन की रचनाएं पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं और 'सुरेश' उपनाम से अंकित होती हैं। ये चित्र-काव्य करने मे भी कुशल हैं। आप जाति-वर्णाभिमान के विरोधी हैं। प्रस्तुत दोहे नीति-विषयक हैं।

पृष्ठ ४७, दोहा १ बिना . सनेह—बित्त = धन। पुत्र के बिना घर आनन्द हीन है। गुणो के बिना शरीर शोभा-रहित है। धन के बिना सारा जीवन ही फीका है। प्रीतम के बिना प्यार नीरस है।

२ सत्संगति खींच—मृतिका = मिट्टी। नीच मनुष्य भी भली संगति से भला बन जाता है। जैसे, मिट्टी फूल से सुगंध खींच लेती है। (और सुगंधित हो जाती है)।

३. दुख तयार—उपचार = उपाय। जो मनुष्य विपत्ति पड़ने से पहले उपाय नहीं करते वे आग लगने के बाद कूआँ खोदने लगते हैं।

४. है आलस्य—मनुष्य के शरीर में एक अद्भुत भेद छिपा हुआ है। वह यह कि उसमें उसका परिश्रम-रूपी मित्र तथा आलस्य-रूपी शत्रु साथ-साथ रहते हैं।

५ जानों...समान—यह बात समझ लीजिए कि सज्जन को पहिचानने का बस यही एक उपाय है कि उस के मन, वचन तथा कर्म समान होते हैं, अर्थात जो मन से विचारता है, वही वाणी से कहता है और उसी के अनुकूल आचरण करता है।

६ मेधावी . पहचान—मेधावी = विद्वान्। श्रेष्ठ कवि को पहिचानने

की सरल रीति यही है कि वह विद्वान्, सुन्दर बोलने वाला, बुद्धिमान, धार्मिक तथा गुणी होता है।

७ जो अधिकार—जो व्यक्ति लालची, पापी, दुर्व्यसनों में मग्न, निर्दय तथा उजड्ड हों उन्हे कभी थोड़े से भी अधिकार नहीं दने चाहिए (क्योंकि वे उनका दुरुपयोग करके प्रजा को अवश्य दुःखी करेंगे)।

८. एक . वैर—उरू = जाँघ। जाँघे, बाहु, मुँह तथा पाँव—सब एक ही शरीर के अंग हैं। क्या (ऊर्ध्ववर्ती) मुख कभी निम्नवर्ती पांव से) द्वेष करता है? कभी नहीं)।

[व्याख्या—वेद भगवान् के अनुसार ब्राह्मण मुख के समान, क्षत्रिय बाहु के समान, वैश्य जाघों के समान तथा शूद्र पाँव के समान होते हैं। जब मुख पाँव से द्वेष नहीं करता तो ब्राह्मणों को शूद्रों तथा हरिजनादिको से द्वेष न करना चाहिए।]

९ आश्रित सस्नेह—यह शरीर सदा पाँवों के सहारे ही रहता है। इसीलिए बाहु और सिर श्रद्धापूर्वक चरणों को नमस्कार करते हैं। (भाव यह है कि इसी प्रकार ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को शूद्रों का समान करना चाहिए।)

१० अहंकार याद—अविचारिता = विचार-हीनता। दुर्वच = कटुभाषण, गाली। सन्तत = निरन्तर। इस बात को सदा स्मरण रखें कि दर्प, विचार-हीनता, कटुभाषण, तथा कलह—ये (चारों) चिन्ह मूर्खों के होते हैं।

पृष्ठ ४८, दोहा ११ शीश. प्रकाश—सिर कटने का भय त्याग कर विजय की आशा रखो। देखिए, दीपक ने (बत्ती-रूपी) सिर कटाया तो उस का प्रकाश दुगुना हो गया। (इसी प्रकार वीर-गति पाने वालों का यश-रूपी प्रकाश सदा सर्वत्र फैलता है)।

१२. दो ..शीश—विद्यावागीश = ज्ञानी तथा वक्ता। व्याल = सांप। ज्ञानी तथा सुवक्ता व्यक्ति को दो जीभें न रखनी चाहिएं अर्थात् परस्पर-विरोधी बातें न कहनी चाहिएं। देखिए, कलम का सिरा इसी लिए काटा जाता है और साँप का सिर इसी लिए कुचला जाता है कि वे दोनो दो-दो जीभें रखते हैं।

———

अंबिका प्रसाद

पृष्ठ ४८, दोहा १ एक न ? (तृतीय चरण मे 'नग' के स्थान पर 'जग' पाठ उचित प्रतीत होता है।) एकरदन = एक दाँत वाले (गणेश)। लंबोदर = लम्बे पेट वाले। कस = क्यों। हे एक दाँत वाले, हाथी के मुख वाले, लंबे पेट वाले छोटे नेत्रो वाले, (गणेश महाराज), ससार भर ने तुम्हारा स्मरण करके सफलता प्राप्त की तो मैं क्यों न करूंगा।

२ आज.. भूल - परौं = परसों—जो आज कली है, वह कल खिल कर फूल बनेगी और परसों मिट्टी में मिल जायगी। हे भँवरे, तू किस के साथ प्रेम करके अपनी सुध-बुध भूल रहा हैं। (भाव यह है कि हम जिन से प्रेम करके आत्म-तत्व को भुला बैठते हैं, वे सब तो नश्वर हैं, इसलिए आत्म-स्वरूप को पहिचानना चाहिए।)

३. का .गँभीर—मरियादा (मर्यादा) = सीमा। ससि = चन्द्रमा। समुद्र की मर्यादा क्या है जो चाँद को देखते ही धीरज छोड बैठता है ? मर्यादा तो गहरे कूँए की है जो आकाश में सैंकडो चाँद देखता हुआ भी नहीं उमडता।

४ अरे कुराँइ—संभर = सभल कर। कुराँइ = गढे। हे उत्साही यात्री, पथ पर सावधानता से पग रखना। इसे सम-भूमि समझ कर धोखा न खाना, यहाँ तो पग-पग पर कपट के गढे मिलेंगे। (भाव यह है कि कपट-पूर्ण ससार मे मनुष्य को सावधानी से जीवन विताना चाहिए)।

५ जिह्वा कोय—नाल = व्यायामोपयोगी भारी पत्थर (यहाँ, कसौटी)। भाल = भाग्य। नाल = जूते के नीचे का लोहे का गोल-सा टुकडा, खुरी। जीभ तो चमड़े का छोटा सा टुकडा है परन्तु फिर भी वह भाग्य परखने की कसौटी है। (उसी के द्वारा) कोई पालकी की सवारी करता है और कोई नाल-जडी जूतियों से पीटा जाता है।

६. नयन याम—ये नेत्र सुन्दर आकाश वन गए हैं जहाँ पर घनश्याम (श्रीकृष्ण) रूपी श्यामघन छाए रहते हैं। और यह जीभ पपीहा वन गई है जो आठों पहर उन्हीं की रट लगाए रखती हैं। (भाव यह है कि आँखों मे उन्हीं का रूप और जवान पर उन्हीं का नाम है।)

७ सीदत .होइ—सीदत = दुखी होता है। भवरुज = संसार-रूपी रोग। गुन = लाभ। रस = भस्म रूपी औषधि। जो जगत् के (चिन्ता आदि) रोगों मे दु:ख उठा रहा है और जो भस्म-रूप औषधियों से भी स्वस्थ नहीं होता (उसे कविता का रस पिलाना चाहिए)। जिसे काव्य-रस रूपी भी स्वस्थ न कर सके उसकी चिकित्सा हो ही नहीं सकती (भाव यह है कि मानसिक रोगो के लिये कविता परमौषध है।)

८. कैसे दीन ?— दाद न दीन = प्रशसा न की। हे दीन दयालो परमेश्वर, अब भी आप न्याय नहीं करते। वह जो दीन सुदामा था (उसे तो आप ने तार दिया और हम ज्यों के त्यो रह गये, पर सोचिए तो कि) हम अधिक दीन हैं या वह अधिक दीन था ?

[व्याख्या— कवि का आशय यह है कि भगवान् ने दीन सुदामा का तो उद्धार कर दिया किन्तु उस से अधिक दीन जो कवि है उसका उद्धार न किया। यह क्या न्याय हुआ। यह तो वैसी ही बात हुई कि वैद्य अधिक पीडित रोगी की ओर ध्यान न देकर साधारण रोगी की ओर ध्यान दे।]

चतुर्भुजदास

इनका जन्म सम्वत् १९३८ के लगभग हुआ। ये नागौर (बीकानेर) के महन्त हैं और आध्यात्मिक विषयो पर लिखते हैं। इनका भवानीमङ्गल नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत दोहे भक्ति तथा नीति के विषय मे हैं।

पृष्ठ ४८, दोहा १ जग . नाथ—करन जग = जगत्कर्ता। निहारिये = देखिये। तव (तव) = तुम्हारा। हे संसार का उद्धार करने वाले, हे सृष्टि के कारण तथा कर्ता, हे मनुष्यो को प्रसन्न करने वाले स्वामिन्, मेरी ओर कृपा-दृष्टि डालिये, मैं असहाय तुम्हारा ही सङ्ग चाहता हूँ।

२ प्रेम . नाम—नेम = नियम। जहा प्रेम तथा व्रत-नियम नहीं वहा सुखो का निवास, शान्ति, शील, पवित्रता तथा श्रीराम का नाम भी नहीं होता।

पृष्ठ ४९, दोहा ३. साहस . साथ—(प्रथम चरण मे हैं' स्थान पर 'है' करलें)। (हे सरस्वती देवी), मेरे साहस-रूपी हस पर बैठ कर, मेरी

हृदय-रूपी वीणा को हाथ मे लेकर और मुझे सुमति का दान देकर, राग गाओ तथा सदा मेरा साथ निवाहो।

[टिप्पणी—सरस्वती देवी का वाहन हंस है और साज वीणा, इसी लिए उपर्युक्त रूपक बाँधा गया है।]

४ बसन लोय। वसन = वस्त्र। वपुष = शरीर। लोय = लोग। जो लोग सुन्दर वस्त्र, नम्रता, मधुर वाणी, सुन्दर काया तथा विद्या से युक्त होते हैं वही राज दरबार मे सम्मान-पूर्वक अनेक सुखों को प्राप्त करते हैं।

५ चार हाल—हे चाँद। तुम्हारी चाँदनी थोड़े ही दिन टिकने वाली है। इस लिए ऐसी चाल चलो जिस से तुम्हारा यश बढ़े और संसार में धर्म-कर्म तथा सुख-शाँति की वृद्धि हो।

[टिप्पणी—यह अन्योक्ति है। चाँद के व्याज से किसी उच्छृङ्खल धनिक को उपदेश दिया गया है।]

श्रद्धाराम

जिन दिनो संयुक्त प्रान्त मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी की अप्रतिम सेवा कर रहे थे, उन्हीं दिनो पंजाब के फुल्लौर नामक नगर में पं० श्रद्धाराम जी अपनी धार्मिक कृतियों द्वारा हिन्दी की स्तुत्य सेवा कर रहे थे। स्वामी दयानन्द के समान ईसाई-मत विरोध के पक्षपाती ये भी थे, परन्तु अपने धर्म की काँट-छाँट करके नहीं। इन्हो ने पुराणो के आधार पर हिन्दू-धर्म का महत्व स्थापित करने की चेष्टा की। इन्हो ने अपनी गद्य की पुस्तक 'सत्यामृतप्रवाह' मे बड़ी प्रौढ़ता से स्वसिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। इन्हों ने 'भगवती' नामक पुस्तक स्त्री-शिक्षा पर लिखी थी और अपना जीवनचरित्र भी लिखा था परन्तु वह चुराया गया। ये कविता भी लिखा करते थे। प्रस्तुत दोहे भक्ति तथा नीति के विषय मे हैं और सरस है। 'जय जगदीश हरे' शीर्षक आरती इन्हीं ने बनाई थी।

पृष्ठ ४६, दोहा १. चार . होय—चारो वेदो तथा छओं शास्त्रों मे (अतिमहत्व की) बातें दो ही मिली हैं। प्रथम यह कि दुःख देने पर दुःख मिलता है और दूसरी यह कि सुख देने पर सुख मिलता है।

२ ग्रंथ .तीन – संसार के सब (धार्मिक, ग्रंथ तथा सम्प्रदाय तीन बातें (अत्यधिक महत्व की) बताते हैं। पहली हृदय मे भगवान् बसते हों, मन मे दया रहनी हो तथा शरीर लोक-सेवा में मग्न हो।

३. तन बसार—वाद-विवाद = बहस। तर्क-वितर्क को छोड कर तन, मन तथा धन से रात-दिन परोपकार करना चाहिये। मनुष्य-शरीर का तत्व (वास्तविक प्रयोजन) यही है।

४. चींटी.. देह—चींटी से हाथी तक जितने छोटे बड़े शरीर (प्राणी) हैं, उन सब को सुख दीजिए। यही सब से बड़ी भक्ति है।

५. गुरु सन्मान—गुरु, सम्बन्धी, सब विद्वान्, श्री राम, तथा सब सन्त लोग पूजनीय हैं। इन सब की सेवा-सन्मान करो।

६. जाके रोष—जो त्याग तथा वैराग्य को ही धन मानता है और जितना मिल जाय उसी से प्रसन्न रहता है, जो सन्मार्ग पर चलता है और राग द्वेष से रहित है वही सच्चा साधु और ज्ञानी है।

७. नीच मान—जो छोटे से बड़े तक सभी जीवों को अपने तुल्य समझता है, सबका दुख दूर करके सुख देता है, उसी को भक्त समझिए।

८ तन काज—जो तन मन तथा धन (गुरु की) भेंट कर देता है, लोक तथा कुल की मर्यादा का विचार छोड कर गुरु के आदेश का पालन करता है, वही शिष्य अपने सारे कार्य सिद्ध कर लेता है।

९ स्वाँस छेम—छेम = कल्याण। प्रत्येक सास में भगवान् के प्रेम तथा भय का बने रहना ही उत्तम जप है। वही सुख तथा कल्याण का देने वाला है।

१०. प्रिय .चार—अयाचना = न मागना। हे मनुष्य, मधुर वाणी, नम्रता, आदर, प्रेम, विचार, लज्जा, क्षमा तथा किसी से कुछ न मांगना—इन्हीं गहनों को हृदय मे धारण करो।

पृष्ठ ५०, दोहा ११ भाग देत—जो दूसरे के अंश को छोड कर अपना ही अंश ग्रहण करता है वह न किसी से दुःख पाता है न दूसरों को दुःख देता है।

१२. जिस होय—जो सब से मैत्री रखता है उसका कोई वैरी नहीं होता। जो आप अच्छा है, उसके लिए सब संसार अच्छा है। जो स्वयं [illegible] है उसके लिए जगत भला नहीं हो सकता।

१३. धिक टेक—मानस = मनुष्य । निष्ठा = श्रद्धा । भक्तिहीन मनुष्य धिक्कार के योग्य है। विवेक-हीन बुद्धि धिक्कार के योग्य है। श्रद्धा-हीन विद्या धिक्कार के योग्य है और भगवद्भक्ति-हीन सुख धिक्कार के योग्य है।

१४ अस्थि नीच—कर = से । नातर = नहीं तो। हड्डी मांस, मल, मूत्र तथा त्वचा—(ये अपवित्र पदार्थ) सभी शरीरों में रहते हैं। फिर भी मनुष्य अपने गुणों तथा सुकृत्यों से माननीय होता है। यदि गुण तथा सुकर्म भी न हों तो उसे नीच ही समझो।

१५. जाके विश्वास—विचल = कच्चा, डोलने वाला। जो पक्का ढीठ हो और जिसकी बात पक्की न हो, उस से कुछ आशा न रखो और उसका सब भरोसा छोड दो।

१६ वेद समान—बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वेदों तथा पुराणों के झगडे मे न फँसे और अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार सब ग्रथों का सार ग्रहण कर ले।

१७ पर पैर—भूषण = गुण। जो दूसरों के दोषो को अपनाना चाहता है और उन के गुणों से द्वेष करता है, वह म्लेच्छ, अज्ञानी नीच पुरुष नरक में जाता है।

१८ विद्या ज्ञान—विद्या, बल, धन, रूप, यश, वश, पुत्र, पत्नी, प्रतिष्ठा-ये सभी पदार्थ जगत् मे सहज ही मिल सकते हैं परन्तु आत्मा का ज्ञान कठिनता से मिलता है।

१६ मात निरधार—गर्दभ = गधा । माता-पिता पुत्रों का जो-जो भला करते हैं, उनको जो पुत्र भूल जाता है, उसे गधा ही समझिये (वह पुत्र भी नहीं, मनुष्य भी नहीं)।

२० प्रिय . प्यार—जगत् में जो मनुष्य मधुरभाषी, शान्तचित्त, सुरूप, निष्कपट तथा विशालचित्त है, उसको सभी प्यार करते हैं।

२१. पूरण...सोय—जिसके मन मे परमात्मा का डर भली भाँति रहता है वह मनुष्य छिपकर या सामने, अन्दर या बाहर, किसी प्रकार भी, कहीं भी पाप नहीं करता।

२२ शान्ति सनीत—मुदिता = प्रसन्नता । सनीत = नीति से (यहां, भली भाँति)। शान्ति, दया, समदर्शिता, क्षमा, हँसमुखता, विद्या तथा

प्रेम—ये गुण माता के समान मनुष्य की भली भाँति रक्षा करते हैं।

२३. बचन बखान—(हे विद्वानो), संसार (के लोगों) से जब बात करने लगो तो सब (श्रोताओं) की बुद्धि के अनुसार करो। जहाँ (उनकी) बुद्धि की पहुँच न हो, वहाँ उस (गम्भीर विषय) का व्याख्यान मत करो।

[टिप्पणी—उत्तर दल का अर्थ यों भी हो सकता है। जिस विषय मे तुम्हारी अपनी बुद्धि न पहुँचती हो उसमें मौन ही धारण कर लो।]

२४. अभ्युथान अधिकार—अभ्युत्थान = स्वागत के लिए उठना, प्रत्युद्गमन। बार (वारि) = जल। घर मे आए हुए अतिथि के लिए, उसकी योग्यता के अनुसार, स्वागत तथा नमस्कार करना चाहिए, और धन, आसन, भोजन जल तथा उपहार देना चाहिए।

पृष्ठ ५१, दोहा २५ तप . शात—तपस्या, तीर्थाटन, नाम-स्मरण तथा यात्रा करने का मुख्य लक्ष्य यही है कि किसी को कष्ट न देना चाहिए और सब का मन प्रसन्न रखना चाहिए।

२६ जो अचेत—जो अपने सुख के लिये दूसरों को दुख देता है वह आत्मज्ञान से हीन मूर्ख और बेसमझ है।

२७ अपने पास अपने-अपने प्रयोजन पूरा करने के लिये सब, सब के सेवक बनते हैं। बिना मतलब के कौन अपना बनता है? (प्रयोजन के बिना तो) कोई पास तक नहीं बैठता।

२८ विद्या लोग—सब लोग इस बात को जानते हैं कि धन-प्राप्ति के ये छः उपाय हैं:—विद्या, पुरुषार्थ, बुद्धि, बल, रूप तथा भाग्य।

२६ मिथ्या...आधि—व्याधि = शारीरिक रोग। आधि = मानसिक व्यथा। प्रतिकूल भोजन तथा रहन-सहन से शरीर मे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जो मनुष्य सोच-विचार के बिना काम करता है उसे मानसिक व्यथाए आ घेरती हैं।

३०. अज्ञानी सुभाय—ज्ञान-हीन मनुष्य तो पाप को डर कर या लालच पा कर ही छोडता है किन्तु ज्ञानवान् व्यक्ति उसे (पाप बुरा होता है यही) विचार कर छोड देता है। पाप से पृथक् रहना उस का सहज स्वभाव होता है।

३१. जिस आप—जिस काम के करने पर पीछे पछताना पड़े,

उपयोग करता है, अर्थात् न अत्युदार है न अतिकृपण, उस का प्रभाव सदा बना रहता है।

४१. भावत कौन—जो बोलने के अवसर पर बोलता है और जब बोलने का समय न हो तब चुप रहता है, उस बुद्धिमान् मनुष्य को कौन पराजित कर सकता है।

४२ निश . कोइ—निश = रात। औध = अवधि, आयु। रात बीतने पर दिन होता है और दिन बीतने पर रात। आयु इसी रात-दिन के फेर में बीत गई और (परमार्थ-संबंधी) कोई काम न किया।

४३ हरि राम—हेरत = ढूँढने पर। निकरो = निकला, पाया गया। भगवान् को ढूँढने पर स्वय ही भगवान् बन गया, अर्थात् आत्मा परमात्मा में लीन हो गई और मन को शान्ति मिल गई। गुरु के चरणों में श्रद्धा रखने से भगवान् घर मे से ही निकल आए अर्थात् हृदय मे ही मिल गए।

॥ ॐ शम् ॥

उस का आरंभ ही न करना चाहिए। आरंभ में ही विचार कर लिया करें।

३२. जो .तूल—तूल = रूई। जो काम न करना हो उसे भूल कर भी किसी से मत कहो कि कर दूँगा। क्योंकि जो मनुष्य वचन देकर भी काम नहीं करता वह रूई के तुल्य हलका समझा जाता है।

३३ अति...कोइ—न बहुत अधिक झुकना चाहिए न बहुत अधिक अभिमान करना चाहिए। मध्यम अवस्था मे रहना चाहिए, अर्थात् नम्रता तथा आत्मसम्मान दोनो का ध्यान रखना चाहिए। इस से मनुष्य को शोक नहीं सताता।

३४. निन्दा .संताप—आन = दूसरे। दूषण = बुराई। जो मनुष्य दूसरों की निन्दा करता है वह स्वय निन्दनीय होता है। जो दूसरों को दूषित करने का विचार करता रहता है वह स्वयं बहुत क्लेश पाता है।

३५ तन . प्रकाश—अघ = पाप। शरीर धोने से मैल दूर होती है और मन धोने से पाप नष्ट होते हैं। जब तन तथा मन दोनो की मैल दूर जाती है तब आत्मा मे आनंद उत्पन्न हो जाता है।

३६ खान .भगवान—खाने पीने तथा सुख भोगने मे पशु भी अत्यन्त सयाने होते हैं। यदि मनुष्य भगवान का दर्शन न करे तो वह पशुओ से श्रेष्ठ किस बात मे हैं?

३७ विद्या सुजान—गुरुमुख = गुरु-सेवक, सच्चा शिष्य। प्रवीन = कुशल। जो विद्या, सत्य तथा विवेक से युक्त बातों को मान लेता है, उसी बुद्धिमान्, कुशल तथा ज्ञानवान् मनुष्य को गुरुमुख (शिष्य) समझना चाहिए।

३८. जो पास—जो मन-मानी करता है, और मन का सेवक बन गया हैं और बिलकुल बुद्धि-हीन है, उसे मनमुख अर्थात् स्वेच्छाचारी कहना चाहिए।

पृष्ठ ५२, दोहा ३९. जब लों हान—हान = नाश। जब तक आत्मा परमात्मा को भली भांति पहिचान नहीं लेती तब तक न उस के संशय नष्ट होते हैं और न उसे मुक्ति ही मिलती है।

४० अति समर्थ—हृदय की अत्यधिक विशालता दु.खदायक होती है और कृपणता अनिष्टकारक। जो मनुष्य दोनों का यथायोग्य